LAW INSTITUTE

INDIA'S NO. 1
Law Institution

A Unit of Ambition Educare PVT. LTD.

मुस्लिम विधि

मुस्लिम विधि

विषय–सूची

क्र. सं	अध्याय का नाम	पृष्ठ–संख्या
1.	मुस्लिम विधि	01 - 04
2.	मुस्लिम विधि का विकास तथा विचारधाराएँ	05 - 09
3.	मुस्लिम विधि के स्रोत	10 - 12
4.	निकाह	13 - 25
5.	मेहर	26 - 32
6.	तलाक	33 - 42
7.	भरण–पोषण (नफका)	43 - 48
8.	जनकता एवं औरसता	49 - 52
9.	संरक्षकता	53 - 56
10.	हिबा (दान)	57 - 65
11.	वसीयत	66 - 73
12.	वक्फ	74 - 81
13.	उत्तराधिकार	82 - 89
14.	पूर्व–क्रयाधिकार (हकशुफा)	90 - 95
15.	सिविल जज (जूनियर डिवीजन) हल सहित प्रश्न पत्र	96 - 142

एम्बिशन लॉ इन्स्टीट्यूट
110, विराट भवन, (एम्टीएनएल बील्डिंग) डॉ॰ मुखर्जी नगर, दिल्ली-9
फोन नं॰ : 27655079, 32913949

अध्याय 1

मुस्लिम विधि

सार परिचय

- प्रस्तावना - वैयक्तिक विधि
- मुस्लिम कौन है
  - जन्म से
  - संपरिवर्तन द्वारा
- मुस्लिम होने के आवश्यक तत्व
- शरियत एवं फिक्ह
- शरियत में निषेध
- शरियत एक्ट की विशेषताएँ
- कब गैर मुस्लिमों पर मुस्लिम विधि लागू होगी
- मुस्लिमों पर मुस्लिम-विधि लागू न होना

प्रस्तावना - वैयक्तिक विधि

किसी भी विधि को वैयक्तिक विधि तब कहा जाता है जब कि वह किन्हीं विशेष समुदाय के व्यक्तियों से संबंधित होती है या उनके व्यक्तिगत मामलों से संबंधित होती है और प्रयोज्यता (Applicability) के दृष्टिकोण से भी वह विधि वैयक्तिक मामलों में या किन्हीं निश्चित मामलों पर ही लागू होती है जैसे हिन्दू विधि, मुस्लिम विधि इत्यादि हांलाकि प्रयोज्यता के दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि इसके कुछ अपवाद भी हो सकते हैं लेकिन कुल मिलाकर प्रयोज्यता के दृष्टिकोण से एवं व्यक्तिगत मामलों के संबंध के दृष्टिकोण से भी किसी विधि को वैयक्तिक विधि कहा जा सकता है।

मुस्लिम कौन है?

कोई भी व्यक्ति मुस्लिम दो तरीकों से कहा जा सकता है :-

(1) जन्म से

(2) संपरिवर्तन (conversion)

(1) जन्म से :- कोई भी व्यक्ति जन्म से मुस्लिम तब कहा जाता है जबकि उसके माता-पिता दोनों जन्म से मुस्लिम हो।

भैय्या शेरबहादुर vs. भैय्या गंगा बाक्श सिंह [1914 (41 I.A-1)]

इसके अतिरिक्त यदि माता-पिता में से कोई भी एक व्यक्ति किसी अन्य धर्म का और दूसरा पक्षकार मुस्लिम है तब जिस भी पक्षकार के धर्म के अनुसार उस बच्चे का पालन-पोषण किया जाता है वह बच्चा उस धर्म का माना जायेगा।

(2) संपरिवर्तन/धर्म परिवर्तन के आधार पर मुस्लिम :- भारतीय संविधान भारत में रहने वाले किसी भी व्यक्ति को किसी भी धर्म को मानने व उसके आचरण करने की स्वतंत्रता अपवादों के साथ प्रदान करता है। इसी संवैधानिक आधार के अनुसार भारत में रहने वाला कोई भी मुस्लिम व्यक्ति मुस्लिम धर्म छोड़कर कोई अन्य धर्म स्वीकार कर सकता है या किसी अन्य धर्म को मानने वाला व्यक्ति मुस्लिम धर्म स्वीकार कर सकता है।

वह व्यक्ति जो किसी भी धर्म का है व्यस्क व स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति धर्म परिवर्तन कर सकता है। इस संबंध में भारतीय व्यस्कता अधिनियम के अनुसार-पुरूष की आयु 21 वर्ष व महिला की आयु 18 वर्ष मानी जाती है। संपरिवर्तन दुराशयपूर्ण नहीं होना चाहिए धर्म-परिवर्तन के संदर्भ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित

दो वाद –

(1) सरला मुद्गल बनाम भारत संघ (1995, 3 S.C.C 635)

(2) लिली थॉमस बनाम भारत संघ (ए० आई० आर० 2000 सु० को० 1650) :- में संपरिवर्तन के विषय पर अति महत्वपूर्ण नियम का प्रतिपादन किया है। इन दोनों वादों में दूषित मन स्थिति को भी संपरिवर्तन का एक तत्व माना गया। इन वादों में एक विवाहित जोड़ा जो कि हिन्दू धर्म का था के एक पक्षकार (पति ने) अपनी विद्यमान शादी के कायम रहते हुए मुस्लिम धर्म में परिवर्तन सिर्फ इस कारण से किया जिससे वह हिन्दू विधि के विपरीत जाकर मुस्लिम विधि के अनुसार एक से अधिक विवाह कर सके माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उसके इस कृत्य को संविधान के समता के नियम, संविधान एवं किसी भी धर्म के आदर्शों के विपरीत मानते हुए एवं विवाह जैसी पवित्र संस्था की गरिमा एवं समाज में नारी के स्थान एवं महत्व को समाज का एक आवश्यक अंग मानते हुए नकार दिया एवं असंवैधानिक घोषित किया।

मुस्लिम होने के आवश्यक तत्व

(1) आचरण द्वारा मुस्लिम –किसी भी मुस्लिम व्यक्ति को निम्नलिखित पाँच चीजें करना अति आवश्यक हैं :-

(1) नमाज
(2) जकात
(3) रोजा
(4) हज
(5) तौहीद

(1) नमाज :- किसी भी मुस्लिम व्यक्ति को एक दिन में पाँच बार की नमाज पढ़ना आवश्यक है इसमें कुरान की कुछ आयतों को मक्का की तरफ मुहँ करके एक विशेष प्रकार की स्थिति में बैठकर पढ़ना होता है।

(2) जकात :- किसी भी मुस्लिम व्यक्ति को वर्ष मे एक बार स्वअर्जित सम्पत्ति में से कुछ न कुछ जकात (दान) देना आवश्यक होता है। सामान्य तौर पर यह कुल वार्षिक आमदनी को 1/10वाँ भाग होना चाहिए।

(3) रोजा :- हर मुस्लिम व्यक्ति को वर्ष में एक महीने रोज़ा (व्रत) रखना आवश्यक होता है जब तक कि वह व्यक्ति इसके अयोग्य न हो।

(4) हज :- हर मुस्लिम व्यक्ति को अपने जीवन में कम से कम एक बार हज़ (पवित्र मक्का व मदीना की यात्रा) करना आवश्यक है।

(5) तौहीद :- कोई भी व्यक्ति जो अल्लाह को ही एकमात्र ईश्वर और सर्वशक्तिमान तथा पैगम्बर मोहम्मद साहब को उनका रसूल मानता है इस मान्यता को तौहीद कहते हैं।

शरियत एवं फिक्ह

शरियत :- (मुस्लिम विधि) के संदर्भ में शरियत दैवीय विधि मानी जाती है। इस्लाम धर्म की मान्यता के अनुसार केवल ईश्वर (अल्लाह) ही सर्वोच्च विधिकार है। वह मनुष्यों के सभी कार्य-कलापों को विनियमित करने के लिए कानून पारित करने में सक्षम हैं। इनमें कुछ निर्दश तो अनिवार्य हैं, कुछ अपेक्षित हैं और कुछ वैकल्पिक हैं अर्थात् जिन्हें पालन किया भी जा सकता है और नहीं भी किया जा सकता है। इस प्रकार ईश्वर ने मानवीय आचरण के लिए मार्गदर्शन कर दिया है। ईश्वर के इन्हीं निदेशों को 'शरियत' कहते हैं। इसमें कुरान, अहादिस, सुन्ना, कयास, एवं इज्मा आते हैं। इस विधि को प्रश्न करने का अधिकार संसार में किसी को भी प्राप्त नहीं है।

फिक्ह :- यह साधारण मानवों द्वारा अपनी मानवीय तर्क की शक्ति के आधार पर रचित कानून (निर्बन्धन) होते हैं। इनमें दैवीय शक्ति नहीं होती। एवं इनको उच्चतर न्यायालयों द्वारा या विधान मण्डलों द्वारा बदला या परिवर्तित किया जा सकता है जैसे – कुटुम्ब न्यायालय

शरीयत में निषेध :- (1) फर्ज़
(2) हराम
(3) मन्दूब

(4) मकरूब

(5) जायज़

(1) <u>फर्ज़</u> :- वो निश्चित कर्त्तव्य जिन्हें हर मुस्लिम व्यक्ति के द्वारा किया जाना आवश्यक हैं। जैसे - पाँचों वक्त की नमाज़।

(2) <u>हराम</u> :- वे कार्य जो मुस्लिम विधि के अनुसर पूर्णतः निषेधित हैं। जैसे - शराब पीना एवं जुआ खेलना।

(3) <u>मन्दूब</u> :- वे कर्त्तव्य जो किसी भी मुस्लिम व्यक्ति द्वारा किये जाने चाहिए। जैसे - ईद की नमाज।

(4) <u>मकरूब</u> :- ऐसे कार्य जो किसी भी मुस्लिम व्यक्ति द्वारा नहीं किये जानें चाहिए। जैसे - एक विशेष प्रकार की मछली को न खाना।

(5) <u>जायज</u> :- वे कार्य जो कि ना ही मन्दूब है और न ही मकरूब तथा जिनके बारे में कुरान मौन हैं। जैस - 50 बार नमाज करना।

शरियत एक्ट की विशेषताएँ

(1) इस एक्ट का पूरा नाम मुस्लिम वैयक्तिक विधि (शरियत) प्रभावीकरण अधिनियम 1937 हैं। यह 7 अक्टूबर 1937 को लागू हुआ था। यह जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर पूरे भारतवर्ष में लागू हैं। इस एक्ट का उद्देश्य भारत में रहने वाले मुस्लिमों पर शरियत विधि को प्रभावी करना हैं।

(2) धारा 2 के अनुसार - ऐसे वादों में जिनमें पक्षकार मुस्लिम हो निम्नलिखित मामलों में लागू की जाने वाली विधि शरीयत होगी -

(क) निर्वसीयत उत्तराधिकार

(ख) महिलाओं की विशेष सम्पत्ति (संविदा हिबा का दाय में प्रांत)

(ग) निकाह

(घ) तलाक (इला, जिहार, खुला, मुबारत, लियान)

(ङ) भरण-पोषण

(च) मेहर

(छ) दान

(ज) संरक्षकता

(झ) न्यास एवं वक्फ सम्पत्ति (खैरात, खैराती, धर्मदाय को छोड़कर)

अपवाद :- शरीयत एक्त **कृषि भूमि संबंधी** विषयों पर लागू नहीं होगी। शरीयत एक्ट के प्रावधान मुस्लिम विधि में प्रचलित किसी भी प्रथा या रूढ़ि के होते हुए लागू होंगे।

धारा 3 के अनुसार :- कोई भी व्यक्ति जो मुस्लिम हैं सक्षम है (संविदा अधिनियम की धारा 11 के अनुसार) भारत का निवासी हैं तो वह सक्षम प्राधिकारी के समक्ष यह घोषणा कर सकता है। कि धारा 2 शरियत अधिनियम के उपबंध तथा दत्तक ग्रहण, वसीयत, वसीयती दान इत्यादि उस पर लागू होंगे।

यदि विहित प्राधिकारी घोषणा के संबंध में आपत्ति करता हैं जो व्यक्ति के पास विहित अधिकारों के समक्ष अपील करने का अधिकार होगा। राज्य सरकार इस अधिनियम के उद्देश्यों को सफल बनाने के लिए नियम बना सकेगी।

<u>कब गैर मुस्लिमों पर मुस्लिम विधि लागू होगी</u>

यदि किसी वाद में एक पक्ष मुस्लिम है और दूसरा तो अदालत मुस्लिम विधि लागू कर सकती है बशर्ते प्रतिवादी मुस्लिम हो। मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 की धारा 4 के अनुसार किसी भी मुस्लिम महिला का ध र्म-परिवर्तन करना अपने आप में ही उसके विवाह को विघटित नहीं कर देगा और वह महिला उक्त अधिनियम की धारा 2 में वर्णित आधारों में से किसी आधार के अंतर्गत अपने विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकती है। अपवाद - उक्त नियम (लाभ) का अपवाद यह है कि यह नियम पुनः संपरिवर्तन (Reconversion) करने वाली महिला पर लागू नहीं होगा।

इन मामलों पर यह विधि लागू नहीं होगी

मुस्लिम विधि का सामान्य नियम यह है कि यदि किसी वाद के दोनों पक्षकार मुस्लिम हैं तथा वाद शरियत एक्ट की धारा 2 में वर्णित विषयों से संबंधित हैं तो मुस्लिम वैयक्तिक विधि ही लागू की जाती है।

अपवाद –

(1) विशेष विवाह अधिनियम 1954 के तहत कोई भी मुस्लिम व्यक्ति (पुरूष या महिला) किसी अन्य पुरूष या महिला से विवाह कर सकता है लेकिन उस पुरूष और महिला के सारे अधिकार और दायित्व शरीयत विधि के अनुसार प्रशासित न होकर विशेष विवाह अधिनियम 1954 द्वारा विनियमित होंगे तथा उत्तराधिकार के संबंध में भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 लागू होगा।

(2) भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 के तहत :- कोई भी मुस्लिम महिला जो कि अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है और उसके पति के पास भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त साधन हैं तो जब तक वह महिला पुर्नविवाह न कर ले अपने पति से भरण-पोषण की अधिकारी होगी चूँकि यह अधिनियम सभी महिलाओं पर लागू होता हैं (धर्म निरपेक्ष रूप से) इसीलिए यह मुस्लिम महिला पर भी लागू होगा।

(3) मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम 1986 की धारा 5 के अनुसार – यदि मुस्लिम पति और पत्नी सहमति से यह घोषणा करे कि वाद का निर्णय दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 द्वारा तय होगा न कि उक्त अधिनियम के द्वारा तब मजिस्ट्रेट या पीठासीन अधिकारी जैसा उचित समझे आदेश पारित कर सकता है।

अध्याय 2

मुस्लिम विधि का विकास तथा विचारधाराएँ

सार-परिचय

- मुस्लिम विधि का विकास
  - (1) प्रथम चरण (622 ई० से 632 ई०) कुरान काल
  - (2) द्वितीय चरण (632 ई० से 661 ई०) खलीफाओं का युग
  - (3) तृतीय चरण (661 ई० से 900 ई०)
  - (4) चतुर्थ चरण (900 ई० से 1924 ई०) अंधा युग
  - (5) पंचम चरण (1924 से अब तक) 1924-1950 से अब तक आधुनिक काल
- मुस्लिम विधि की विचारधाराएँ
  - सुन्नी सम्प्रदाय
    - (1) हनफी विचारधारा
    - (2) मलिकी विचारधारा
    - (3) शफई विचारधारा
    - (4) हनबली विचारधारा
  - शिया सम्प्रदाय
    - (1) अथना अशरिया
    - (2) इस्माइलिया
    - (3) जैदिया

मुस्लिम विधि का विकास

मुस्लिम विधि का उद्भव पैगम्बर मोहम्मद के जन्म से माना जाता है। मोहम्मद साहब के जन्म से ही इस्लाम धर्म का उदय माना जाता है। मोहम्मद साहब के जन्म से पहले अरब समाज की दशा बहुत शोचनीय थी। समाज में वैयक्तिक मामलों के लिए कोई नियम तक नही थे। विवाह, विवाह-विच्छेद, दत्तकग्रहण, उत्तराधिकार, महिलाओं एवं बच्चों के भरण-पोषण इत्यादि से संबंधित कोई भी नियम या विधि नहीं थी।) स/समाज में कबाइली संस्कृति का बोलबाला था। मोहम्मद साहब का जन्म 570/71 ई० में मक्का में हुआ। इनके पिता का नाम अबदुल्ला व माता का नाम अमीना था इनके माता-पिता की मृत्यु बचपन में ही हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण इनके चाचा अबुतलिब (Abutalib) ने किया। मोहम्मद साहब का विवाह खदीजा नाम की स्त्री से हुआ था। 609 ई० में हीरा नाम की पहाड़ी की गुफा में मोहम्मद साहब को पहला संदेश वही (wahi) अल्लाह के फरिश्ते (जिब्राइल) के द्वारा प्राप्त हुए। इन दैवीय संदेशों के मिलने के बाद मोहम्मद साहब ने खुदा के संदेशों का प्रचार-प्रसार मक्का में करना शुरू किया जहाँ पर इनका काफी विरोध हुआ और इन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा इसीलिए मोहम्मद साहब 622 ई० में मक्का छोड़कर मदीना चले गये इस घटना को हिज़ (Hizr) कहा गया।

मुस्लिम विधि के विकास को 5 चरणों में बाँटा जा सकता है :-

(1) प्रथम चरण (622 ई० से 632 ई०) कुरान काल
(2) द्वितीय चरण (632 ई० से 661 ई०) खलीफाओं का युग
(3) तृतीय चरण (661 ई० से 900 ई०)
(4) चतुर्थ चरण (900 ई० से 1924 ई०) अंधा युग
(5) पंचम चरण (1924 से अब तक) आधुनिक काल

(1) प्रथम चरण (622 ई० से 632 ई०) मोहम्मद साहब के वही प्राप्त करने का समय कुरान का काल :-

(2) द्वितीय चरण (632 ई० से 661ई०) को खलीफाओं का युग कहा जाता है 632 ई० में पैगम्बर मोहम्मद साहब की मृत्यु के बाद मुस्लिम समाज (धर्म) दो सम्प्रदायों में बँट गया - (क) शिया (ख) सुन्नी। शिया संप्रदाय का नेतृत्व मोहम्मद साहब की बेटी फातिमा के पति हजरत अली कर रहे थे जबकि सुन्नी संप्रदाय का नेतृत्व पैगम्बर मोहम्मद छोटी बेगम आयशा के पिता हजरत अबुबकर कर रहे थे इस काल में पवित्र कुरान का पहला आधिकारिक संकलन जैद साहब द्वारा अबुबकर के काल में किया गया हजरत उसमान ने इस प्रति में कुछ सुधार करके पवित्र कुरान को एक नया रूप दिया। इसी काल में मुस्लिम विधि के स्रोतों सुन्नत एवं अहादिस का प्रणयन किया गया।

(3) तृतीय चरण (661 ई० से 900 ई०) - इस काल की प्रमुख घटनाओं में शिया के पहले खलीफा (इमाम) हजरत अली के दोनों युगों हसन एवं हुसेन की हत्या, उमैयद एवं अब्बासी शासकों का सत्तारूढ़ होना, खलीफा का पद आनुवांशिक किया जाना, सुन्नी एवं शिया संप्रदायों का विभिन्न विचारधाराओं में बँटना था। इसी काल में सुन्नत का प्रमाणिक संकलन बुखारी के द्वारा किया गया। इसी काल में 'इज्मा' (मतैक्य) का जन्म हुआ तथा अन्य नयी विधिशास्त्रीय संकल्पनाओं इस्तीहसन (साम्या) इस्ती एवं इस्तिदलाल (जनहित) का जन्म हुआ।

(4) चतुर्थ चरण (900 ई० से 1924 ई०) अंधा युग - इस काल में तुर्की के राजा अतातुर्क के द्वारा का पद समाप्त कर दिया गया इस काल में चूँकि कोई भी ऐसा मुस्लिम विधि नही हुआ जो कि मुस्लिम विधि शास्त्री के विकास में योगदान कर सकता इसलिए इस समय में मुस्लिम विधि का विकास लगभग रूक गया था इसीलिए इस काल को मुस्लिम विधि के विकास के दृष्टिकोण से अंधायुग कहते हैं यहीं कारण है कि इस युग मं तकलीद (अनुसरण) नामक नई विधिशास्त्रीय संकल्पना का जन्म हुआ। इस काल में मुस्लिमों ने कई उत्कृष्ट टीकाएँ मुस्लिम विधि पर लिखी जैसे 'फतवा-ए-आलमगीरी' एवं 'फतवा-ए-काजीखाँ'।

(5) पंचम चरण (1924 से अब तक) - इस काल को मुस्लिम विधि के परिपेक्ष्य में आधुनिक काल कहा जा सकता है इस काल को दो भागों में बाँटा जा सकता है - (1) सन् 1924 से 1950 तक (2) सन् 1950 से अब तक।

1924 से 1950 तक - यह काल औपनिवैशिक काल माना जाता है। जिसमें अंग्रेजों ने अच्छे प्रशासन के लिए मुस्लिम विधि को संहिताकृत करने का प्रयास किया। मुस्लिम समाज एवं सामान्य समाज के हित में कई विधायन किये गये जिनमें शरीयत एक्ट (मुस्लिम पर्सनल लॉ) शारियत प्रभावीकरण अधिनियम 1937 एवं मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 ।

1950 ई० से अब तक - यह काल भारतवर्ष के गणतंत्रीय स्वरूप के उदय का काल है। संविधान को सर्वोच्च विधि माना गया और उसके दर्शन के अनुसार मुस्लिम विधि का विकास भारतीय न्यायालयों, भारतीय संसद एवं राज्य विधानमण्डलों द्वारा किया जाने लगा। इस परिपेक्ष्य में कई लोकहित एवं समाज के शोषित वर्ग स्त्रियों एवं बच्चों को ध्यान में रखते हुए कई विधिक नियमों का प्रणयन किया गया जैसे :- शाहबानों वाद, डेनियल लतीफी वाद, सरला मुगदल वाद, लिली थॉमस वाद एवं मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम 1986 ।

मुस्लिम विधि की विचारधाराएँ/सम्प्रदाय

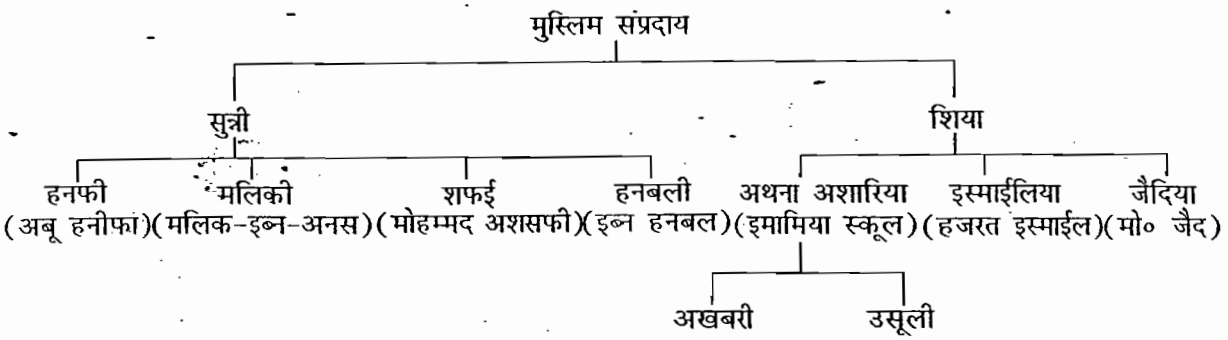
632 ई० में पैगम्बर मोहम्मद साहब की मृत्यु के बाद मुस्लिम समाज उत्तराधिकार के प्रश्न पर दो सम्प्रदायों मे बँट गया - (1) सुन्नी और (2) शिया सम्प्रदाय

सुन्नी सम्प्रदाय विभाजन के फलस्वरूप चार उप-सम्प्रदायों सम्प्रदाय में बँट गया तथा शिया सम्प्रदाय भी विभिन्न उप सम्प्रदायों में विभाजित हो गया।

सुन्नी सम्प्रदाय - सैद्धांतिक मतभेदों के आधार पर सुन्नी सम्प्रदाय निम्न विचारधाराओं (स्कूल) में बँट गया था

में स्थापित किया था ये काजे थे –

(1) हनफी विचारधारा



(1) <u>हनफी विचारधारा</u> – हनफी विचारधारा को अबू हनीफा ने कूफा इन्होंने सुन्ना के अंधानुकरण के बजाय तर्क को महत्व दिया एवं नई संकल्पना के रूप मे कयास को स्थापित किया। इन्होंने कुरान की व्याख्या में साम्या को महत्व देते हुए एक ओर नई विधिक संकल्पना इस्तीहसन का भी प्रणयन किया। यह विचारधारा जनहित एवं लोकोपयोगी होने के कारण सर्वाधिक प्रचलित रही। भारत में भी सुन्नी संप्रदाय ने यह विचारधारा सबसे ज्यादा प्रचलित है। इस विचारधारा से संबंधित कुछ मुख्य पुस्तकें निम्न हैं :- फतवा-ए-आलमगीरी, रद्दमुख्तार, दारूलमुख्तार, हिदाया। इस विचारधारा का प्रचार मिस्त्र, इजराइल, अफगानिस्तान, जार्डन तथा भारत में हुआ।

(2) <u>मलिकी विचारधारा</u> – इस विचारधारा की संस्थापना मलिक-इब्न-अनस द्वारा मदीने में की गयी थी। यह विचारधारा पैगम्बर को ही कानून का एकमात्र स्रोत मानती हैं। यह विचारधारा कयास तथा इजमा को भी महत्व देती है यह सिर्फ मदीने में रहने वाले विधिशास्त्रियों के राज्यों को ही प्रमाणित मानती है। मदीने मे व्याप्त अन्य कई प्रथाओं को भी यह विचारधारा महत्व देती है। इसी विचारधारा के विधिशास्त्रियों द्वारा इस्तदलाल (जनहित) का प्रादुर्भाव किया गया। इस विचारधारा की सबसे विशिष्ट बात यह है कि स्त्री की सम्पत्ति सदैव उसक पति के अधिकार में रहती है। मलिक अनस द्वारा लिखित पुस्तक किताब-अल-मूबत्ता एवं अल-मुख्तसर मलिकी सिद्धांतों की प्रमाणिक पुस्तक मानी जाती है। इस विचारधारा का प्रचार प्रसार पश्चिमी अफ्रीका, स्पेन, कुवैत, बहरीन इत्यादि देशों में हुआ। भारत में वे न के बराबर पाये जाते हैं।

(3) <u>शफई विचारधारा</u> .- इस विचारधारा की स्थापना मोहम्मद अशसफी द्वारा अश-सफी की गई। इसे विचारधारा तथा उपसम्प्रदाय का विकास काहिरा, एवं बगदाद में हुआ इस विचारधारा ने सुन्नत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस विचारधारा ने हनफियों के इस्तिहसन को मान्यता नहीं दी जबकि इस्तदलाल को प्रमाणिक माना। कयास को भी शफई विचारधारा पुनः विधि का एक महत्वपूर्ण स्रोत मानती है। इस विचारधारा की प्रमुख पुस्तकों में किताब-अल-उम्मा मोहम्मद शफी द्वारा तथा अल-वाजिज गज्जली द्वारा रचित हैं। इस विचारधारा का प्रचार-प्रसार इण्डोनेशिया, मलेशिया, सहित दक्षिण पूर्व एशिया तथा मिश्र के दक्षिण के देशों में हुआ। भारत में यह पश्चिमी तट पर पार्ये जाते हैं।

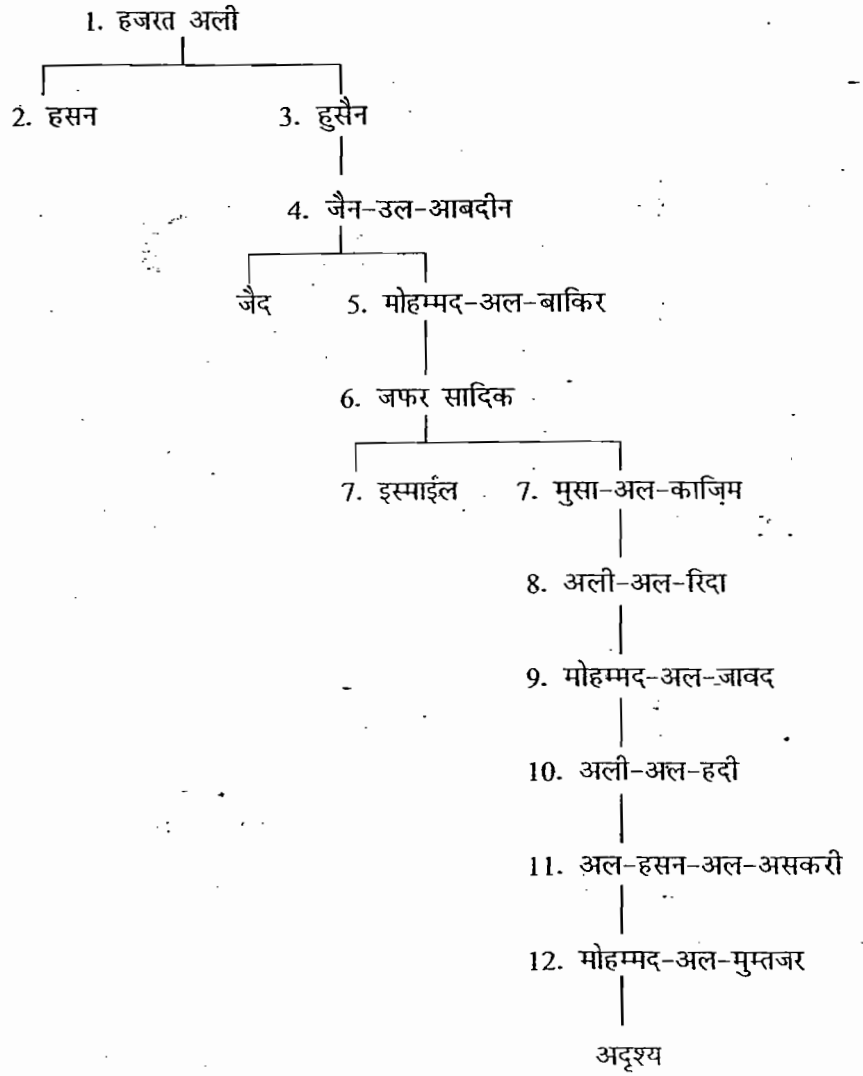
(4) <u>हनबली विचारधारा</u> – इस विचारधारा को इब्न-हनबल द्वारा स्थापित किया गया था यह विचारधारा कट्टरवाद एवं परम्परावादी मानी जाती है। इसीलिए यह विचारधारा सुन्नत का कड़ाई से पालन करने पर जोर देती है तथा इज्मा एवं कयास को लगभग नकार देती है यह विचारधारा व्यक्तिगत एवं मानवीय तर्कों को कोई महत्व नहीं देती है इसीलिए इनके सिद्धांत अत्यंत दृढ़ एवं अव्यवहारिक माने जाते हैं। इस विचारधारा की प्रमुख पुस्तकों में मसनद-उल-इमाम हनबल इब्नहस्नबल द्वारा रचित तथा किताब-उल-मशख एवं किताब-उल-अलाल इत्यादि है। मसनद-उल-इमाम में 50,000 सुन्नतों का संकलन किया गया है। इस विचारधारा का प्रचार-प्रसार सऊदी अरब कतर में हैं भारत में यह न के बराबर पाए जाते हैं।

शिया सम्प्रदाय

शिया सम्प्रदाय का निम्न विचारधाराओं में बँटना किसी सैद्धान्तिक मतभेद पर आधारित न होकर सिर्फ उत्तराधिकार के प्रश्न पर हुआ जिसके अनुसार शिया सम्प्रदाय की निम्न विचारधाराएँ हैं –

(1) अथना-अशारिया
(2) इस्माइलिया
(3) जैदिया

शिया सम्प्रदाय को निम्न चार्ट से समझा जा सकता है :-



(1) <u>अथना-अशारिया विचारधारा</u> – यह विचारधारा हजरत अली से लेकर मोहम्मद अल-मुन्तजर तक के 12 इमामों को मान्यता देती है। यह विचारधारा कड़ाई से कुरान के सिद्धांतों का पालन करने पर जोर देती है। इमाम के द्वारा कहा गया वाक्य 'कानून' माना जाता है यह दो भागों में विभक्त है 'अखबरी' जो कि कट्टर शिया सिद्धांतों को मानते हैं तथा 'उसूली'। यह आधुनिकतावादी है तथा तर्क को महत्व देते हैं इस विचारधारा की प्रमुख पुस्तक 'शराए-उल-इस्लाम' है। इस विचारधारा का प्रचार-प्रसार इरान, ईराक, लेबनान, पाकिस्तान तथा भारत में हुआ। भारत में शिया सम्प्रदाय का सबसे बड़ा वर्ग इसी विचारधारा का है।

(2) इस्माइलिया विचारधारा - इस विचारधारा के संस्थापक एवं पहले इमाम मोहम्मद अली माने जाते हैं यह विचारधारा हजरत-अली से लेकर इस्माइल तक के सिर्फ 7 इमामों को ही मान्यता प्रदान करती हैं। इसे 7 इमामों की सिद्धांत भी कहते हैं। यह विचारधारा यह भी मानती है कि इस्माइल अन्तिम इमाम हैं और इनके बाद अब कोई इमाम नहीं होगा वह विचारधारा औपचारिक रूप से दो भागों में विभक्त मानी जाती है।

खोजा एवं बोहरा - यह दोनों संपरिवर्तित मुस्लिम माने जाते हैं। एवं इनकी प्रसिद्धि व्यापारिक सम्प्रदाय के रूप में है। इस विचारधारा का प्रचार प्रसार मध्यएशिया, सीरिया, पाकिस्तान तथा भारत जैसे देशों में हुआ। भारत में बम्बई के आसपास इनका बाहुल्य मिलता है इस विचारधारा की प्रमुख पुस्तक 'दयमुल-इस्लाम' है।

(3) जैदिया विचारधारा - जैदिया स्कूल के संस्थापक मो० जैद थे। इस सम्प्रदाय ने सुन्नी सम्प्रदाय के कुछ सिद्धांतों को मान्यता दीं। जैसे - वैयक्तिक मामले तथा राजनैतिक मामलों में शिया सम्प्रदाय के ही मूल सिद्धांतों को माना। यह विचारधारा मुता विवाह को मान्यता नहीं देता। यह विचारधारा हजरत अबु बकर और हजरत उमर को मान्यता देती है पर हजरत उसमान को नहीं क्योंकि वह कुरैश कबीले से नहीं थे (क्योंकि मोहम्मद साहब कुरैश कबीले से संबंधित थे।)

मोताजिला - यह विचारधारा शिया व सुन्नी संप्रदाय से अलग है। इसका उदय नौवीं शताब्दी के आसपास हुआ इसके संस्थापक अला-अल-गज्जाली थे। ये शिया व सुन्नी सम्प्रदायों के किसी भी विचार को मान्यता नहीं देते थे जैसे इस विचारधारा में सुन्नतों व हदीशों के महत्व को नकार दिया। यह विचारधारा सिर्फ कुरान को मानती है। इस विचारधारा की एक विशिष्ट हैं कि यह यूनानी दर्शन से प्रभावित है इस सम्प्रदाय की एक ओर महत्वपूर्ण विशिष्ट विशेषता यह हैं कि यह एक पत्नित्व सिद्धांत को तथा न्यायालय से तलाक लेने को मान्यता देती है।

सम्प्रदायों में संपरिवर्तन

मुस्लिम विधि की मान्यताओं के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो कि मुस्लिम हैं (शिया या सुन्नी) वह किसी भी मुस्लिम व्यक्ति से विवाह कर सकता है। दोनों सम्प्रदायों के विचारधाराओं को मानने वाले व्यक्ति आपस में विवाह कर सकते हैं। दोनों ही सम्प्रदायों के मानने वाले व्यक्ति आपस में किसी भी सम्प्रदाय को अपना सकते हैं। परिवर्तन के बाद तुरंत ही नये सम्प्रदाय की विधि लागू होने लगती हैं।

हयातुन्निशां बनाम मोहम्मद (1890) 12 इला 290 - परिवर्तन के बाद तुरंत ही नये सम्प्रदाय की विधि लागू होने लगती हैं।

भारत मे सुन्नी सम्प्रदाय के संबंध में पक्षकारों के हनफी होने की उपधारणा की जाती है तथा शिया सम्प्रदाय का होने पर अथना अशारिया से संबंधित होने की उपधारणा की जाती हैं। जब तक विपरीत सिद्ध न किया जाये। अगर कोई वाद न्यायालय के समक्ष विचारधाराओं के संपरिवर्तन के संदर्भ में आता है तो सर्वप्रथम न्यायालय पक्षकारों का सम्प्रदाय पता करती है और फिर विचारधारा को स्थापित करती है किसी भी विचारधारा को दूसरी विचारधारा पर थोपा नहीं जाता।

अध्याय 3

मुस्लिम विधि के स्रोत

सार-परिचय

- प्रस्तावना
- प्राथमिक स्रोत/मूल स्रोत
  - (क) कुरान
  - (ख) सुन्ना
  - (ग) अहादिस
  - (घ) इज्मा
  - (ङ) कियास
- द्वितीयक/गौण स्रोत
  - (क) प्रथा
  - (ख) न्याय-निर्णय
  - (ग) विधायन

प्रस्तावना

किसी विधि के स्रोत का अर्थ है ऐसी मौलिक सामग्री जिससे उस विधि के विषय-वस्तु को प्राप्त किया गया हो। किसी विधि-विशेष के बारे में ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व उनके स्रोतों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि बिना उस विधि के उद्गम की जानकारी प्राप्त किये, उसकी उचित व्याख्या तथा उसका निर्वचन सम्भव नहीं होता है।

मुस्लिम विधि में स्रोतों को मुख्यतया दो भागों में बाँटा जा सकता है :-

(1) प्राथमिक/मूल स्रोत

(2) द्वितीयक/गौण स्रोत

(1) प्राथमिक स्रोत/मूल स्रोत :- निम्नलिखित है -

(क) कुरान

(ख) सुन्ना

(ग) अहादिस

(घ) इज्मा

(ङ) कयास

(2) द्वितीयक स्रोत/गौण स्रोत निम्न हैं -

(क) प्रथा

(ख) न्याय-निर्णय

(ग) विधायन

(1) प्राथमिक स्रोत -

(क) कुरान :- कुरान शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द 'कुर्रा' से हुई है। जिसका अर्थ है 'पढ़ना' या जिसे पढ़ा जाना चाहिए। कुरान मोहम्मद साहब के ऊपर अल्लाह द्वारा नाज़िल की गई आयतों का संग्रह है। मुस्लिम विधि के विकास के द्वितीय चरण मे जैद साहब ने कुरान का पहला आधिकारिक संकलन किया था।

इस संबंध में कुरान की परिभाषा से संबंधित निम्न विचार भी महत्वपूर्ण हैं -

(1) मोहम्मद साहब को प्राप्त दैवीय संदेशों का लिपिबद्ध रूप कुरान है।

(2) वास्तव में कुरान मोहम्मद साहब के मस्तिष्क की उपज है जिसमें समय-समय पर आयी विभिन्न

समस्याओं का सुलझाया हुआ हल हैं।

कुरान में लगभग छः हजार दो सौ सैंतीस आयतों का संकलन हैं। इसमें लगभग 114 सुरा (अध्याय) हैं। कुरान में लगभग 200 आयतें विधि से संबंधित है तथा उनमें से लगभग 80 आयतें वैयक्तिक विधि से संबंधित हैं। कुरान को कुरान मजीद, गौरवान्वित कुरान, कुरान शरीफ, नेक कुरान, अलकिताब, दैवीय ग्रन्थ, अलकतरा (सत्य एवं असत्य में अन्तर बताने वाला) जैसे नामों से भी जाना जाता है।

(ख) सुन्ना :- पैगम्बर मुहम्मद की परम्पराओं की संन्ना अथवा अहादिस कहा जाता है। मुहम्मद साहब ने बिना दैवी-प्रेरणा के, एक सामान्य मनुष्य की भाँति जो कुछ भी कहा या किया वे सब पैगम्बर की परम्पराओं के अंतर्गत आते हैं। सुन्ना-सुन्नत का बहुवचन है जिसका अर्थ है आचरण करना। सुन्ना के निम्न प्रकार है -

(क) सुन्नत-अल-कौल - यह पैगम्बर साहब के कथन थे।

(ख) सुन्नत-उल-फैल - यह पैगम्बर मोहम्मद साहब का आचरण था।

(ग) सुन्नत-उल-तकरीर - इस आचरण को पैगम्बर मोहम्मद साहब की मूक सहमति थी।

(ग) अहादिस :- इसके तीन प्रकार है :-

(क) अहादिस-ए-मुतवातिर - यह वह प्रवचन थे जो सर्व-व्यापी थे।

(ख) अहादिस-ए-मशहूर - यह वह प्रवचन थे जो ज्यादातर लोगों में प्रचलित थे।

(ग) अहादिस-ए-अहद - ये वे प्रवचन थे जो बहुत कम लोगों में प्रचलित थे।

अहदिस हदीस का बहुवचन हैं जिसका अर्थ होता है - प्रवचन।

(घ) इज्मा - इज्मा का मतलब लोगों को एकमत होना है। मुस्लिम विधि के विकास में इस स्रोत का प्रमुख हाथ रहा है क्योंकि इज्मा के द्वारा ही सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप नये कानून बनाना सम्भव था। हजरत अबुबकर ने समस्याओं के तार्किक समाधान के लिए इज्मा का प्रयोग करना शुरू किया था। इज्मा एक बार स्थापित होने के बाद निरस्त नहीं की जा सकती। इज्मा के निम्न प्रकार है :-

(क) पैगम्बर के साथियों का इज्मा

(ख) विधिशास्त्रियों का इज्मा

(ग) लोगो का इज्मा -

हनाफी सुन्नी इज्मा को प्रमुख स्रोत के रूप में मान्यता देते हैं जबकि मलिकी सुन्नी सिर्फ मदीने के ही विधिशास्त्रियों के इज्मा को स्रोत के रूप में स्वीकार करते हैं। शिया और शफी सम्प्रदाय के लोग इज्मा को कम महत्व देते हैं।

(ङ) कयास - कयास का तात्पर्य है माप अर्थात् किन्हीं दो चीजों में तार्किक तुलना करके एक सर्वमान्य हल निकालना जो कि समाज के हित में हो। कयास को अबुहनीफा ने स्थापित किया था। इसी को तार्किक रूप से और समीचीन बनाकर इस्त-इसन जो कि ब्रिटिश साम्या का ही एक रूप था ने स्थापित कर दिया। शफी और मालिकी विचारधारा के विधिशास्त्री इसे स्रोत नहीं मानते।

(2) द्वितीय स्रोत - मुख्यतः तीन प्रकार के हैं -

(क) प्रथा :- स्वतंत्र रूप से प्रथा मुस्लिम विधि का कोई स्रोत नहीं है। कोई प्रथागत नियम मुस्लिम विधि का स्रोत तभी माना जायगा जब वह पैगम्बर मुहम्मद का सुन्ना रहा हो अथवा इज्मा में सम्मिलित कर लिया गया हो। मुस्लिमों के कृषि-भूमि, खैरात तथा धार्मिक एवं धर्मार्थ पूर्त विन्यास के मामलों में अभी भी प्रथाओं को लागू किया जा सकता है। शरिअत ऐक्ट की धारा 3 के अनुसार यदि किसी मुस्लिम ने दत्तक-ग्रहण, वसीयत तथा रिक्थ के मामलों में भी मुस्लिम विधि लागू कराने की स्पष्ट घोषणा नहीं की है तो उसके इन मामलों पर प्रथाओं को लागू किया जा सकता है। खोजा तथा बोहरा मुस्लिमों के वसीयती-उत्तराधिकार प्रथागत नियमों द्वारा ही प्रशासित होते हैं।

(ख) न्यायिक निर्णय :- ये स्रोत भारतीय न्यायलयों द्वारा मुस्लिम विधि के परिपेक्ष्य में उनके वैयक्तिक विधि से संबंधित निर्णय होते हैं। भारत में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय सभी न्यायालयों पर आबद्धकारी होगी।

कुछ प्रमुख निर्णय निम्नलिखित है :-

(ग) विधायन

मुस्लिम विधि में निम्नलिखित अधिनियम उल्लेखनीय है –

(i) मुसलमान वक्फ विधिमान्यकरण अधिनियम, 1913

(ii) बाल विवाह निरोधक अधिनियम, 1929

(iii) मुस्लिम परसनल लॉ शरिअत अप्लीकेशन एक्ट, 1937

(iv) मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम 1939

(v) मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षय) अधिनियम, 1986 इत्यादि।

अध्याय 4

निकाह

सार-परिचय

- प्रस्तावना
- परिभाषा
- प्रकृति
- निकाह के आवश्यक तत्व
  - पक्षकारों की सक्षमता
  - स्वतंत्र सहमति
  - आवश्यक औपचारिकताएँ
  - निषेध का अभाव
- निकाह के प्रकार
  - वैध
  - शून्य
  - अनियमित
  - इद्दत
  - खिलवत-उस-सहीह
  - ख्यार-उल-बुलुग
  - मुता विवाह
  - दाम्पत्य अधिकारों का पुर्नस्थापन

प्रस्तावना :-

मानव सभ्यता का आधार विवाह नामक संस्था है। **कुरान के अनुसार** - मोहम्मद साहब ने कहा है कि निकाह मेरी सुन्नत हैं जो इसे नहीं मानता वह मेरा नहीं है।

रद्द-उल-मुत्तार के अनुसार आदम के समय से आज तक हम लोगों के लिए यह (निकाह) रखा गया है और जन्नत में होने वाला ऐसा कोई भी इबादत का कार्य नहीं है सिवाय निकाह और ईमाम के।

विधिशास्त्रियों में इस बात का इज्मा है कि निकाह सुन्नत-ए-मुवाकिदा हैं अर्थात् ऐसा आचरण जिसका करना साधुता है और विचलन पाप।

परिभाषा :-

हेदाया के अनुसार - कानून की शब्दावली में निकाह से एक ऐसी संविदा का बोध होता है जो संतानोत्पत्ति को वैधानिकता प्रदान करने के उद्देश्य से की जाती है।

जस्टिस महमूद नें अब्दुल कादिर बनाम मुसम्मात सलीमा (1886) 8 इला० 149 नामक वाद में कहा मुस्लिमों में निकाह शुद्ध रूप से एक सिविल संविदा है यह कोई संस्कार नहीं है।

सबरूनिशा बनाम शब्दूशेख ए० आई० आर० (1933) 55 ALL 743, 756 मुस्लिम विधि में निकाह विक्रय के समान एक संविदा है जिसमें मेहर और सम्पत्ति के बदले में पत्नि का अंतरण होता है।

निकाह की प्रकृति :-

मुस्लिम विवाह संविदा है या संस्कार यह जानने के लिए हमे विवाह के विभिन्न पहलू देखने होंगे। मुस्लिम विधि में निकाह के तीन पहलू हैं :-

(i) विधिक- (legal)

(ii) सामाजिक (Social)

(iii) धार्मिक (Religious)

<u>विधिक पहलू</u> :- मुस्लिम विधि में निकाह के लिए वैध संविदा की शर्ते पूरी करनी होती हैं इसलिए इसे संविदा माना गया है जैसे -

(i) निकाह इजाब एवं कुबुल अर्थात् प्रस्थापना एवं स्वीकृति से पूर्ण होता है।

(ii) संविदा की तरह निकाह में प्रतिफल यानि मेहर की आवश्यकता होती है यद्यपि दोनो ही सिद्धांतों की शुरूआत में प्रतिफल और मेहर आवश्यक नहीं, पर इनकी पूर्णता के लिए इनका होना आवश्यक हैं।

(iii) संविदा की तरह निकाह में भी पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति होनी चाहिए।

(iv) निकाह में संविदा के प्रकारों शून्य, शून्यकरणीय एवं वैध निकाह का सिद्धांत प्रचलित है।

(v) संविदा की तरह निकाह में भी संव्यवहारपूर्ण होने के बाद पक्षकारों के कुछ अधिकार एवं दायित्व हो जाते हैं। इन अधिकारों एवं दायित्व का उल्लंघन करने पर पीड़ित पक्षकार को संव्यवहार (संविदा/निकाह) को निरस्त करने का अधिकार मिल जाता है।

<u>सामाजिक पहलू</u> :- निकाह एक सामाजिक संस्था हैं जो महिला को समाज में एक सम्मानजनक प्रास्थिति प्रदान करती है। प्रतिफल निकाह में सम्मान के लिए एवं स्त्री के संरक्षण के लिए दिया जाता है।

निकाह में कुछ व्यक्तियों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करने पर रोक है जैसे रक्त-संबंधी, निकट संबंधी धात्रेय संबंधी जबकि संविदा में संबंधों के आधार पर-व्यक्तियों से संविदा करने पर कोई रोक नहीं हैं निकाह सिर्फ चार बार किया जा सकता है, जबकि संविदा कितनी भी बार की जा सकती है।

संविदा अधिनियम की धारा 64 मुस्लिम विवाह पर लागू होती है यानि जहाँ निकाह किसी पक्षकार के द्वारा एकतरफा रूप से निरस्त किया जाता है वहाँ पर दोषी पक्षकार को सारे लाभ पीड़ित पक्षकार को वापस करने होंगे।

<u>धार्मिक पहलू</u> :- इस्लाम में सन्यास नामक कोई सिद्धांत नहीं है। **अब्दुरहीम** के अनुसार मुस्लिम विधि वेत्ताओं ने निकाह नामक संस्था का निर्माण इबादत (आध्यात्मिक कार्य) तथा मुआमलात (मामलां सामान्य कार्य) दोनों के लिए किया है।

जो निकाह करता है वह पुण्य करता है और स्वयं को तथा एक स्त्री को व्यभिचार करने से बचाता है और इसके लिए उसे जन्नत में इनाम दिया जायेगा।

निकाह मोहम्मद साहब द्वारा किया गया आचरण यानि सुन्ना है जिसको नकारने या गलत सिद्ध करने का अधिकार किसी भी व्यक्ति या संस्था कों नहीं प्राप्त हैं।

अनीस बेगम बनाम मु० इस्तफा हुसैन (1933) 55 इला० 743 इस वाद में तय किया गया कि निकाह संविदा के साथ-साथ एक धार्मिक संस्कार भी हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि निकाह में संविदा के कुछ मूलभूत तत्व है और कुछ नहीं है तथा मोहम्मद साहब ने निकाह को अति आवश्यक सुन्नत माना है तथा विधिशास्त्रि इस बात पर एकमत है कि निकाह यद्यपि संविदा है लेकिन इनमें संस्कार के तत्व भी हैं। अत: कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि निकाह में संविदा और संस्कार दोनों के तत्व हैं एक तरफ से प्रक्रिया रूप में यह संविदा है तो पूर्णता के बाद दूसरी तरफ से उल्लंघन न किया जा सकने वाला नियम (संस्कार)।

<u>निकाह के आवश्यक तत्व</u> :-

विवाह के निम्न आवश्यक तत्व है :-

(1) पक्षकारों की सक्षमता

(2) स्वतंत्र सहमति

(3) आवश्यक औपचारिकताएँ

(4) निषेध का अभाव

(1) पक्षकारों की सक्षमता – निकाह किसी भी मुस्लिम स्त्री या पुरूष द्वारा ही किया जा सकता है।

(क) आयु

(ख) स्वस्थमस्तिष्क

(ग) धर्म

(क) आयु :- निकाह, मेहर एवं विवाह-विच्छेद के लिए यौवनावस्था की आयु गणना में ली जायेगी जबकि वक्फ, वसीयत, दान, अभिभावकता के लिए वयस्कता की आयु 18 वर्ष भारतीय व्यस्कता अधिनियम 1875 के अनुसार गणना में ली जायेगी।

हेदाया के अनुसार - यौवनावस्था की आयु वह आयु है जबकि पक्षकार संतानोत्पत्ति के लिए सक्षम हो जाये। इस संबंध में पुरूष की आयु 12 वर्ष तथा महिला की आयु 9 वर्ष पूर्ण होने पर यौवनावस्था मान ली जायेगी।

मुसम्मात अतिका बेगम बनाम मोहम्मद इब्राहिम AIR (1916) P.C. 250 इस वाद में प्रिवी कौसिल ने यह तय किया कि हेदाया का नियम कोई तय सिद्धांत नहीं है और पक्षकार यदि 15 वर्ष की आयु पा लेते हैं तो वह यौवनावस्था की आयु मानी जायेगी। यौवनावस्था की आयु वह आयु है जब पक्षकार लैंगिक सक्षमता प्राप्त कर ले।

अवयस्क मुस्लिम का निकाह उसके संरक्षक द्वारा कराय जा सकता है।

सुन्नी विधि के अनुसार संरक्षकों का क्रम निम्न है – पिता, पितामह, भाई-भातृ कुल के अन्य सदस्य, माता, माता एवं मातृ कुल के अन्य सदस्य।

शिया विधि के अनुसार अभिवावकों का क्रम है पिता और पितामह यदि उक्त वरीयता क्रमों में से कोई भी व्यक्ति मौजूद न हों तो निकाह काजी के द्वारा या न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक के द्वारा कराया जा सकता है।

यदि उक्त वरीयता क्रमों में से कोई भी व्यक्ति मौजूद न हो तो निकाह काज़ी के द्वारा या न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक के द्वारा कराया जा सकता है।

बाल विवाह निषेध अधिनियम 1929 निकाह पर भी लागू होता है। इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार विवाह की वैधता पर तो कोइ प्रभाव नहीं पड़ता परंतु इसे संपन्न कराने ववाले व्यक्तियों के विरूद्ध दाण्डिक कार्यववाही की जा सकती है तथा निकाह को निषेधाज्ञ द्वारा रूकवाया जा सकता है।

निकाह के पक्षकारों के पास ख्यार-उल-बुलुग यानि यौवनावस्था का विकल्प नामक अधिकार है इसके अनुसार अव्यस्कता में कराये गये निकाह को व्यस्क होने के बाद पक्षकारों के द्वारा निरस्त किया जा सकता है।

(ख) स्वस्थचित्त -

कोई भी व्यक्ति जो कि अपने किये गये कार्यों का विधिक परिणाम समझने में समर्थ हैं उसे हम स्वस्थ-चित्त (Soundmind) का कहते हैं। जो व्यक्ति स्वस्थ-चित्त नहीं है उसके द्वारा किया गया निकाह बातिल शून्य होता है। इनका निकाह अभिभावक द्वारा कराया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति कुछ समय के लिए ही विकृत-चित्त रहता है तब जिस समय वह स्वस्थ-चित्त का हो जाता है उस समय वह निकाह कर सकता है।

(ग) धर्म -

कोई भी मुस्लिम चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय या विचारधारा का हो किसी अन्य मुस्लिम से निकाह जैसे कोई भी शिया पुरूष किसी भी सुन्नी स्त्री से तथा कोई भी सुन्नी पुरूष किसी भी शिया स्त्री से निकाह कर सकता है। शिया मुस्लिम (पुरूष एवं स्त्री) किसी भी गैर-मुस्लिम से निकाह नहीं कर सकते। यह निकाह शून्य होता है। सुन्नी मुस्लिम पुरूष किताविया संप्रदाय की लड़की से निकाह कर सकता है जैसे यहूदी एवं इसाई। यदि कोई मुस्लिम स्त्री किसी गैर मुस्लिम से निकाह करती है तो यह निकाह शून्य होगा लेकिन वह विशेष विवाह अधि नियम के तहत निकाह कर सकती है।

(2) स्वतंत्र सहमति -

सहमति यदि उत्पीड़न से, कपट से या तथ्य की भूलवश दी गई है तो स्वतंत्र नहीं होती। यदि पक्षकार अवयस्क अथवा पागल है तो उसके अभिभावक की सहमति अनिवार्य है।

स्वतंत्र सहमति न देने के प्रभाव

(i) यदि कपटपूर्वक या जबरदस्ती सहमति सुन्नी हनफी संप्रदाय में मान्य है तथा शिया सम्प्रदाय में अमान्य होगी।

(ii) सुन्नी विधि में कपटपूर्वक ली गई सहमति विवाह को फासिद करेगी और शिया विधि में बतिल (शून्य) होगी। विवाह की सहमति यदि कपटपूर्वक या धोखा देकर प्राप्त की गयी है तो धोखे से प्रभावित व्यक्ति द्वारा विवाह शून्यकरणीय (viodable) होता है। उदाहरणस्वरूप, यदि पत्नी ने किसी गुप्त रोग को कपटपूर्वक छिपा कर धोखे से पति की सहमति ली गयी है तो जैसे ही पति को इसकी जानकारी हो वह चाहे तो विवाह को शून्य (void) करा सकता है।

(iii) तथ्य की भूल, व्यक्ति या निकाह, से संबंधित किसी महत्वपूर्ण तथ्य के बारे में हैं तो निकाह को शून्य बना देगी।

(3) <u>विवाह की आवश्यक औपचारिकताएँ</u> :-

(i) मुस्लिम विधि में निकाह के लिए धार्मिक रीति-रिवाज या संस्कार आवश्यक नहीं है पक्षकारों में प्रस्ताव एवं स्वीकृति (एजाब एवं कुबुल) आवश्यक हैं।

(ii) एजाब एवं कुबुल एक ही बैठक में होनी चाहिए जिससे कि वह एक ही संव्यवहार का भाग लगे। यद्यपि वे एक ही स्थान पर उपस्थित न हो तब भी वह एक ही संव्यवहार का भाग होगी।

(iii) प्रस्ताव एवं कुबुल मौखिक एवं लिखित हो सकता है।

(iv) निकाह के लिखित रूप को काबीनामा (Kabinnamah) कहते हैं।

<u>प्रस्ताव तथा स्वीकृति की पारस्परिकता **(Reciprocity)**</u> - प्रस्ताव तथा स्वीकृति का पारस्परिक होना आवश्यक है। अर्थात् प्रस्ताव की उसके सम्पूर्णता सहित ही स्वीकृती होनी चाहिए।स्वीकृति के साथ ही कुछ शर्त लगा देने या प्रस्ताव कों कुछ परिवर्तनों सहित स्वीकार कर लेने पर वह स्वीकृति नहीं रह जाती बल्कि एक प्रति-प्रस्ताव (counter-offer) बन जाता है। यदि किसी पुरूष ने प्रस्ताव भेजा कि 'मैं तुमसे 1000 रू० के मेहर की रकम पर विवाह करता हूँ।'' इसके उत्तर में स्त्री विवाह की स्वीकृति में कहती है कि हाँ, हमने विवाह की स्वीकृति 2000 रू०मेहर में कर दी तो इस स्थिति स्वीकृति प्रति-प्रस्ताव (counter-offer) बन गया है और विवाह की संविदा नहीं संघटित हो पायी। प्रस्ताव तथा स्वीकृति में पारस्परिकता न होने के कारण विवाह शून्य माना जायगा।

<u>सशर्त विवाह **(Conditional Marriage)**</u> - प्रस्ताव तथा स्वीकृति में वर्तमान विवाह का आशय (intention) परिलक्षित होना चाहिए। प्रस्ताव अथवा स्वीकृति यदि किसी शर्त (condition) के साथ है या किसी आकस्मिक घटना (contigency) पर निर्भर करते हैं तो विवाह की संविदा पूर्ण नहीं हो पाती है। यदि 'अ' ने 'ब' को अगले माह में विवाह कर लेने का प्रस्ताव भेजा और 'ब' द्वारा इसी आशय की स्वीकृति भी है तो विवाह पूर्व नहीं माना जायेगा। इसी प्रकार, 'अ' विवाह का प्रस्ताव 'ब' को इस शर्त के साथ भेजता है कि ब बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास हो जाय। बाद में 'ब' ने परीक्षा को प्रथम श्रेणी में पास कर लिया तो भी विवाह पूर्ण नहीं माना जायगा। सशर्त-विवाह, शर्त पूर्ण होने पर भी विधिमान्य विवाह नहीं होता है।

इसी प्रकार समाश्रित-विवाह (contingent marriage) अर्थात् भविष्य की किसी अनिश्चित घटना पर आधारित विवाह उल्लिखित घटना के घटित हो जाने पर भी पूर्ण विवाह नहीं माना जायगा।

<u>साक्षियों की उपस्थिति **(Presence of Witnesses)**</u> - विवाह का प्रस्ताव तथा स्वीकृति दो सक्षम (competent) साक्षियों (गवाहों) की उपस्थिति में होना चाहिए। स्वस्थचित्त वाला कोई भी मुस्लिम पुरूष जिसने यौवनावस्था की वय (15 वर्ष) प्राप्त कर ली हो, विवाह का साक्षी बन सकता है सुन्नी विधि में विवाह के समय कम से कम दो गवाहों का होना आवश्यक है। यदि एक साथ दो पुरूष गवाह न मिल पायें तो एक पुरूष तथा दो (स्वस्थचित्त तथा वयस्क) मुस्लिम महिलायें दूसरें पुरूष गवाह का स्थान ले सकती हैं। लेकिन, इस समीकरण के आधार पर चार मुस्लिम महिलाएँ 'सक्षम गवाह' नहीं बन सकतीं; एक पुरूष गवाह का होना आवश्यक है। इन संदर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि दो व्यक्तियों को गवाह बनाने के लिए विशेष रूप से उन्हें नियुक्त किया जाना आवश्यक नहीं है। केवल इतना ही पर्याप्त है कि ऐसे दो सक्षम व्यक्ति विवाह सम्पन्न होते समय उपस्थित

रहे हों और प्रस्ताव तथा स्वीकृति उनकी जानकारी में हुए हों। बिना दो सक्षम गवाहों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ विवाह अनियमित (irregular) या 'फासिद' होता है।

शिया-विधि – शिया-विधि के अंतर्गत विवाह की वैधता के लिए सक्षम गवाहों की उपस्थिति अनिवार्य नहीं हैं; अत: बिना दो सक्षम गवाहों की उपस्थिति द्वारा सम्पन्न हुआ विवाह भी पूर्णतया विधिमान्य (valid) माना जाता है।

मुस्लिम विधि में विवाहों का पंजीकरण आवश्यक नहीं है।

(4) <u>निषेध का आभाव</u> – मुस्लिम विधि में निकाह पर दो प्रकार के निषेध हैं –

- **(i)** सम्पूर्ण निषेध – **(ii)** सापेक्षिक निषेध

(i) <u>सम्पूर्ण निषेध</u> :– ये निषेध आदेशात्मक प्रकृति के हैं और इनके उल्लंघन में निकाह करने पर निकाह बातिल माना जायेगा। ये निषेध स्थायी प्रकृति के हैं अर्थात् किसी भी परिस्थिति में इनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। ये निम्न प्रकार के हैं :–

(1) कराबत (रक्त संबंध)
(2) मुशारत (निकट संबंध)
(3) रिज़ा (धात्रेय संबंध)

(1) <u>कराबत</u> – कराबत में निम्न संबंध आते हैं :–

(क) **(i) अपने पूर्वज/वंशज कितनी भी उच्च/निम्न पीढ़ी के हो,** अर्थात् मुस्लिम पुरूष अपनी माता, दादी, नानी से निकाह नहीं कर सकता है।

(ii) मुस्लिम महिला अपने पित, दादा एवं नाना से निकाह नहीं कर सकती है।

(iii) मुस्लिम पुरूष अपने पुत्री, पौत्री, नातिन से

(iv) मुस्लिम स्त्री अपने पुत्र, पौत्र, नाती से

(ख) **पिता एवं माता के वंशज कितने भी निम्न पीढ़ी के** सगे भाई-बहन, सहोदर भाई-बहन, समरक्त भाई-बहन, एवं इनके वंशज से निकाह नहीं कर सकते हैं। जैसे मुस्लिम पुरूष भतीजी एवं भान्जी से निकाह नहीं कर सकता। मुस्लिम स्त्री भतीजा एवं भान्जा से निकाह नहीं कर सकता।

अपवाद – चचेरे, ममेरे, फुफेरे और मौसेरे भाई बहनों से निकाह पर रोक नहीं है।

(ग) **पूर्वजों के भाई बहन** – पिता के भाई या बहन, माता का भाई या बहन।

<u>अपवाद</u> – **मुसम्मात रूरो बनाम बनाम सिंह AIR (1935) लाहौर 237**

पूर्वजों के भाई/बहन के पति या पत्नी से निकाह वर्जित नहीं है अत: कोई भी मुस्लिम पुरूष अपनी चाची या मामी से जो कि विधवा या तलाकशुदा हो चुकी हो से निकाह कर सकता है इसी तरह कोई भी मुस्लिम स्त्री अपनी बुआ या मौसी के विधुर या तलाकशुदा पति मौसा या फुफा से निकाह कर सकती है।

(2) <u>मुशारत</u> :– सामान्य तौर पर मुस्लिम विधि में निकट संबंध या मुशारत निकाह के द्वारा उत्पन्न संबंधों को कहा जाता है। इनसे भी विवाह पूर्णत: निषेधित हैं ये निम्न प्रकार हैं :–

(i) पति/पत्नी के पूर्वज/वंशज – मुस्लिम पुरूष अपनी पत्नी के विधवा/तलाकशुदा माँ से चाहे व कितनी भी उच्च पीढ़ी की क्यों न हो निकाह नहीं कर सकता। कोई भी मुस्लिम स्त्री अपने पति के विधुर/तलाकशुदा पिता

से चाहे वह कितने भी उच्च पीढ़ी के क्यों न हों, वह निकाह नहीं कर सकती।

(ii) पति/पत्नी के वंशज – मुस्लिम पुरूष अपनी पत्नी की पुत्री से तथा मुस्लिम स्त्री अपने पति के पुत्र से निकाह नहीं कर सकते।

<u>अपवाद</u> – कोई भी मुस्लिम पुरूष उस लड़की से जो कि उसकी पत्नी के पूर्वपति से उत्पन्न हुई हो से निकाह कर सकता है यदि उस पत्नी के साथ वैवाहिक सम्भोग न हुआ हो।

(iii) अपने पूर्वज/वंशज की पत्नी – कोई भी मुस्लिम पुरूष अपने पिता या पितामह की पत्नी से निकाह नहीं कर सकता।

कोई भी मुस्लिम पुरूष अपने पुत्र या पौत्र की पत्नी से निकाह नहीं कर सकती।

कोई मुस्लिम स्त्री अपने माता या नानी के पति से निकाह नहीं कर सकता।

(3) रिज़ा (धात्रेय संबंध) - रिज़ा से तात्पर्य उस संबंध से हैं जबकि कोई भी महिला किसी दो वर्ष से छोटे बच्चे को अपना दूध पिलाती है तो वह उसकी धात्रेय या धाय माँ हो जाती है और उससे भी निकाह के संबंध में पूर्ण निषेध है।

शिया सम्प्रदाय में इस नियम का कोई अपवाद मान्य नहीं है पर सुन्नी सम्प्रदाय में इसके निम्न अपवाद मान्य है:-

(क) बहन की धात्रेय माता,
(ख) धात्रेय बहन की माता,
(ग) धात्रेय पुत्र की बहन,
(घ) धात्रेय भाई की बहन,

(ii) सापेक्षिक अक्षमता (निषेध) :- ये निषेध अक्षम स्वरूप के हैं। ये अस्थायी होते हैं इनका पालन अनिवार्य नहीं है पर इनका न होना उचित माना गया है। ये निम्न प्रकार के हैं -

(i) विधि विरूद्ध संयोजन
(ii) पाँचवा निकाह
(iii) गैर-मुस्लिम से निकाह
(iv) सक्षम गवाहों की अनुपस्थिति
(v) इद्दत में निकाह

(i) विधि विरूद्ध संयोजन - कोई भी मुस्लिम पुरूष ऐसी स्त्री से जो कि उसकी वर्तमान पत्नी से इस प्रकार सम्बन्धित हो कि वह उसकी पत्नी के आत्यान्तिक निषेध में आती हो (पूर्ण निषेध) तो ऐसा विवाह शिया विधि बतिल व सुन्नी विधि में फासिद होगा।

(ii) पाँचवा निकाह :- मुस्लिम-विधि एक साथ चार विवाहों तक की छूट देता है, इससे अधिक की नहीं। चार पत्नियों के रहते हुए किसी पाँचवीं स्त्री से विवाह वर्जित है। सुन्नी विधि में पाँचवाँ विवाह अनियमित माना जायगा। शिया विधि के अंतर्गत पाँचवाँ विवाह शून्य माना जाता है। -

(iii) गैर-मुस्लिम से निकाह :-

(क) शिया पुरूष और शिया या सुन्नी महिला का निकाह सहीह होगा।
(ख) शिया पुरूष और गैर मुस्लिम स्त्री का (किताबिया, अग्निपूजक, मूर्तिपूजक) निकाह बातिल होगा।
(ग) सुन्नी पुरूष एवं शिया या सुन्नी महिला निकाह सहीह होगा।
(घ) सुन्नी पुंरूष एवं किताबिया स्त्री निकाह सहीह होगा।
(ङ) सुन्नी पुरूष एवं गैर मुस्लिम स्त्री निकाह फासिद होगा।
(च) मुस्लिम स्त्री और गैर मुस्लिम पुरूष निकाह बतिल होगा।

(iv) सक्षम गवाहों की अनुपस्थिति :- सुन्नी विधि के अंतर्गत विवाह दो सक्षम गवाहों की उपस्थिति में सम्पन्न होना चाहिए। गवाहों के सक्षम न होने पर या बिना किसी गवाह की उपस्थिति के सम्पन्न हुआ विवाह अनियमित होता है।

(v) इद्दत काल में निकाह - विवाह-विच्छेद के पश्चात् विधवा या तलाकशुदा महिला को 'इद्दत' की अवधि पूर्ण करनी पड़ती है। इस अवधि के पूर्ण होने से पहले उसे दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं है। 'इद्दत' की अवधि का पालन करती हुई स्त्री से किया गया विवाह अनियमित होता है। शिया विधि के अंतर्गत ऐसा विवाह शून्य माना जाता है।

विविध निषेध

(i) हज-यात्रा

(ii) अपनी तलाकशुदा स्त्री से निकाह
(iii) कफा (kafa) का सिद्धांत
(iv) गर्भवति स्त्री से निकाह
(v) गम्भीर रूप से बीमार-व्यक्ति से निकाह

(i) हज-यात्रा – यदि कोई मुस्लिम व्यक्ति हज यात्रा के दौरान इहराम (पवित्र वस्त्र) पहनकर मक्का में काबा की सीमाओं के अन्दर प्रवेश कर जाता है तो इस स्थिति में निकाह करने पर शिया एवं सफी विधि के अनुसार निकाह बतिल होगा तथा अन्य विधियों के अनुसार सहीह होगा।

(ii) अपनी तलाकशुदा स्त्री से निकाह :- अपनी ही तलाकशुदा पत्नी से बिना हलाला पद्धति के किया गया निकाह अनियमित होगा।

हलाला पद्धति के निम्न आवश्यक तत्व है :-

(क) तलाकशुदा पत्नि को इद्दत का पालन करना चाहिए।
(ख) उसकों फिर से वैध निकाह करना चाहिए। निकाह में वैवाहिक संभोग होना चाहिए। द्वितीय पति द्वारा उसे पुनः तलाक दिया जाना चाहिए।
(ग) उस स्त्री को पुनः इद्दत का पालन करना चाहिए। इद्दत पालन करने के बाद वह स्त्री अपने पूर्व पति से फिर निकाह करने के योग्य हो जाती है।

(iii) कफा (kafa) का सिद्धांत :- हनफी एवं शफी विधियों यह सिद्धांत मूलतः सामाजिक निषेध के रूप में है। इस सिद्धांत के अनुसार निकाह के दोनों पक्षों को निकाह की वैधता के लिए परिवार धंधा, चरित्र, सामाजिक प्रास्थिति और साधन के परिपेक्ष्य में समान होना चाहिए। इसके उल्लंघन में किया गया निकाह विधिमान्य होता है।

समाज के सोच एवं संसाधन के परिपेक्ष्य में आधुनिक होने के कारण अब यह सिद्धांत महत्वहीन हो गया है।

(iv) गर्भवती स्त्री से निकाह :- यदि स्त्री स्वयं (जिसको निकाह करना है) के द्वारा गर्भवती, स्त्री से किया गया निकाह सही होगा। अन्य के द्वारा गर्भवती स्त्री से किया गया निकाह फासिद होगा।

(v) गम्भीर रूप से बीमार व्यक्ति से निकाह :- शिया गम्भीर रूप से बीमार व्यक्ति के साथ किया गया निकाह शिया विधि में सहीह होगा एवं सुन्नी विधि में यदि निकाह के बाद संभोग हो जाता है तब निकाह सही होगा अन्यथा फासिद होगा।

निकाह के प्रकार

अभिव्यक्त निषेध एवं अक्षमताओं के आधार पर मुस्लिम निकाह को तीन भागों में बाँटा गया है :-

(क) सहीह (वैध निकाह)
(ख) बातिल (शून्य निकाह)
(ग) फासिद (अनियमित निकाह)

फासिद निकाह की संकल्पना शिया विधि में अमान्य हैं। शिया विधि मं या तो निकाह सही होते हैं या बातिल

(क) सहीह (वैध निकाह) – जब निकाह में सभी शर्ते पूर्ण होती हैं एवं कोई निषेध या अक्षमता नहीं पायी जाती तो निकाह सहीह होता है।

सहीह निकाह के परिणाम :-

(i) दोनों पक्षकारों को एक दूसरे से वैवाहिक संभोग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।
(ii) पुरूष पति की एवं स्त्री पत्नी की प्रस्थिति प्राप्त कर लेते हैं।
(iii) पति तथा पत्नी के विवाह से पहले की विधिक प्रास्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता है अर्थात, कानून की दृष्टि में पति तथा पत्नी दो स्वतंत्र व्यक्ति माने जायेंगे; विवाह इनके व्यक्तित्व का एकीकरण नहीं करता। किसी मुस्लिम पत्नी की सम्पत्ति पर भी उसके पति का कोई नियंत्रण नहीं रहता। इसी प्रकार पति की सम्पत्ति

में पत्नी का भी कोई अधिकार नहीं रहता है। पत्नी को पति की सम्पत्ति की चोरी के अपराध का दोषी माना जा सकता है।

(iv) पत्नी मेहर एवं भरण-पोषण की अधिकारिणी हो जाती हैं।

(v) निकाह के फलस्वरूप उत्पन्न बच्चे एवं जायज होते हैं।

(vi) पारस्परिक उत्तराधिकार प्राप्त हो जाता है।

(vii) विवाह विघटन पर स्त्री को इद्दत पालन करना आवश्यक होता है।

(viii) पत्नी पति के साथ वैवाहिक घर में रहने के लिए बाध्य होती है।

(ix) निषिद्ध संबंधों पर (करावात, मुशारत, रिजा) के उल्लंघन में किया गया निकाह बातिल होता है।

(x) कोई अन्य समझौता जो कि निकाह नामे में हो और जो इस्लाम के एवं निकाह के उद्देश्यों के विपरीत न हो लागू करवाया जा सकता हैं।

(ख) <u>बातिल अर्थात् (शून्य निकाह)</u> :- यदि निकाह आत्यान्तिक निषेध हो या अक्षमताओं (शिया विधि के ऊपर ही लागू हो) के उल्लंघन में किया जाता है तो इसे बातिल निकाह कहते हैं यह प्रारम्भ से ही शून्य होता है। इसे निकाह सिर्फ इसीलिए कहते हैं क्योंकि प्रक्रियात्मक औपचारिकताएँ पूर्ण हो जाती हैं। शिया विधि के अंतर्गत बातिल निकाह निम्न हैं -

(1) आत्यान्तिक निषेध (कारबत, मुशारद, रिजा) के उल्लंघन में किया गया निकाह।

(2) अक्षमता (पक्षकारों की) (आयु विकृतचित्त) में किया गया निकाह।

(3) पाँचवी पत्नी से किया गया निकाह।

(4) धार्मिक यात्रा के दौरान किया गया निकाह।

(5) इद्दत के दौरान किया गया निकाह।

(6) गैर-मुस्लिम से किया गया निकाह।

<u>सुन्नी-विधि के अंतर्गत बातिल निकाह</u> - आत्यन्तिक निषेध, अक्षमता, इत्यादि।

बातिल निकाह के **विधिक परिणाम** :-

(i) यह निकाह नहीं माना जाता और इससे संबद्ध कोई भी विधिक प्रसंगति उत्पन्न नहीं होती।

(ii) पुरूष को पति और स्त्री को पत्नी की प्रास्थिति प्राप्त नहीं होती।

(iii) इस निकाह के फलस्वरूप वैवाहिक पूर्णता होने पर उत्पन्न संताने अधर्मज मानी जाती हैं। (जिना की संतान)

(iv) पारस्परिक उत्तराधिकार प्राप्त नहीं होता।

(v) इस निकाह को शून्य घोषित कराने के लिए किसी भी विधिक कार्य की आवश्यकता नहीं होती।

(vi) चूँकि यह संबंध निकाह नहीं होता इसलिए पक्षकार निकाह संबंधी किसी भी शरियत कर्त्तव्यों को पालन करने की आवश्यकता नहीं होती।

(vii) पत्नी मेहर एवं भरण-पोषण के लिए अधिकारी नहीं होती।

(viii) इस निकाह के बाद पक्षकार पुर्नविवाह करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

(ix) यदि निकाह पूर्णता को प्राप्त हो जाता है तो पत्नी प्रथागत मेहर की अधिकारी होती है।

(ग) <u>फासिद अर्थात् अनियमित निकाह</u> :- अनियमित विवाह केवल सुन्नी-विधि में ही मान्य है। शिया विधि में अनियमित विवाह नहीं होते। अनियमित विवाह ऐसे अपूर्ण विवाह होते हैं जिन्हें इनकी अनियमितताएँ दूर करके पूर्ण किया जा सकता है। पूर्ण होने पर ऐसे विवाह प्रारम्भ से ही विधिमान्य विवाह मान लिए जाते हैं। किसी सापेक्ष निषेध का उल्लंघन होने पर सुन्नी विधि में विवाह अनियमित माना गया है।

अनियमित (फासिद) विवाह के विधिक प्रभाव

(Legal Effects of Irregular Marriage)

(1) सम्भोग वैध (lawful) होता है।

(2) संतानें धर्मज (legitimate) होती हैं तथा उन्हें अपने माता-पिता की सम्पत्तियों का उत्तराधिकारी भी माना जाता है।

(3) पति तथा पत्नी में परस्पर उत्तराधिकार नहीं रहता। अर्थात् विवाह यदि फासिद है तो पति के देहान्त के पश्चात् पत्नी उसके सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं मानी जायगी। इसी प्रकार पति भी पत्नी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता है।

(4) फासिद विवाह में यदि संभोग न हो पाया हो तो पत्नी को कोई मेहर (dower) नहीं मिलता है।

(5) संभोग हो चुकने की स्थिति में भी पत्नी उचित मेहर (proper dower) , अथवा निश्चित मेहर जो भी कम हो, केवल उसे ही प्राप्त करने की अधिकारिणी है।

(6) संभोग होने के पूर्व ही विवाह-विच्छेद होने पर पत्नी का इद्दत पालन करना आवश्यक नहीं है। विवाह-विच्छेद यदि संभोग के पश्चात् हुआ है तो पत्नी को केवल तीन माह की इद्दत का पालन करना होता है।

(7) अनियमित विवाह पति-पत्नी का स्थायी एवं पूर्ण संबंध नहीं माना जाता है अत: अनियमित विवाह के दम्पत्तियों को विवाह की अनियमितता दूर करने के लिए बाध्य करने अन्यथा विवाह को ही भंग करने का अधिकार काजी को प्राप्त है। संभोग के पूर्व या उसके पश्चात् पति-पत्नी स्वयं भी अपने अनियमित विवाह को भंग कर सकते हैं।

शिया विधि - अनियमित विवाह शिया-विधि मे मान्य नहीं है। शिया-विधि के अंतर्गत विवाह या तो पूर्णतया विधि मान्य (सहीह) हो सकते हैं या शून्य (बातिल)।

इद्दत :- इद्दत का शाब्दिक अर्थ है 'गणना करना'।

इद्दत से तात्पर्य उस अवधि से हैं जिसमें कोई भी मुस्लिम स्त्री विवाह-विघटन के बाद चाहे वह विघटन मृत्यु द्वारा या पक्षकारों के किसी कार्य द्वारा हुआ हो पुनर्विवाह करने से प्रतिबंधित रहती है।

उद्देश्य - (1) यदि स्त्री गर्भवती हो तो उस बच्चे का पितृत्व तय करना या निश्चित करना।

(2) विवाह का विघटन यदि पति की मृत्यु से होता है तो पति के प्रति शोक प्रकटीकरण एवं उसके सम्मान में किया जाता है।

अवधि -**(1) यदि विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद से होता है** -

यदि सम्भोग न हुआ हो तो इद्दत पालन करने की आवश्यकता नहीं है।

(i) यदि संभोग हुआ हो तीन मासिक चक्रों तक

(ii) यदि मासिक चक्र नहीं है तो तीन चन्द्रमास तक

(iii) यदि स्त्री गर्भवती हो तो बच्चा पैदा होने तक या गर्भपात होने तक।

(2) यदि विवाह का विघटन मृत्यु द्वारा हुआ हो -

(i) इद्दत की अवधि 4 माह 10 दिन होगी।

(ii) यदि मृत्यु के समय स्त्री गर्भवती हो तो बच्चा पैदा होने तक या 4 माह 10 दिन जो भी अवधि लम्बी हो।

(iii) अगर वैवाहिक संभोग नहीं हुआ हो तो 4 माह -10 दिन तक इद्दत पालन करने होगा।

तलाक से विवाह-विच्छेद के संबंध में इद्दत की अवधि धारा 2(ब) मुस्लिम महिला तलाक पर अधिकारों का संरक्षण अधिनियम 1986 में वर्णित है।

इद्दत में संबंध में आवश्यक नियम :-

(1) यदि विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद के द्वारा होता है और इद्दत काल में पति की मृत्यु हो जाती है

तो स्त्री को मृत्यु की तारीख से पुनः चार माह 10 दिन का इद्दत पालन करना होगा।

(2) इद्दत का समय विवाह विच्छेद या मृत्यु जैसी भी स्थिति हो कि तारीख से प्रारम्भ होगा। न कि उस दिन से जब पति के देहान्त या उसके तलाक दिये जाने की उसे सूचना मिली हो। इद्दत के लिए निर्धारित अवधि समाप्त हो चुकने के पश्चात् तलाक या पति की मृत्यु की सूचना मिलने पर उस महिला को निर्धारित इद्दत पालन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

(3) सामान्य तौर पर पति इद्दत काल में पुनर्विवाह करने के लिए स्वतंत्र है पर यदि उसकी चार पत्नियाँ हैं तो पाँचवीं स्त्री से निकाह करने के लिए उसे चौथी पत्नी के इद्दत काल तक इंतजार करना होगा। (पति के लिए उपधारित इद्दत)

(4) यदि पति द्वारा तलाक दिया गया हो और फिर तलाक से इंकार किया गया हो तो यदि पत्नि उद्घोषणात्मक वाद दायर करती है तो डिक्री की तिथि से नहीं बल्कि तलाक की तिथि से इद्दत की अवधि की गणना की जायेगी।

(5) इद्दत की अवधि में शिया मुस्लिम द्वारा किया गया निकाह बातिल एवं सुन्नी मुस्लिम द्वारा किया गया निकाह फासिद होता है।

(6) यदि कोई शिया मुस्लिम इद्दत की अवधि व्यतीत करती हुई स्त्री से निकाह की अवैधता की जानकारी होते हुए भी संभोग करता है तो वह स्त्री उस व्यक्ति के लिए सदा के लिए हराम (निषिद्ध) हो जाती है।

(7) इद्दत की अवधि के दौरान स्त्री भरण-पोषण एवं मेहर के लिए हकदार होती है।

(8) यदि तलाक अविखण्डनीय है और इद्दत अवधि में पक्षकार की मृत्यु हो जाती है तो सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार होगा।

<u>खिलवत-उस-सहीह</u>

सुन्नी विधि में इस संकल्पना का तात्पर्य है सम्भोग का सुअवसर या उपधारणा अर्थात् शरियत विधि की सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में कुछ परिस्थितियों में वास्तविक संभोग को जगह संभोग की उपधारणा कर ली जाती है। इसके निम्न आवश्यक तत्व हैं –

(1) दोनों पक्षकारों को वास्तविक एकान्त में रहना चाहिए।

(2) उन दोनों पक्षकारों में शारीरिक संबंध बनाने के लिए सामाजिक, विधिक, नैतिक निषेध नहीं होना चाहिए।

(3) निम्न स्थितियों में उक्त उपधारणा को वास्तविक संभोग के तुल्य माना जायेगा –

(क) विवाह-सम्बन्ध के कुछ निषेध

(ख) मेहर की अदायगी

(ग) पितृत्व का निर्धारण

(घ) इद्दत का पालन

(ङ) इद्दत के दौरान भरण-पोषण का निर्धारण

इत्यादि।

<u>निम्न स्थितियों में खिलवत्-उस-सही को उपधारण लागू नहीं होगा :-</u>

(1) तीबारा (एक साथ 3 बार) तलाक दी गई स्वयं की पत्नी के साथ पुनर्विवाह के संबंध में (हलाला)।

(2) पत्नी के पूर्व पति से उत्पन्न पुत्री संग निकाह में।

<u>ख्यार-उल-बुलुग (यौवनावस्था का विकल्प)</u>

पिता अथवा पितामह के अतिरिक्त किसी अन्य अभिभावक द्वारा कराये गये विवाह में अवयस्क (पति या पत्नी) को, यौवनवास्था प्राप्त कर लेने पर (अर्थात् 15 वर्ष की आयु पूर्ण हो जाने पर) यह अधिकार रहता है कि वह चाहे तो अपनी अवयस्कता में कराये गये विवाह का अनुमोदन करे या उसे अस्वीकार कर दे। इस अधिकार को यौवनावस्था का विकल्प (option of puberty) या ख्यार-उल-बुलुग कहा जाता है। विकल्प के इस अधिकार का प्रयोग करते हुए यदि व्यक्ति ने अपने अवयस्कता के विवाह का अनुमोदन कर दिया है तो विवाह की तिथि से ही विवाह विधिमान्य माना जायगा। इसके विपरीत, यदि उसने अपनी अवयस्कता के विवाह को अस्वीकार

कर दिया तो विवाह प्रारम्भ से ही शून्य माना जायगा।अर्थात् इस विकल्प द्वारा विवाह को निरस्त अथवा निराकृत (repudiate) कर दिये जाने पर ऐसा माना जायगा जैसे वह विवाह कभी सम्पन्न ही न हुआ हो। मुस्लिम-विधि के अंतर्गत यौवनावस्था के विकल्प (ख्यार-उल-बुलुग) से संबंधित नियम निम्नलिखित है :-

(i) पिता अथवा पितामह द्वारा कराये गये विवाह में यौवनावस्था के विकल्प का अधिकार नहीं रहता। पिता या पितामह की सहमति (consent) से सम्पन्न कराया गया अवयस्क का विवाह सामान्यतः उस अवयस्क के लिए बाध्यकारी (binding) माना जाता है। लेकिन यह सिद्ध हो जाने पर कि पिता अथवा पितामह ने उस अवयस्क का विवाह कपटपूर्ण अर्थात् धोखा देकर या असावधानीपूर्वक सम्पन्न कराया था, तो उसे यौवनावस्था प्राप्त कर लेने पर विवाह को निरस्त अथवा निराकृत (repudiate) कर देने का अधिकार है।

(ii) 1939 से पहले, पति तथा पत्नी, दोनों के लिए यौवनावस्था के विकल्प का उपरोक्त नियम समान था। लेकिन, मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1939 (Dissolution of Muslim Marriage Act) की धारा 2 (7) के अंतर्गत पत्नी को यौवनावस्था के विकल्प का अधिकार पिता अथवा पितामह द्वारा सम्पन्न कराये गये विवाह में भी प्राप्त है।

(iii) मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 की धारा 2(7) के अनुसार यौवनावस्था के विकल्प का अधिकार पत्नी को 18 वर्ष तक ही प्राप्त है। अर्थात् 15 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के बाद पत्नी को 18 वर्ष की आयु पूर्ण होने से पूर्व ही इस विकल्प का प्रयोग अनिवार्यतः कर लेना चाहिये अन्यथा उसका विकल्प का अधिकार समाप्त हो जाता है। लेकिन पति के ऊपर यह नियम नहीं लागू होता है। यौवनावस्था प्राप्त होने के पश्चात् पति का यह अधिकार तब तक बना रहता है जब तक कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसका प्रयोग न कर ले। मेहर का भुगतान अथवा पत्नी से सहवास पति द्वारा विवाह का अप्रत्यक्ष अनुमोदन माना जाता है।

(iv) संभोग हो जाने पर पति तथा पत्नी दोनों का यौवनावस्था के विकल्प का अधिकार समाप्त हो जाता है। संभोग यदि पत्नी की इच्छा के विरूद्ध हुआ है अथवा अवयस्क पत्नी के साथ हुआ है तो पत्नी का अधिकार समाप्त नहीं होता।

(v) यौवनावस्था के विकल्प द्वारा विवाह निराकृत (repudiate) किये जाने पर विवाह-विच्छेद अपने आप नहीं हो जाता। विवाह-विच्छेद के लिए न्यायालय की पुष्टि (confirmation) आवश्यक है।

मुता विवाह (Temporary Marriage)

मुता विवाह की संकल्पना सिर्फ शिया सम्प्रदाय में ही (अथना-अशारिया) प्रचलित हैं यह एक विशेष प्रकार का अस्थायी विवाह है। एक निर्धारित अवधि के लिए किसी निश्चित धनराशि के बदले में स्त्री तथा पुरूष का संबंध ही मुता विवाह कहलाता है।

मुता विवाह की अनिवार्य शर्तें (Essentials of Muta Marriage)

मुता विवाह में अथना-अशारिया विधि द्वारा निर्धारित निम्नलिखित शर्तों का पालन होना आवश्यक है -

(1) दोनों पक्षकार अर्थात् पति-पत्नी सक्षम (competent) होने चाहिए। उनका स्वस्थचित्त तथा वयस्क (यौवनावस्था की वय अर्थात् 15 वर्ष का) होना आवश्यक है।

(2) अथना-अशारिया शिया पुरूष किसी सम्प्रदाय की मुस्लिम महिला, किताबिया (यहूदी तथा ईसाई) तथा पारसी महिला से मुता विवाह कर सकता है। किसी हिन्दू महिला से किया गया 'मुता' विवाह शून्य माना जाता है।

(3) मुता विवाह भी प्रस्ताव तथा स्वीकृति (offer and acceptance) द्वारा ही सम्पन्न होना चाहिये। अर्थात् निकाह की सभी आवश्यक शर्तें पूर्ण होना आवश्यक है।

(4) दोनों पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति (free consent) आवश्यक है।

(5) निकाह की भाँति ही पति-पत्नी के बीच कोई निषिद्ध संबंध (prohibited relationship) नहीं होना चाहिये।

(6) मुता विवाह में सहवास की निर्धारित अवधि (term) का स्पष्ट उल्लेख होना आवश्यक है। अर्थात् जितने समय तक के लिए 'मुता' किया जा रहा हो वह विवाह सम्पन्न होते समय ही तय हो जाना चाहिए। यदि मुता-विवाह में अवधि का निर्धारण नहीं हुआ है तो वह नियमित विवाह (regular marriage) अर्थात्

निकाह मान लिया जाता है। एस० ए० हुसैन बनाम राजमा के वाद में न्यायालय ने निर्णय दिया कि यद्यपि इस विवाह में 'मुता' शब्द का प्रयोग किया गया था किन्तु इसकी अवधि निश्चित नहीं थी, इसलिये विवाह निकाह माना जायगा।

(7) मुता-विवाह एक-दो दिन का भी हो सकता है और कई वर्षों तक का भी हो सकता है। 'जीवन-पर्यन्त (for life) तक का मुता' भी मुता विवाह ही माना जायगा, क्योंकि इसमें सहवास की अवधि (जीवन-पर्यन्त) निश्चित कर दी गयी है। परंतु, **शाहजादा खानम बनाम फक्र जहाँ** के वाद में हैदराबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि जीवन-पर्यन्त तक के मुता और ऐसे मुता जिसमें अवधि निश्चित नहीं है, में कोई अन्तर नहीं है; अतः जीवन-पर्यन्त का मुता विवाह निकाह मान लिया जायगा।

(8) मेहर, जो कि मुता विवाह में प्रतिफल (consideration) होता है, अवश्य निश्चित होना चाहिये। यदि मेहर (प्रतिफल) की राशि विवाह के समय ही निश्चित नहीं की गयी तो मुता विवाह शून्य माना जायगा।

मुता विवाह के विधिक परिणाम :-

(1) पक्षकार पति और पति का दर्जा प्राप्त कर लेते हैं।

(2) पक्षकारों के बीच में वैवाहिक संभोग वैध हो जाता है तथा उसके फलस्वरूप उत्पन्न संताने जायज होती है।

(3) मुता संबंध के दौरान किसी भी पक्षकार की मृत्यु हो जाने पर पारस्परिक उत्तराधिकार नहीं मिलता। पर परस्पर सहमति के द्वारा ऐसा किया जा सकता है।

(4) **कमर कादर बनाम लुड्डन साहिबा (1886) 14 कल० 276**

उक्त वाद में निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण बाते तय की गई -

(i) मुता संबंध का विघटन तलाक द्वारा नहीं किया जा सकता।

(ii) मुता विवाह की अवधि के दौरान पत्नी को भरण-पोषण का अधिकार नहीं होता पर वह अन्य विधि के प्रावधानों के अनुसार ऐसी मांग कर सकती है।

(5) विवाह का विघटन अवधि समाप्ति, सम्मति या हिबा-ए-मुद्दत के द्वारा हो सकता है।

(6) मुता विवाह की अवधि में यदि वैवाहिक संभोग होता है तो इद्दत की अवधि 2 मासिक काल तक होगी।

(7) यदि पति की मृत्यु हो जाती है तो इद्दत अवधि 4 माह 10 दिन होती है। यदि स्त्री गर्भवती है जो बच्चा पैदा होने तक इद्दत की अवधि होती है।

(8) अगर संभोग न हुआ हो तो इद्दत पालन की आवश्यकता नहीं होती।

(9) यदि सहवास मुता संबंध के रूप में प्रारम्भ हुआ है तो यह उपधारणा होगी कि समस्त काल में मुता संबंध जारी रहा था।

दाम्पत्य अधिकारों का पुर्नस्थापन

वैवाहिक संविदा में दम्पतियों को परस्पर एक दूसरे का सहवास प्राप्त करने का विधिक अधिकार अन्तर्निहित रहता है। यदि कोई पक्षकार अकारण दूसरे से पृथक् रहने लगे और उसे अपने सहवास से वंचित कर दे तो पीड़ित पक्षकार (aggrieved party) न्यायालय मं वाद प्रस्तुत करके उस पक्षकार को अपने साथ रहने के लिए बाध्य कर सकता है। इस प्रकार के वाद को दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना का वाद (suit for restitution of conjugal rights) कहते हैं।

सामान्य भाषा में उक्त संकल्पना का तात्पर्य है वह स्थिति जब कि निकाह के दोनों पक्षकारों में से कोई एक दूसरे से अपना साहचर्य प्रत्याहत कर लेता हैं बिना किसी युक्तियुक्त के कारण के तो पीड़ित पक्षकार न्यायालय के द्वारा अपने वैवाहिक संबंधों को पुर्नस्थापित करवा सकता है। ध्यातव्य है कि पक्षकारों का साहचर्य निकाह के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक है।

निम्न कारणों के उत्पन्न होने पर पत्नी उक्त वाद में बचाव पा सकती है :-

(1) मान्य विवाह अस्तित्व में नहीं है।

(2) ख्यार-उल-बुलुग का प्रयोग।

(3) यदि पति जाति द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया हो।

(4) यदि पक्षकारों के बीच कुछ वैध समझौते हुए हो जो कि इस्लाम एवं निकाह के उद्देश्यों के विपरीत न हो तो वे उक्त वाद में उचित आधार होंगे जैसे - बूढ़े माँ-बाप की सेवा करने के लिए साहचर्य प्रत्याहत करना। इत्यादि।

(5) यदि पति की नपुसंकता के कारण वैवाहिक संभोग न हो पाया हो तो यह क्रूरता माना जायेगा और यह उचित आधार होगा।

(6) यदि पति की क्रूरता के कारण पत्नी का उसके साथ रहना सुरक्षित नहीं है यह क्रूरता शारीरिक एवं मानसिक दोनों हो सकती है।

(7) पति ने वैवाहिक कर्त्तव्यों के निष्पादन में गम्भीर उपेक्षा की है।

(8) तुरंत देय मेहर का भुगतान पति के द्वारा नहीं किया गया है।

(9) द्वितीय पत्नी के साथ विवाह क्रूरता मानी जायेगी।

(10) चरित्रहीनता का झूठा आरोप उचित आधार होगा।

(11) एक ही घर में पत्नी के साथ चरित्रहीन स्त्री को रखना पत्नी के साथ क्रूरता मानी जायेगी।

अध्याय 5

मेहर

सार परिचय

- प्रस्तावना
- परिभाषा
- मेहर की संकल्पना
- मेहर का उद्देश्य
- मेहर का वर्गीकरण
- अनिश्चित मेहर
- तुरंत देय मेहर
- स्थगित मेहर
- मेहर की विषय-वस्तु
- मेहर की धनराशि
- मेहर के अधिकार की प्रकृति
- मेहर के अधिकार का प्रवर्तन
- विधवा का प्रातिधारण का अधिकार

प्रस्तावना :-

इस्लाम पूर्व के अरब समाज में दो सर्वाधिक प्रचलित विवाह के प्रकार थे। (1) 'बाल विवाह' में लड़का कन्या के पिता या अभिवावक कुछ धन देकर कन्या को खरीद लेता था। यह धन कन्या का मूल्य माना जाता था और इसे मेहर कहते थे। (2) 'बीना विवाह' में लड़का सीधे कन्या से संपर्क करता था तथा सहवास के प्रतिफल के रूप में उसे कुछ धन दे देता था इस धन को विवाह का उपहार माना जाता था तथा इस धन को 'सदाक' कहते थे और पत्नी 'सादिक' कहलाती थी।

इस्लाम मे भी निकाह में पति द्वारा कुछ न कुछ देने की प्रथा बनी हुई है। परंतु यह धन पत्नी को उसके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए दिया जाता हैं तथा यह 'मेहर' कहलाता है।

मेहर की परिभाषा

(1) मेहर वह धनराशि या सम्पत्ति होती है जिसे पत्नी विवाह द्वारा प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है। यह सिर्फ

विवाह संविदा में पति द्वारा दिया गया प्रतिफल ही नहीं है बल्कि विधि द्वारा आरोपित पत्नी के प्रति सम्मान प्रकट करने का पति का दायित्व भी है।

(2) मुस्लिम विधि में मेहर वह धनराशि है या सम्पत्ति हैं जिसे पति विवाह के प्रतिफल स्वरूप प्रदान करता है।

(3) मोहम्मद अहमद खाँ बनाम शाह बानो ए० आई० आर० (1985) सु० को० 945 जस्टिस चंदचूड ने इस वाद में यह कहा कि मेहर पत्नी के सम्मान का द्योतक हैं न कि तलाक का प्रतिफल।

मेहर की संकल्पना

मेहर की इस्लामी संकल्पना (Islamic concept) यह है कि मेहर वह धन-सम्पत्ति है जिसे मुस्लिम पति को अपनी पत्नी के प्रति सम्मान प्रकट करने हेतु उसे अवश्य प्रदान करना चाहिये।

हेदाया के अनुसार विवाह में मेहर के भुगतान की विधिक अनिवार्यता मात्र पत्नी के प्रति आदर के प्रतीक के रूप में है विवाह की वैधता के लिए इसका उल्लेख करना अनिवार्य नहीं है। मुस्लिम-विवाह में मेहर का

उल्लेख नहीं भी हुआ है अथवा पति-पत्नी में इस आशय का कोई अनुबंध (agreement) है कि पत्नी को मेहर का अधिकार नहीं होगा तो भी पत्नी को मेहर प्राप्त करने का विधिक अधिकार रहता है।

मुल्ला ने मेहर को विवाह-संविदा के प्रतिफल (consideration) के रूप में माना है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी कहा है कि मुस्लिम विवाह किसी 'विक्रय की संविदा' की भाँति है जिसमें पत्नी 'वस्तु' तथा मेहर इस वस्तु का 'मूल्य' है। वस्तुतः ये विचार इस तर्क पर आधारित हैं कि चूँकि मुस्लिम विवाह एक संविदा है और संविदा में प्रतिफल का होना आवश्यक है।

मेहर के उद्देश्य

1. निकाह के तहत पति को ऐसा कर्त्तव्य प्रदान करना जिसके द्वारा वह अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा को अभिव्यक्ति दे देता है।
2. पत्नी को आर्थिक रूप से मजबूती देकर विवाहोपरांत उसकी स्थिति सुदृढ़ करना।
3. पति के अनिर्बन्धित विवाह-विच्छेद के अधिकार को सीमित करना।
4. विवाह विघटन के फलस्वरूप पत्नी की स्थिति को मजबूत करना।

मेहर के प्रकार

- अनुल्लिखत/अनिश्चित मेहर या (unspecified) उचित मेहर/प्रथागत मेहर (मेहर-ए-मिस्ल)
- उल्लिखित/निश्चित मेहर (Specified) (मेहर-ए-मुसम्मा)
  - तत्काल देय/ मेहर-ए-मुअज्जल
  - स्थगित मेहर/ मेहर-ए-मुवज्जल

1. अनुल्लिखत मेहर/अनिश्चित मेहर (मेहर-ए-मिस्ल) :- वह मेहर जो कि निकाह के समय पक्षकारों या उनके अभिभावकों द्वारा निश्चित या उल्लिखित नहीं की जाती उसे अनुल्लिखत मेहर (मेहर-ए-मिस्ल) कहते हैं। इस मेहर को प्रथागत मेहर या उचित मेहर भी कहते हैं। सामान्य तौर पर यह न्यायालयों द्वारा या तय व्यक्तियों द्वारा निर्धारित की जाती हैं। इस मेहर में मेहर की कोई निश्चित मात्रा तय नहीं होती यह हर वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों के हिसाब से तय किया जाता है। इस मेहर को प्रथागत मेहर इसलिए कहते हैं क्योंकि पितृकुल मे पहले तय की गई मेहर की परम्परा को ध्यान में रखा जाता है। इस संबंध में पत्नी के वयैक्तिक गुण, सुन्दरता, चरित्र, शिक्षा एवं उसके परिवार का सामाजिक स्तर जैसे तत्व ध्यान में रखे जाते हैं।

शिया सम्प्रदाय में उचित मेहर की मात्रा सामान्य तौर पर 500 दिरहम से अधिक नहीं हो सकती है। ऐसा माना जाता है कि पैगम्बर मोहम्मद साहब ने अपनी बेटी फातिमा के निकाह में 500 दिरहम की मेहर ली थी। इसीलिए इस राशि को मेहर-ए-सुन्नत कहते हैं।

2. उल्लिखित/निश्चित मेहर (मेहर-ए-मुसम्मा) :- वह मेहर जो पक्षकारों या उनके अभिभावकों द्वारा निकाह के पूर्व, के समय का बाद में निश्चित की जाती है। उसे मेहर-ए-मुसम्मा कहते हैं। मेहर लिखित या मौखिक हो सकती है। यदि लिखित है तो उसे मेहरनामा कहते हैं।

मुसम्मात अमीना बीबी बनाम मुहम्मद ए० आई० आर० 1929 अवध 20 - यदि मेहर विवाह के पूर्व निश्चित नहीं की गई है तो उसे बाद में तय किया आ सकता है।

मुसम्मा फातिमा बीबी बनाम लालदीप ए० आई० आर० 1937 लाहौर 345 - उपरोक्त वाद में कहा गया है कि अवयस्क की स्थिति मे यदि निकाह पिता द्वारा करायां गया है और मेहर तय किया गया है तो वह

पति पर बाध्यकारी होगी पर यदि पिता ने मेहर भुगतान के लिए अपने आप को प्रतिभू बनाया हो तो वह मेहर के लिए दायी होगा।

यौवनावस्था के विकल्प की स्थिति में वयस्क होने पर यदि निकाह का अनुमोदन पति करता है तो उसे संविदाकृत मेहर भी स्वीकार करना पड़ेगा।.

साबिर हुसैन बनाम फरजंद खाँ ए० आई० आर० 1938 - पी० सी० 80

उपरोक्त वाद में कहा गया है कि शिया विधि के तहत यदि पति असमर्थ है और विवाह उसकी अवयस्कता में उसके पिता द्वारा कराया गया है तो मेहर भुगतान के लिए पिता दायी होगा।

उक्त मेहर के दो प्रकार होते हैं :-

1. तत्काल देय मेहर (मेहर-ए-मुअज्जल)
2. स्थगित मेहर (मेहर-ए-मुवज्जल)

1. तत्काल देय मेहर (मेहर-ए-मुअज्जल) :-

वह मेहर जो कि मांग पर तुरंत देय होती है उसे तत्काल देय मेहर कहते हैं। यदि यह मेहर निकाह के कई वर्षों बाद भी ना मांगी जाय तब भी यह अपनी तुरंत देय होने की प्रकृति को नहीं खोती।

विशेषताएँ - **(i)** यह मांग पर देय होती है एवं कई वर्षों के बाद भी मांग पर अपना स्वरूप नहीं खोती।

(ii) निकाह के बाद यदि वैवाहिक संभोग न हुआ हो और पत्नी के इस मेहर की मांग करने पर पति इसे प्रदान ना करें तो वह पति को संभोग से विरत रख सकती है। पर यदि एक बार भी वैवाहिक संभोग हो गया हो तो यह नियम लागू नहीं होगा।

(iii) उपरवर्णित स्थिति में यदि पुर्नस्थापन वाद दायर किया जाता है तो न्यायालय को तुरंत देय मेहर के भुगतान के साथ पुर्नस्थापन की सशर्त डिक्री पारित करनी चाहिए।

मुसम्मात मैमूना बीबी बनाम शराफत ए० आई० आर० 1931 इला० 403

(iv) यद्यपि इस्लाम में ब्याज की अदायगी हराम हैं फिर भी पत्नी मेहर भुगतान में विलंम्ब होने पर ब्याज पाने की अधिकारिणी होगी।

2. स्थगित मेहर (मुवज्जल मेहर) :-

स्थगित मेहर अथवा मुवज्जल मेहर विवाह विच्छेद होने पर ही देय (payable) होता है। दूसरे शब्दों में, मेहर की धनराशि के भुगतान के बारे में यदि यह तय हुआ है कि पत्नी इसकी माँग केवल विवाह-विच्छेद होने पर ही करेगी तो मेहर स्थगित-मेहर कहलाता है।

मेहर का भुगतान पति-पत्नी (अथवा उनके अभिभावक) के परस्पर अनुबंध के अंतर्गत भविष्य की किसी घटना पर भी आधारित हो सकता है; यदि ऐसा कोई अनुबंध हैं तो इस घटना के पूर्व मेहर देय नहीं माना जायगा। स्थगित-मेहर (deferred dower) यदि किसी घटना पर आधारित है और किन्हीं कारणों से विवाह-विच्छेद घटना घटित होने के पूर्व ही हो जाय तो विवाह-विच्छेद के बाद ही मेहर की राशि देय हो जाती है। यद्यपि स्थगित-मेहर के लिए नियम यह है कि विवाह-विच्छेद (या घटना), से पहले मेहर अनिवार्यत: देय नहीं होता तथापि यदि पति चाहे तो इसका भुगतान पहले भी कर सकता है।

मेहर तुरंत-देय (prompt) होगा या स्थगित (deferred) , इसका उल्लेख पक्षकार अथवा उनके अभिभावक मेहर कीधनराशि निश्चित करते समय ही कर लेते हैं।

तुरंत-देय अथवा स्थगित का उल्लेख न होने पर (If not certain whether prompt or deferred)

मेहर की धनराशि निश्चित करते समय ही इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाता है कि इसकी अदायगी तुरंत-देय के रूप में होगी अथवा यह स्थगित रहेगा। अपवाद-स्वरूप यदि किसी विवाह में मेहर की धनराशि तो निश्चित कर दी गयी हो लेकिन यह निर्धारित न किया गया हो कि यह तुरंत देय है अथवा स्थगित तो, इसका निर्धारण निम्न नियमों के अंतर्गत किया जाता है -

सुन्नी विधि - मेहर तुरंत देय (prompt) है या स्थगित (deferred) , इसका उल्लेख न होने पर निश्चित धनराशि के कुछ हिस्से को तुरंत देय तथा शेष को स्थगित मान लिया जाता है। कितने को तुरंत-देय माना जाय

और कितने को स्थगित, इसका निर्धारण स्थानीय प्रथाओं, निश्चित की गयी धनराशि तथा पक्षकारों के सामाजिक स्तर के आधार पर किया जाता है।

<u>शिया विधि</u> – तुरंत-देय या स्थगित का उल्लेख न होने पर मेहर की पूरी धनराशि को तुरंत-देय मेहर मान लिया जाता है।

परंतु, मद्रास तथा बम्बई उच्च न्यायालयों के अनुसार तुरंत-देय अथवा स्थगित होने का स्पष्ट उल्लेख न होने पर न्यायालय पूरी धनराशि को तुरंत-देय मेहर (prompt dower) के रूप में मान सकता है, पक्षकार चाहे सुन्नी हों या शिया।

<u>मेहर की विषय वस्तु</u>

(1) कोई भी मूल्यवान वस्तु चाहे वह धनराशि हो या सम्पत्ति।
(2) कोई भी सम्पत्ति चल, अचल, मूर्त, अमूर्त
(3) अर्चल सम्पत्ति के लाभांश जैसे – किराया इत्यादि,
(4) अन्न
(5) व्यापार के द्वारा क्रय या विक्रय किये जाने वाले सामान या लाभ
(6) वस्तु या पशु विशेष
(7) कुरान की शिक्षा (अमीर अली)
(8) मुठ्ठी भर खजूर (अबु दाऊद)
(9) जूते का जोड़ा (त्रिमिज़ी)
(10) यदि पति गुलाम है, तो अपनी सेवाएँ पत्नी को दे सकता है।

<u>विषय वस्तु से संबंधित नियम</u> :-

(1) तय की गई सम्पत्ति या मूल्यवान वस्तु का अस्तित्व में होना आवश्यक हैं। जैसे – भविष्य में आने वाली फसल या भविष्य में मिलने वाला उत्तराधिकार मेहर की विषय-वस्तु नहीं हो सकते।

(2) इस्लाम में हराम वस्तुएँ जैसे – शराब, जुए की धनराशि इत्यादि मेहर की विषय वस्तु नहीं हो सकती।

(3) यदि उपरवर्णित कोई भी वस्तु मेहर के लिए दी जाती है तो यह संविदा शून्य होगी और पत्नी उचित मेहर की अधिकारिणी होगी।

<u>मेहर की धनराशि</u>

(1) मेहर की अधिकतम सीमा शिया एवं सुन्नी विधियों में वर्णित नहीं है। यह पक्षकारों के पारस्परिक सहमति के अनुसार कुछ भी हो सकता है।

(2) शिया विधि में मेहर की न्यूनतम राशि का उल्लेख नहीं है जबकि हनफी विधि में यह 10 दिरहम एवं मालिकी विधि में यह 3 दिरहम हैं।

(3) मेहर संविदा का लिखित होना आवश्यक नहीं है पर सामान्यतः मेहरनामा निष्पादित किया जाता है।

<u>अवध लॉज एक्ट 1875 की धारा 5 के अनुसार</u>

यदि मेहर की राशि पति के सामर्थ्य के परिपेक्ष्य में बहुत अधिक है तो न्यायालय को यह अधिकार होगा कि वह एक युक्तियुक्त राशि तय कर दे। पर इस संबंध में निम्न बिन्दू महत्वपूर्ण है :-

(क) यह नियम केवल अवध क्षेत्र में ही लागू होगा।

(ख) यदि मेहर की राशि निश्चित नहीं है तो पत्नी उचित मेहर की अधिकारिणी होगी।

<u>मेहर का कितना भाग देय होता है</u>

यद्यपि मेहर का अधिकार पत्नी में तुरंत निहित हो जाता है पर यह कब देय होगा यह कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करता है इस संबंध में नियम निम्नलिखित है :-

(1) <u>सहीह निकाह</u> –

(क) जब वैवाहिक संभोग हो जाता है :-

(i) यदि मेहर निश्चित हो तो शिया एवं सुन्नी दोनों सम्प्रदायों में पत्नी सम्पूर्ण मेहर की अधिकारिणरी होती है।

(iii) यदि मेहर निश्चित न हो तो पत्नी उचित मेहर की अधिकारिणी होती है।

(ख) जब वैवाहिक संभोग न हो चुका हो :-

(i) यदि मेहर निश्चित हो तो पत्नी आधे मेहर की अधिकारिणी होती है।

(ii) यदि मेहर निश्चित नहीं है तो पत्नी सिर्फ नाममात्र की भेंट की अधिकारिणी होती है।

(2) बातिल निकाह - चूँकि बातिल निकाह में पक्षकारों के बीच में कोई भी विधिक प्रसंगति उत्पन्न नहीं होती इसलिए पत्नी किसी भी प्रकार के मेहर की अधिकारिणी नहीं होती।

(3) फासिद निकाह (अनियमित) :-

(i) यदि वैवाहिक संभोग हो चुका है इस स्थिति में पत्नी उचित या निश्चित जो भी मेहर कम हो पाने की अधिकारिणी होती है।

(ii) यदि वैवाहिक संभोग न हुआ हो ऐसी स्थिति में पत्नी किसी भी मेहर की अधिकारिणी नहीं होती।

(4) मुता विवाह :-

(i) यदि वैवाहिक संभोग हो चुका है ऐसी स्थिति में पत्नी संपूर्ण मेहर की अधिकारिणी होती है।

(ii) यदि वैवाहिक संभोग न हुआ हो ऐसी स्थिति में पत्नी निश्चित मेहर की आधे भाग की अधिकारिणी होती है।

इस संबंध में महत्वपूर्ण यह है कि यदि विवाह का विघटन पत्नी की किसी त्रुटि के कारण या पति और पत्नी के आपसी सहमति से हुआ हो तो पत्नी मेहर का दावा नहीं कर सकती है।

हिबा-ए-मेहर (मेहर की माफी)

एक बार तय हो जाने के बाद मेहर को कम नहीं किया जा सकता पति को मेहर की धनराशि को बढ़ाने का अधिकार है। पत्नी पारस्परिक सहमति से अपने इस अधिकार को माफ कर सकती है या पति को दान कर सकती है। इसे हिबा-ए-मेहर कहते हैं।

इस नियम के निम्न आवश्यक तत्व हैं :-

(i) पत्नी को वयस्क एवं स्वस्थ चित्त होना चाहिए।

(ii) पत्नी की वयस्कता के संबंध में न्यायालयों में मतभेद हैं।

पटना उच्च न्यायालय एवं मद्रास उच्च न्यायालय

यह मानते हैं कि चूँकि यह अधिकार सम्पत्ति से संबंध हैं इसलिए पत्नी को 18 वर्ष की जरूर होना चाहिए। लेकिन **इलाहाबाद उच्च न्यायालय** का यह मान्यता है कि यदि पत्नी यौवनावस्था की आयु प्राप्त कर लेती है तो वह हिबा-ए-मेहर करने के लिए सक्षम होगी।

हसीना बानो बनाम आलम नूर. AIR 2007 RAJ.49

उक्त वाद में यह तय किया गया था कि यदि किसी वैध करार के तहत पत्नी अपने मेहर के अधिकार को त्याग देती है तो बाद में वह इसके लिए दावा करने से वंचित हो जाती है।

शेख मुहम्मद जुबैर बनाम मुसम्मात बीबी शहीदन (1942) पटना 210

इस वाद में यह तय किया गया था कि चूँकि हिबा-ए-मेहर अधिकारों का वापस लेना है इसलिए इसका लिखित होना आवश्यक है।

मेहर के अधिकार की प्रकृति -

1. मेहर का अधिकार एक बार निहित होने के बाद कभी भी खत्म नहीं हो सकता जब तक कि हिबा-ए-मेहर न कर दिया गया हो यह पत्नी का इतना महत्वपूर्ण अधिकार है कि निम्न परिस्थितियों में भी समाप्त नहीं होता।

(1) जबकि पत्नी ने पति की हत्या कर दी हो।

(2) जब पति ने स्वयं आत्महत्या कर ली हो।

(3) पत्नी ने इस्लाम का परित्याग कर दिया हो।

(4) जब पत्नी चरित्रहीन हो।

मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939 की धारा 5 के अनुसार – इस एक्ट की कोई बात पत्नी के मेहर के अधिकार को प्रभावित नहीं करेगी।

II. अदत्त मेहर एक अप्रतिभूत ऋण है (Unpaid dower is an unsecured debt) – मेहर का भुगतान पति का व्यक्तिगत दायित्व (personal obligation) माना जाता है। अदत्त मेहर एक ऋण की भाँति रहता है, जिसमें पति की स्थिति एक ऋणी (debtor) की तथा पत्नी की स्थिति ऋणदाता (creditor) की होती है। जिस प्रकार एक ऋणदाता अपने ऋण की अदायगी अदालत द्वारा करा सकता है ठीक उसी प्रकार पत्नी भी अदत्त-मेहर की प्राप्ति के लिए पति के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकती है।

ऋण दो प्रकार के होते हैं – प्रतिभूत तथा अप्रतिभूत। प्रतिभूत ऋण (secured-debt) के भुगतान के लिए किसी विशिष्ट सम्पत्ति को निर्दिष्ट कर दिया जाता है; यथा-रेहन या बंधक (mortgage) द्वारा प्रतिभूत ऋण। अप्रतिभूत ऋण (unsecured debt) में वसूली के लिए किसी प्रकार की सम्पत्ति निर्धारित नहीं की जाती है। अदत्त-मेहर एक अप्रतिभूत ऋण है, जिसके लिए पति केवल व्यक्तिगत रूप से ही उत्तरदायी (personally liable) है। उसकी कोई विशिष्ट सम्पत्ति इसके भुगतान के लिए निर्दिष्ट नहीं रहती है। यह पति की मृत्यु के पश्चात् अन्य ऋणदाताओं (creditors) की भाँति ही पत्नी भी अपना ऋण (अदत्त मेहर) पति की सम्पत्तियों से वसूल कर सकती है परंतु, ऐसी परिस्थिति में पत्नी को अन्य ऋणदाताओं की तुलना में कोई प्राथमिकता नहीं मिलती है; दोनों के ऋण-वसूली के अधिकारों में कोई अंतर नहीं रहता। **कपूर चंद बनाम कदरून्निसाँ** के वाद में **उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया** कि अदत्त मेहर एक साधारण अप्रतिभूत ऋण की भाँति है, जिसे वसूल करने में अन्य ऋणदाताओं की तुलना में पत्नी को कोई वरीयता (preference) नहीं मिल सकती है।

मेहर के अधिकार का प्रर्वतन

पत्नी अपने मेहर के अधिकार को निम्न प्रकार से प्रवर्तित करा सकती है :-

(1) दाम्पत्य अधिकारों से इंकार
(2) ऋण की भाँति मेहर का प्रर्वतन
(3) विधवा के प्रतिधारण का अधिकार-

(1) दाम्पत्य अधिकारों से इंकार :-

(i) यदि मेहर तुरंत देय हो और पत्नी द्वारा उसकी माँग किये जाने पर यदि पति उसका भुगतान नहीं करता है तो पत्नी उसे वैवाहिक संभोग से विरक्त रख सकती है। इस संबंध में पति यदि पुर्नस्थापन का वाद करता है तो उसका वाद खारिज कर दिया जायेगा।

नासिरा बेगम बनाम रिजवान अली AIR 1980 इला० 18

(ii) यदि मेहर तुरंत देय न हो या वैवाहिक संभोग हो चुका हो तो पत्नी पति को वैवाहिक संभोग से विरत नही रख सकती।

(2) ऋण की भाँति मेहर का प्रवर्तन :-

(i) मेहर के संबंध में पत्नी को कर्ज द्रदाता एवं पति को कर्जदार माना जाता है। अदत्त मेहर का अधिकार अनुयोज्य दावा माना जाता है एवं उससे संबंधित सारी विधिक प्रसंगतियों का प्रवर्तन पत्नी करा सकती है।

(ii) यदि पति जीवित हो तो पत्नी मेहर के भुगतान के लिए न्यायिक कार्यवाही कर सकती है।

(iii) यदि मेहर भुगतान के पूर्व पति मर जायें तो उसके उत्तराधिकारियों के विरूद्ध वाद दायर करके पत्नी अपने मेहर के अधिकार का प्रर्वतन करा सकती है परंतु हर उत्तराधिकारी उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति के अंश तक ही दायी होंगे।

(iv) पति की सम्पत्ति पर अदत्त मेहर के अधिकार को प्रभारित नहीं किया जा सकता।

कपूर चंद बनाम किदार निसार बेगम AIR 1952 S.C. 413

(v) विधवा का अदत्त मेहर का अधिकार उत्तराधिकारियों के दावे पर अधिमान प्राप्त है।

(vi) पत्नी का अदत्त मेहर का अधिकार अन्य ऋणदाताओं के तुलना में वरीयता प्राप्त नहीं है।

(3) विधवा के प्रतिधारण का अधिकार - पति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा का यह अधिकार हैं कि वह पति की सम्पत्ति को तब तक धारण किये रहे जब तक कि उसके अदत्त मेहर का भुगतान उत्तराधिकारियों द्वारा नहीं हो जाता। विधवा के इस अधिकार को प्रतिधारण का अधिकार कहा जाता है। उक्त अधिकार के निम्नलिखित आवश्यक तत्व हैं :-

(क) सम्पत्ति पति की होनी चाहिए।

(ख) सम्पत्ति पर कब्जा केवल मेहर के बदले में प्राप्त किया गया हो।

(ग) कब्जा पति के ही जीवन में प्राप्त किया गया हो।

(घ) कब्जा मृति की स्वतंत्र सहमति से प्राप्त किया गया हो।

(ङ) यह अधिकार मात्र कब्जे का ही अधिकार होता है अन्य कोई साम्पत्तिक अधिकार उत्पन्न नहीं होता।

(च) इस सम्पत्ति का स्वामित्व उत्तराधिकार के अनुपात में विहित व्यक्तियों मे ही रहता है।

(छ) सम्पत्ति के लाभांश से मेहर का भुगतान अनुपातिक रूप से होगा।

(ज) इसी लाभांश में से सम्पत्ति के उचित संरक्षण एवं सभी खर्चों का (सम्बद्ध) हिसाब रखने के लिए विधवा दायी होती है।

(झ) **मैना बीबी बनाम चौधरी वकील अहमद AIR 1925 P.C. 63**

उक्त वाद में निम्न बातें तय की गई थी :-

(1) प्रतिधारण के अधिकार मे विधवा को कब्जा पूर्ण स्वामी के रूप में नहीं मिलता वह सिर्फ अपने हिस्से का ही अंतरण कर सकती है।

(2) कब्जा यदि एक बार विधिपूर्ण तरीके से हो जाये तो इस अधिकार की समाप्ति हो जाती है।

(3) विधवा द्वारा यदि अंतरण के फलस्वरूप कब्जा अंतरिती को दे दिया गया हो तो भी अंतरण शून्य होगा और कब्जा न तो अंतरिती को मिलेगा और न विधवा को यह कब्जा संबद्ध एवं वैध उत्तराधिकारियों को वापस चला जायेगा।

(4) यदि विधवा द्वारा सम्पत्ति का अंतरण चाहे वह विक्रय, दान, विनिमय या बंधक के रूप में किया गया हो शून्य होगा।

कपटपूर्ण अंतरण (धारा 53 T.P.A.) के अनुसार - लेनदारों को विफल कराने या देरी कराने के दृष्टिकोण से किया गया अंतरण लेनदारों के विकल्प पर शून्यकरणीय होता है-पर इस नियम का एक अपवाद हैं कि ऐसा अंतरण सद्भावपूर्वक अंतरिती के अधिकारों का ह्रास नहीं करती पर उक्त अपवाद का भी एक अपवाद है कि यदि अंतरक मुस्लिम विधवा हो और उसे सम्पत्ति प्रतिधारण के अधिकार के फलस्वरूप प्राप्त हुई हो तो सद्भावपूर्ण अंतरिती को भी कब्जा नहीं मिलेगा। यह नियम धारा 2(D) T.P.A. के अंतिम लाइन से भी स्पष्ट है।

(ञ) तहीरूनिसा बनाम नवाब हसन (1914) 36 इला० 558

इस वाद मे यह कहा गया कि विधवा का कब्जे का अधिकार दाययोग्य है।

(ट) अदत्त मेहर का अधिकार चूँकि अनुयोज्य दावा माना जाता है इसलिए अंतरणीय होता है।

कब्जे का अधिकार अंतरणीय है या नहीं इस बारे में न्यायालयों मे मतभेद है कुछ न्यायालय यह मानते हैं कि चूँकि यह अधिकार साम्पत्तिक अधिकार है इसलिए अंतरणीय है जबकि कुछ न्यायालय यह मानते हैं कि यह अधिकार वैयक्तिक अधिकार हैं इसलिए अंतरणीय नहीं है। बाद वाला विचार ज्यादा उचित प्रतीत होता है।

(ठ) परिसीमा :-

(i) यदि मेहर तुरंत देय हैं तो पत्नी द्वारा मांग किये जाने के तीन वर्ष के अंदर।

(ii) विवाह-विच्छेद होने पर चाहे मेहर तुरंत देय या स्थगित हो विवाह-विच्छेद की तिथि से 3 वर्ष के अंदर।

(iii) यदि विवाह-विच्छेद मृत्यु द्वारा हुआ हो तो मृत्यु की तिथि से 3 वर्ष के अंदर।

अध्याय 6

तलाक

सार परिचय

- प्रस्तावना
- विधिमान्य तलाक की आवश्यक शर्तें
  - क्षमता
  - स्वतंत्र सहमति
  - औपचरिकताएँ
- तलाक के प्रकार
  1. ईश्वरीय कृत्य द्वारा
  2. पक्षकारों के कृत्य
  (क) पति द्वारा
  - तलाक-उल-सुन्नत
  - तलाब अहसान
  - तलाक हसन
  - तलाक-उल-बिद्दत
  - इला
  - जिहार

  (ख) पत्नी द्वारा
  - तलाक-ए-तफवीज

  (ग) पारस्परिक सहमति द्वारा
  - खुला
  - मुबारत

  3. न्यायिक कार्यवाही द्वारा
  - लियान
  - फस्क
- न्यायिक तलाक या फस्क (पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद, अधिनियम, 1939 के अंतर्गत)
  - पति 4 साल तक लापता
  - भरणपोषण 2 साल तक
  - 7 साल का कारावास
  - 3 मास तक वैवाहिक कर्त्तव्य का पालन न करना
  - पति की नपुंसकता
  - पागलपन, कुष्ठरोग तथा रतिरोग
  - यौवनवस्था का विकल्प
  - क्रूरता
  - अन्य आधार
  4. धर्मत्याग का विवाह पर प्रभाव
- तलाक के प्रभाव

प्रस्तावना

'तलाक' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'निर्मुक्त करना' अर्थात् किसी भी बंधन को खोल देना। इस्लाम के अंतर्गत वैवाहिक जीवन की स्थापित्व को सामान्य नियम मानकर विवाह-विच्छेद केवल अपवाद के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

पैगम्बर मोहम्मद के कथन के अनुसार कानून के अंतर्गत जिन चीजों को स्वीकृति प्रदान की गई है, विवाह-विच्छेद उनमें सबसे निकृष्ट हैं। (तैय्यब जी)

लेकिन वैवाहिक संबंधों में कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जैसे कि मानसिक असंगति कि पक्षकारों का साथ रहना सामाजिक रूप से न्यायसंगत नहीं होता, तो उनका अलग हो जाना ही उचित माना जाता है।

सामान्य तौर पर तलाक के संबंध में दो सिद्धांत प्रचलित हैं -

(1) विघटन सिद्धांत

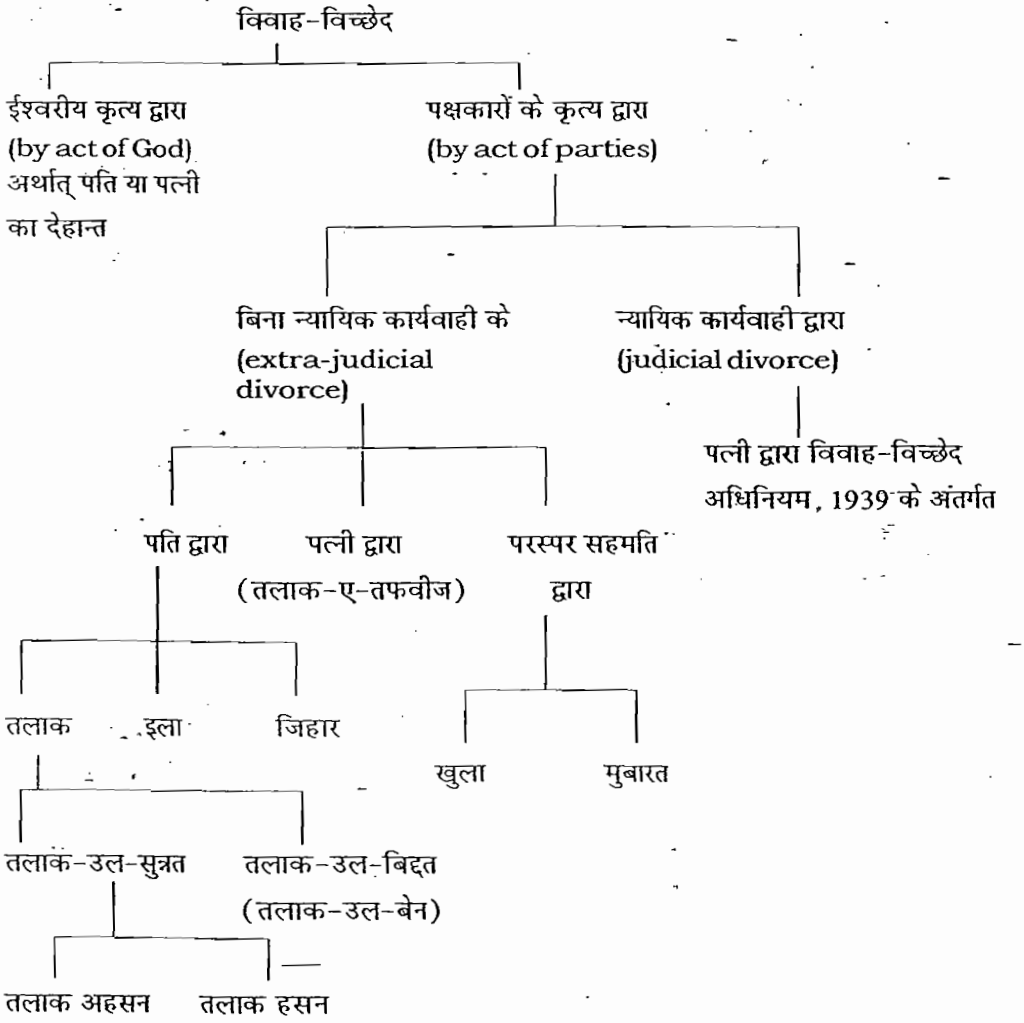
(2) दोष सिद्धांत

विघटन सिद्धांत के अनुसार

यदि पक्षकारों में मानसिक असंगति इतनी बढ़ जाये कि उनका साथ रहना न्यायोचित न हो तो विधि के अनुसार उस संबंध का विघटन कर देना चाहिए। किसी विशिष्ट दोष को सिद्ध करना आवश्यक नहीं है।

दोष सिद्धांत के अनुसार

पक्षकारों मे से किसी में भी दोष उत्पन्न होने पर इस संबंध को विधि के अनुसार विघटित कर देना चाहिए। पक्षकार को दोषसिद्ध करना आवश्यक है।



विधिमान्य तलाक की आवश्यक शर्तें

तलाक के विधिमान्य होने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पालन होना अनिवार्य हैं –

(1) क्षमता

(2) स्वतंत्र सहमति

(3) औपचारिकताएँ

(1) **क्षमता** :– तलाक के लिए पक्षकार को स्वस्थचित एवं यौवनावस्था का होना चाहिए तो पक्षकार कभी भी अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है।

अवयस्क या उनके अभिभावकों द्वारा तलाक नहीं दिया जा सकता। विकृतचित्त पति भी तलाक नहीं दे सकता। यदि पति के हितों के लिए आवश्यक हो तो अभिभावक द्वारा या यदि अभिभावक न हो तो काजी या न्यायालय के द्वारा तलाक दिया जा सकता है।

पत्नी की क्षमता इस संबंध में निर्धारित नहीं है लेकिन यदि पत्नी इतनी छोटी हो कि वह तलाक का मतलब ही न समझ सके तो तलाक शून्य होगा।

(2) **स्वतंत्र सहमति** :– हनफी विधि के अलावा अन्य सभी विधियों में तलाक का स्वेच्छा से दिया जाना आवश्यक है बल प्रयोग, अनुचित असर, धमकी या धोखा, मजबूरी में, मजाक में, नशे की हालत में, स्वैच्छता मद्यपान की स्थिति में इत्यादि परिस्थितियों में दिया गया तलाक हनफी विधि के अलावा किसी भी विधि में मान्य नहीं होगा।

लेकिन यदि मद्यपान स्वैच्छा से नहीं है तो तलाक अमान्य होगा। नींद की अवस्था में या अचेतावस्था में दिया गया तलाक सभी विधियों में शून्य माना जाता है।

(3) **औपचारिकताएँ** :–

(क) तलाक मौखिक या लिखित (तलाकनामा) हो सकता है। संकेतों द्वारा भी तलाक हो सकता है सुन्नी विधि में तलाक की घोषणा के शब्द स्पष्ट होने चाहिए एवं विवाह–भंग का आशय प्रकट होना चाहिए। यदि शब्दों में कोई संदिग्धतता है तो आशय का सिद्ध किया जाना आवश्यक है।

शिया विधि में सामान्यत: घोषणा मौखिक रूप से विशिष्ट अरबी शब्दों में ही होनी चाहिए। यदि पक्षकार को अरबी नहीं आती हो तो वह किसी भी भाषा में शब्दों का प्रयोग कर सकता है। जब तक पति बोलने में असमर्थ न हो लिखित तलाक नहीं दे सकता।

शमीम आरा बंनाम उत्तर प्रदेश राज्य AIR 2002 S.C 3551

(i) उक्त वाद में यह तय किया गया था कि किसी भी तलाक के प्रभावी होने के लिए उसकी घोषणा आवश्यक हैं। किसी न्यायालय के समक्ष दिये गये किसी आसिद्ध तलाक के अभिवाक को तलाक का साक्ष्य नहीं माना जा सकता।

(ii) पवित्र कुरान में यह आदेशित है कि इसके किसी न्यायोचित कारण से ही किया जाना चाहिए एवं इसके लिए पहले सामंजस्य का प्रयास होना चाहिए जिसमें पत्नी पक्ष के दो लोग एवं पति के पक्ष के एक लोग का होना आवश्यक हैं तभी इस तलाक को प्रभावी माना जा सकता है।

(ख) तलाक के लिए शिया विधि में दो गवाहों (मुस्लिम एवं स्वस्थचित्त तथा यौवन या एक पुरूष के स्थान पर दो स्त्रियों) का होना आवश्यक हैं। जबकि सुन्नी विधि में इनकी आवश्यकता नहीं है।

तलाक के शब्द स्पष्ट हों (Words of Talak must be Express)

तलाक के शब्दों को स्पष्ट तथा सुव्यक्त होना चाहिए ताकि पति द्वारा विवाह–विच्छेद किये जाने की धारणा पूर्णतया सुनिश्चित की जा सके। तलाक के लिए उच्चारित शब्द यदि अस्पष्ट अथवा संदिग्ध हैं तो पति द्वारा विवाह–विच्छेद किये जाने का मन्तव्य (intention) ज्ञात करना आवश्यक रहता है।

पत्नी की उपस्थिति (Presence of Wife)

तलाक देते समय पत्नी का उपस्थिति रहना आवश्यक नहीं है। पत्नी की अनुपस्थिति में दिया गया तलाक भी विधिमान्य (valid) माना जाता है। लेकिन, पत्नी को उसका नाम लेकर संबोधित करना अनिवार्य है;

स्पष्ट संबोधन के अभाव में तलाक अमान्य होता है। एक से अधिक पत्नियाँ होने पर जिस पत्नी को तलाक दिया गया हो उसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना आवश्यक है।

तलाक की सूचना (Notice of Talak)

तलाक की वैधता के लिये पत्नी को तलाक की सूचना देना आवश्यक नहीं माना जाता। तलाक तब से प्रभावी माना जाता है जब तलाक उच्चारित किया गया हो न कि उस दिन से जब पत्नी को इसकी सूचना मिले। परंतु इद्दत की अवधि में भरण-पोषण तथा मेहर की माँग प्रस्तुत करने के लिये तलाक तब से प्रभावी माना जायगा जब पत्नी को तलाक की सूचना मिली हो।

सशर्त एवं आकस्मिक तलाक (Conditional and Contingent Talak)

तलाक शर्त-रहित (unconditional) अर्थात् बिना किसी शर्त के, तथा सशर्त (conditional) अर्थात् शर्त-सहित, दोनों तरह का हो सकता है। तलाक किसी आकस्मिक घटना पर भी आधारित हो सकता है। शर्त रहित (unconditonal) तलाक तुरंत से ही प्रभावी हो जाता है लेकिन सशर्त तथा आकस्मिक तलाक के प्रभावी होने के लिये शर्त पूरी होना या आकस्मिक घटना (contingent event) का घटित होना अनिवार्य है।

सुन्नी विधि के अंतर्गत सशर्त या आकस्मिक तलाक मान्य है लेकिन शर्त को इस्लाम के सिद्धांतों के विपरीत नहीं होना चाहिये। तलाक की शर्त यदि इस्लाम के विरूद्ध है तो शर्त शून्य होगी और तलाक विधिमान्य (valid) नहीं माना जायगा चाहे शर्त पूरी हो या न हो।

तलाक के प्रकार

तलाक दो प्रकार के होते हैं :-

(1) तलाक-उल-सुन्नत (प्रतिसंहरणीय तलाक)

(2) तलाक-उल-बिद्दत (अप्रतिसंहरणीय तलाक)

(1) तलाक-उल-सुन्नत या राजे :- यह तलाक मोहम्मद साहब के सुन्नत के द्वारा अनुमोदित एवं मान्यता प्राप्त तलाक है

इसीलिए इसे तलाक-उल-सुन्नत कहते हैं। इस तलाक को तलाक-उल-राजे भी कहते हैं। इसके दो प्रकार है:-

(1) अहसन (2) हसन

(1) अहसन :-

(i) यह शरीयत के द्वारा सर्वाधिक मान्यता प्राप्त तलाक है।

(ii) इसमें तलाक का उच्चारण सिर्फ एक बार ही किया जाता है। यह उच्चारण पत्नी के तुहर काल में किया जाना चाहिए। तुहर काल किसी भी स्त्री के दो मासिक कालों के बीच का वह समय हैं जबकि वह स्त्री शरीरिक रूप से गर्भधारण करने के लिए सक्षम होती है।

(iii) उस तुहर काल में घोषणा के पूर्व वैवाहिक सम्भोग नहीं हुआ होना चाहिए।

(iv) तलाक की घोषणा के बाद पत्नी को इद्दत पालन आवश्यक होता है।

(v) मासिक काल यदि किसी कारणों से खत्म हो चुका हो तो उस स्त्री के संबंध में तुहर काल की सीमा लागू नहीं होगी।

चाँदबी बनाम बलवंत (1960), 62, ब० ल० ज० 811

(vi) इद्दत पूर्ण होते ही तलाक अप्रतिसंहरणीय (irrevocable) हो जाता है।

(vii) तलाक के अप्रतिसंहरणीय होने के पूर्व पति स्पष्ट घोषणा या वैवाहिक संभोग के द्वारा तलाक को निरस्त कर सकता है।

(viii) एक बार तलाक जैसे निंदनीय शब्द का उच्चारण अप्रतिसंहरणीयता के कारण तथा मोहम्मद साहब द्वारा अनुमोदन होने के कारण यह तलाक सर्वाधिक मान्य तलाक माना जाता है। इस तलाक को सर्वाधिक मान्य तलाक बनाते हैं।

(xi) इद्दत काल में किसी पक्षकार की मौत हो जाने पर दूसरा पक्षकार उत्तराधिकार पाता है।

(2) हसन :–

(i) इस तलाक में लगातार तीन तुहर कालों तक तलाक की उद्घोषणा की जाती है।

(ii) उद्घोषणा के पहले वैवाहिक संभोग नहीं हुआ होना चाहिए।

(iii) तीसरा उद्घोषणा के बाद तलाक अप्रतिसंहरणीय हो जाता है।

(iv) यदि प्रथम दो तुहर कालों में उद्घोषणा के बाद तलाक को वापस ले लिया गया हो तो तीसरा उद्घोषणा के बाद तलाक पूर्ण माना जायेगा तथा अप्रतिसंहरणीय हो जायेगा।

(v) गुलाम मोहिनुद्दीन बनाम खिजेर AIR (1929) लाहौर– 6

उक्त वाद में पति ने पत्नी को लिखित रूप में सूचित किया कि मैने आपको 15 सितम्बर को तलाक दे दिया है अत: यह तलाक 15 दिसम्बर को स्वत: पूर्ण हो जायेगा और इस आधार पर पति ने विवाह विघटन की माँग न्यायालय से की। पर न्यायालय ने उसके अभिभावाक् (plea) को अस्वीकार करते हुए यह तय किया कि चूँकि तीन क्रमगत तुहर कालों में तलाक की घोषणा नहीं की गई थी इसलिए तलाक पूर्ण नहीं माना जायेगा।

(2) तलाक-उल-बिद्दत या बैन :–

(1) तलाक-उल-बिद्दत का तात्पर्य हैं वह तलाक जो यद्यपि वैध हैं पर पापमय तथा अनियमित हैं।

(2) यह तलाक उम्मैयद शासकों द्वारा शुरू किया गया था।

(3) इस तलाक को शिया सम्प्रदाय मान्यता नहीं देती जबकि सुन्नी सम्प्रदाय मान्यता देता है।

(4) इस तलाक में उच्चारण के क्षण ही तलाक तुरंत अप्रतिसंहरणीय हो जाता है।

(5) मोहम्मद साहब के सुन्नत के विपरीत होने के तथा तुरंत अप्रतिसंहरणीयता के कारण ही इस तलाक को निंदनीय समझा जाता है।

(6) इस तलाक को तलाक-उल-बैन (अप्रतिसंहरणीयता) भी कहते हैं।

(7) इसके दो प्रकार हैं :- (क) तीन घोषणाएँ (तीहरा तलाक) (ख) एक घोषणा ।

(क) तीन घोषणाएँ या तीहरा तलाक :– इस तलाक में पति तुहर काल में तलाक की तीन उद्घोषणाएँ या एक ही वाक्य में तीन उद्घोषणाएँ करता है – मैं तुम्हें तलाक देता हूँ, मैं तुम्हें तलाक देता हूँ, मैं तुम्हे तलाक देता हूँ। मैं तुम्हें तीहरा तलाक देता हूँ।

(ख) एक घोषणा :- इस तलाक में पति तुहर काल में एक वाक्य में (घोषणा में) तलाक-उल-बिद्दत/बैन कहते हुए तलाक दे सकता है। जैसे – मैं तुम्हें तलाक-उल-बिद्दत देता हूँ।

(2) रहमतुल्ला बनाम उ० प्र० राज्य, उ० प्र० सिविल एण्ड रेवेन्यु केसज रिपोर्टर (1994)(1)– 530

इस वाद में कहा गया कि तलाक-उल-बिद्दत अवैध है क्योंकि यह पवित्र कुरान के निर्देशों के विपरीत हैं।

(3) राशीद अहमद बनाम अनीसा खातून AIR 1932, P.C. 25

उक्त वाद में कहा गया कि तलाक-उल-बिद्दत में तलाक की प्रभावकारिता एवं अप्रतिसंहरणीयता पति की मानसिक स्थिति पर निर्भर नहीं करती। इसीलिए यह उचित तलाक नहीं होना चाहिए। अत: यह महत्वहीन हैं कि तलाक गुस्से में दिया गया था या किसी दबाव में। केवल यह आवश्यक हैं कि पति ने उन शब्दों का उच्चारण किया था कैसे किया था, क्यों किया था या कब किया था यह महत्वपूर्ण नहीं है।

(4) मन्सूर अहमद बनाम राज्य (एन. सी. टी. ऑफ दिल्ली)

उक्त वाद में यह तय किया गया था कि तलाक किसी युक्तियुक्त कारण पर होना चाहिए। तलाक के पूर्व मध्यस्थता का प्रयास होना चाहिए जिसमें पत्नी की तरफ से एक एवं पति की तरफ से एक मध्यस्थ हो।

(5) तलाक अपने आप में ही प्रभावी नहीं होगा जब तक की उक्त औपचारिकता पूर्ण नहीं कर दी जाती।

(6) पारस्परिक उत्तराधिकार घोषणा के साथ ही समाप्त हो जाता है।

अपवाद – लेकिन यदि तलाक मर्जुल-उल-मौत के दौरान दिया गया हो और पति की मृत्यु इद्दत काल के पूर्व ही हो जाये तो पत्नी विधवा की हैसियत से उत्तराधिकार प्राप्त करेगी।

हसन तलाक तथा तलाक-उल-बिद्दत में ही हलाला का नियम लागू होगा।

इला:-

इला तथा जिहार पति द्वारा विवाह भंग करने के आन्वयिक तरीके (constructive methods) हैं क्योंकि इनके अंतर्गत सीधे तलाक न देकर पति अपने व्यवहार द्वारा विवाह निराकृत करता है।

1. इस शब्द का अर्थ शपथ होता है, पति शपथ लेता है कि वह अपनी पत्नी से संभोग नहीं करेगा। इस शपथ के पश्चात् पति तथा पत्नी में चार माह तक संभोग नहीं होता। चार माह पूर्ण होने पर बिना किसी अन्य कार्यवाही के विवाह-विच्छेद हो जाता है। परंतु चार माह पूर्ण होने से पहले कभी भी संभोग हो जाने पर 'इला' का शपथ निरर्थक हो जाता है और विवाह-विच्छेद नहीं हो पाता है।
2. **सुन्नी हनफी विधि के अनुसार** - चार माह के पूर्ण होते ही यह तलाक अविखण्डनीय तलाक की तरह स्वत: प्रभावी होता है।
3. **जबकि शिया एवं शफी विधियों के अनुसार** यह तलाक स्वत: प्रभावी नहीं होता बल्कि पत्नी को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर ले।

जिहार :-

जिहार भी विवाह-विच्छेद का आन्वयिक तरीका (constructive method) है। जिहार का अर्थ है - 'आपत्तिजनक तुलना' (injurious assimilation)। इस तलाक में पति अपनी पत्नी की तुलना अपने निषिद्ध संबंधों में से किसी के साथ करता है और चार माह तक वैवाहिक संभोग से विरक्त रहता है। इस तलाक के लिए तुलना करने में पति का आशय महत्वपूर्ण माना जाता है। चार माह तक उनमें संभोग न होने पर जिहार पूर्ण मान लिया जायगा लेकिन, जिहार पूर्ण हो जाने पर भी विवाह का विच्छेद (divorce) अपने आप नहीं होता। यदि चार माह पूर्ण होने से पहले ही पति ने संभोगरत होकर जिहार के कथन का प्रतिसंहरण (revocation) कर दिया हो तो विवाह-विच्छेद तो नहीं होता परंतु पति को कुछ प्रायश्यित (penance) करना पड़ता है।

शिया-विधि - शिया-विधि के अंतर्गत जिहार की घोषणा दो सक्षम गवाहों की उपस्थिति में की जानी चाहिये।

पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद (Divorce by Wife)

मुस्लिम-विधि के अंतर्गत पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद केवल निम्न स्थितियों में ही संभव है -

(अ) पति द्वारा तलाक के अधिकार को पत्नी में प्रत्यायोजित (delegate) करने पर, अर्थात् तलाक-ए-तफवीज के अंतर्गत,

(ब) पति-पत्नी के आपसी अनुबंध (mutual agreement) द्वारा अर्थात्, खुला एवं मुबारत के अंतर्गत तथा,

(स) न्यायिक विवाह-विच्छेद द्वारा मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 के अंतर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करके।

पत्नी मात्र अपनी स्वेच्छा से विवाह-विच्छेद करने में कभी भी सक्षम नहीं है। पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद (अ) तथा (ब) के अंतर्गत पति की सहमति तथा (स) के अंतर्गत न्यायालय के आदेश पर आश्रित रहता है।

तलाक-ए-तफवीज (प्रत्यायोजित तलाक)

तलाक-ए-तफवीज़ का तात्पर्य - प्रत्यायोजित तलाक से हैं। प्राचीन काल में यह प्रत्यायोजन काल भी व्यक्ति में किया जा सकता था पर वर्तमान में यह प्रत्यायोजन स्वयं पत्नी में ही निहित किया जाता है। प्रत्यायोजन के बाद भी पति का तलाक देने का अधिकार समाप्त नहीं होता। जिस व्यक्ति में तलाक देने के अधिकार का प्रत्यायोजन किया जाता है वह व्यक्ति पति के अभिकर्ता की तरह तलाक देने में उसी प्रकार सक्षम माना जाता है जैसे कि पति। इसके निम्न प्रकार हैं :- 1. **अख्तियार** - मैं तुम्हें अख्तियार देता हूँ कि तुम स्वयं को तलाक दे दो। 2. **अमीर-ब-येद** - यह तुम्हारा काम है कि जैसा चाहों वैसा करने के लिए स्वतंत्र हो। 3. **मशीयत** - मैं तुम्हें इस बात का विकल्प देता हूँ कि तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो। स्थायी प्रत्यायोजन का प्रतिसंहरण किया जा सकता है पर अस्थायी प्रत्यायोजन का प्रतिसंहरण नहीं किया जा सकता। प्रत्यायोजन सशर्त हो सकता है और अशर्त भी। सशर्त होने पर अधिकार का प्रयोग तभी किया जायेगा जब कि वह शर्त घटित हो। **सईनुद्दीन बनाम**

लतीफुन्निसा (1918), 46 कल 141 इस वाद में यह तय किया गया था कि घटना घटने पर ही स्वत: विवाह का विघटन नहीं होता पत्नी को अपने प्राधिकार का प्रयोग करना पड़ता है। प्रत्यायोजन पति के अधिकार को खत्म नहीं करता। "प्रत्यायोजित तलाक का यह रूप पत्नी के हाथ में शायद सबसे शक्तिशाली अस्त्र हैं जिसके द्वारा वह बिना न्यायालय की शरण जाये विवाह-बंधन से मुक्ति पा सकती है।" **मांगिला बीबी बनाम नूर हुसैन AIR (1992) क्ल० 92** उक्त वाद में यह कहा गया था कि लिखित रूप में तलाकनामा होने पर यदि दोनों पक्षकारों के हस्ताक्षर उस तलाकनामों पर हो तो यह द्विपक्षीय प्रत्यायोजन नहीं माना जायेगा और पत्नी को अधिकार होगा कि वह प्रत्यायोजित तलाक की शक्ति का प्रयोग कर सके।

खुला

खुला का शब्दिक अर्थ है 'वस्त्र खोलना' विधि की शब्दावली में खुला का मतलब है पति की सहमति से, उसे (पति को) कुछ मुआवजा (compensation) देकर, पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद।

बेली के अनुसार :- खुला का विधि में अर्थ है पति द्वारा पत्नी पर अपने अधिकार एवं प्रभुत्व को छोड़ देना। यह तलाक पत्नी की पहल पर आपसी सहमति के द्वारा होता है। प्रतिफल के रूप में मेहर या अन्य कोई मूल्यवान वस्तु या कोई अन्य अधिकार जिस पर पक्षकार सहमत हो सकता है। इस तलाक में प्रस्ताव पत्नी की तरफ से एवं स्वीकृति पति की तरफ से होती है और स्वीकृत होते ही यह तलाक एक घोषणा वाले अप्रतसिंहरणीय तलाक में परिवर्तित हो जाता हैं। सामान्य तौर पर प्रतिफल का भुगतान स्वीकृति के समय ही करना होता है। लेकिन यदि पक्षकार सहमत हो तो प्रतिफल बाद में भी दिया जा सकता है। ऊपर वर्णित स्थिति में यदि पत्नी स्वीकृति के बाद प्रतिफल न दे तो पति न्यायालय द्वारा इसकी माँग कर सकता है। स्वीकृति के पूर्व पत्नी द्वारा कभी भी प्रस्ताव वापस लिया जा सकता है। पति स्वीकृति के बाद प्रतिसंहरण नही कर सकता पर यदि पत्नी इद्दत के दौरान प्रतिफल की माँग करती है और पति यदि इस बात पर सहमत होता है तो वह प्रतिसंहरण कर सकता है। यह नियम सिर्फ शिया विधि में ही मान्य है। **खुर्शीद बीबी बनाम मोहम्मद अमीन पी०एल० डी० (1967) सु० कु० (पाक) 97** इस वाद में कहा गया था कि पत्नी खुला की माँग अधिकार स्वरूप कर सकती है यदि वह न्यायालय को अन्यथा इस बात के लिए संतुष्ट कर देती है कि उसका पति के साथ रहना एक घृणित संयोग माना जायेगा।

पति और पत्नी दोनों को ही स्वस्थचित्त एवं यौवनावस्था की वय प्राप्त किये होना चाहिए। प्रस्ताव एवं स्वीकृति दोनों ही स्वतंत्र सहमति से होने चाहिए। शिया विधि में इस संबंध में दो गवाहों की आवश्यकता होती है। **रसीद अहमद बनाम अनीसा खातून (1931) 59, आई० ए० 21** उक्त वाद में यह कहा गया था कि सुन्नी विधि मे खुला दबाव में या फिर नशे की स्थिति में किया जा सकता है पर शिया विधि में नहीं। हनफी सुन्नी विधि में अभिभावक अवयस्क या विकृतचित्त की तरफ से खुला की सहमति दे सकता है। **कासिम हुसैन बेग बनाम कनीज सकीना (1932) 52 इला० 806** उक्त वाद में यह कहा गया था कि यदि राशि एक बार पक्षकारों द्वारा सहमति से तय की जा चुकी हो तो बाद में एकतरफा तौर से बढ़ायी नहीं जा सकती। **मुंशी बुजलुल रहीम बनाम लतीफुन्निसा बेगम (1861) 8, एम० आई० ए०379** इस वाद में - खुला और सामान्य तलाक में अंतर की विवेचना की गई थी। तलाक पति का मनमाना कार्य होता हैं जिसमें वह अकारण ही पत्नी का त्याग कर देता हैं जबकि खुला पत्नी की पहल पर दोनों पक्षकारों की सहमति से होता है। जिसमें कि पत्नी विवाह बंधन से मुक्ति के लिए कुछ प्रतिफल पति को देती है। खुला पति की स्वीकृति के बाद ही पूर्ण हो जाता है और प्रतिफल देने या न देने से इसकी वैधता पर कोई असर नहीं पड़ता।

मुबारत (पारस्परिक सहमति)

मुबारत का तात्पर्य पारस्परिक सहमति से एक दूसरे को स्वतंत्र करना है। इसमें तलाक की पहल पति और पत्नी दोनों ही कर सकते हैं तथा स्वीकृति के बाद तलाक एकघोषणा (अप्रतिसंहरणीय तलाक) की तरह अविखण्डनीय हो जाता है। पक्षकारों को स्वस्थचित्त एवं यौवन होना चाहिए। सामान्य तौर पर इसमें प्रतिफल की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि दोनों पक्ष अलगाव में हित रखते है। पत्नी को इद्दत का पालन करना होता है

तथा पति इद्दत के दौरान भरणपोषण के लिए उत्तरदायी होता है।

न्यायिक विवाह-विच्छेद (फस्क)

किसी न्यायालय के आदेश द्वारा विवाह-विच्छेद न्यायिक विवाह -विच्छेद कहलाता है।मुस्लिम-विधि में न्यायिक विवाह-विच्छेद को फस्क कहते है। न्यायिक तलाक का आधार मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 है। इस अधिनियम के तहत तलाक का अधिकार सिर्फ पत्नी को ही प्राप्त है। इस अधिनियम के पारित होने के पहले पत्नी के पास सिर्फ निम्न तीन अधिकार ही तलाक के लिए प्राप्त थे :- 1. यौवनावस्था का विकल्प, 2. पति की नपुंसकता, 3. लियान (Lian)। यह अधिनियम सभी मुस्लिम विचारधाराओं पर लागू होता है।इस अधि नियम की क्षेत्रीय अधिकारिता जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर पूरे भारतवर्ष में है। इस अधिनियम की धारा 2 में नौ ऐसे आधार (grounds) दिये गये हैं जिनमें से किसी एक के अंतर्गत विवाहिता स्त्री अपने विवाह को भंग कराने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकती है। इन 'आधारों' की उपस्थिति मात्र से ही विवाह-विच्छेद नहीं होता, पत्नी को केवल विवाह-विच्छेद का वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिल जाता है। विवाह-विच्छेद न्यायालय की डिक्री पर ही निर्भर करता है। विवाह, मेहर एवं विवाह-विच्छेद इत्यादि के लिए पक्षकार की आयु यौवनावस्था की होनी चाहिए परंतु दीवानी प्रक्रिया संहिता (संशोधन अधिनियम 1976) के अनुसार अब वाद दायर करते समय पक्षकारों की आयु 18 वर्ष की होनी चाहिए। तो यदि पत्नी 18 वर्ष से कम है तो वह उक्त अधि नियम के अंतर्गत कोई वाद वादमित्र के द्वारा ही (दीवानी प्रक्रिया संहिता के नियमों के अनुसार) दायर कर सकती है। उक्त अधिनियम का लाभ मुस्लिम विधि के तहत विवाहित पत्नी को मिलता है। उक्त अधिनियम का लाभ स्त्री को धर्म-परिवर्तन के बाद भी प्राप्त होता है। (धारा 4) पर पुनः प्रर्वतन पर यह लाभ नहीं मिलेगा। धारा 5 के तहत मेहर का अधिकार भी प्रभावित नहीं होगा।

पत्नी द्वारा न्यायिक विवाह-विच्छेद का अधिकार

1. पति चार साल तक लापता है - उक्त आधार के तहत यदि पति 4 वर्षो तक लापता रह चुका है तो पत्नी इस आधार पर विवाह विच्छेद का वाद दायर कर सकती है। डिक्री देने के पूर्व धारा 3 के तहत न्यायालय पति के उत्तराधिकारियों को सुनकर आधार की पुष्टि करेगा। परंतुक (B) के अनुसार उक्त डिक्री 6 माह तक प्रवर्तित नहीं होगी और यदि इस समय में पति न्यायालय के समक्ष आकर यह संतुष्ट करता है कि वह वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए तैयार है तो न्यायालय डिक्री को निरस्त कर देगा।

2. भरणपोषण दो साल तक :- यदि पति 2 साल तक अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने में उपेक्षा करता है या असफल रहता है तो पत्नी के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिए यह उचित आधार होगा। **सत्तुंज बनाम रहमत** AIR (1945) सिंध -48 उक्त वाद में यह कहा गया था कि निर्धनता, बेरोजगारी, बीमारी की अवस्था या अन्य किसी दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था के द्वारा यदि पति असफल रहा है तो भी पत्नी उक्त आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए दावा कर सकती है।

यूसुफ रोथन बनाम **सोरम्मा ए० आई० आर० 1971 केरल 261** के वाद में केरल उच्च न्यायालय ने निधारित किया है कि पत्नी यदि बिना किसी न्यायोचित कारण के भी पति से अलग रहती हो और पति उसके भरण-पोषण की व्यवस्था न कर सका हो तो पत्नी को विवाह-विच्छेद की डिक्री धारा 2(2) के अंतर्गत प्राप्त हो सकती है। न्यायालय को उचित सम्मान देते हुये कहा जा सकता है कि यह निर्णय युक्तिसंगत नहीं है और इस पर पुनर्विचार होना चाहिए।

भरण-पोषण का दायित्व पति का आत्यन्तिक दायित्व है।

3. सात साल तक पति का कारावास - पति को यदि किसी अपराध के लिए सात या अधिक वर्षो तक का कारावास हुआ हो तो पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री का वाद प्रस्तुत कर सकती है। इस आधार पर विवाह भंग कराने का अधिकार उस समय से प्रारम्भ माना जायगा जब पति के कारावास का निर्णय अंतिम रूप से निश्चित हो चुका हो।

4. तीन वर्षो तक वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन ना करना - यदि पति बिना किसी युक्तियुक्त कारण के वैवाहिक कर्त्तव्यों के पालन में 3 वर्षो तक यदि उपेक्षा करता है तो पत्नी के पास यह उचित आधार होगा कि

वह विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिए दावा करे। जैसे - पति द्वारा बिना किसी कारण के पत्नी का अधित्यजन करना।

5. <u>पति की नपुंसकता</u> :- नपुंसकता विवाह के समय तथा विवाह विच्छेद का प्रार्थना पत्र देते समय की ही होनी चाहिए। विवाहोपरांत नपुंसकता अमान्य होगी। नपुंसकता संबद्ध पक्षकार के संबंध में ही जाँची जायेगी। नपुंसकता शारीरिक या मानसिक हो सकती है। इस संबंध में पति को यह अधिकार होगा कि वह अपनी पुंसकता सिद्ध करने के लिए न्यायालय से एक वर्ष का समय माँगे और यदि इस काल में यदि वह अपनी पुंसकता को सिद्ध का देता है तो वदि खारिज कर दिया जायेगा। ऐसे समय का माँगा जाना पति का अधिकार है न्यायालय इसे देने से मना नहीं कर सकता।

गुलाम मुहम्मद खाँ बनाम हसीना **AIR (1988) J & K 12** उक्त वाद में यह कहा गया था कि यदि पति की नपुंसकता का परीक्षण किसी सक्षम मेडीकल बोर्ड द्वारा होता हैं और सम्बद्ध प्रमाणपत्र पति न्यायालय में जमा कर देता है तो नपुंसकता को आसिद्ध करने का पुनः आदेश अविधिक होगा।

6. <u>पागलपन, कुष्ठरोग तथा रतिरोग</u> :- इस आधार में वर्णित पागलपन, कुष्ठरोग तथा रतिरोग आधारों का स्थायी होना या असाध्य होना वर्णित नहीं है। अतः यदि विहित काल (2 वर्ष) तक ऐसी कमी पति के अंदर चाहे नियमित या अनियमित रूप से हो तब भी यह विवाह-विच्छेद का उचित आधार होगा। रतिरोग चाहे वैवाहिक संभोग के पहले या फिर बाद में उत्पन्न हुआ हो यह उचित आधार होगा।

7. <u>यौवनावस्था का विकल्प</u> :- धारा 2 (7) के अनुसार यदि किसी पत्नी का विवाह उसकी अवयस्कता (15 वर्ष कम उम्र) में उसके पिता अथवा किसी अन्य अभिभावक ने कराया हो और वयस्कता (15 वर्ष)का वय प्राप्त करने पर उसने विवाह निराकृत (repudiate) कर दिया हो तो इस स्थिति से न्यायालय को अवगत कराते हुए वह विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकती है।

8. <u>पति की क्रूरता</u> - क्रूरता में मानसिक और शारीरिक क्रूरता दोनों ही आती है। मानसिक क्रूरता से तात्पर्य है कि पत्नी का मन पति के किसी व्यवहार से आहत महसूस करे और शारीरिक क्रूरता का मतलब हैं कि पत्नी को यह विश्वास हो जाये कि उसका जीवन सुरक्षित नहीं है कुल मिलाकर क्रूरता से तात्पर्य पति के संदर्भ में पत्नी के मन में असुरक्षा का पैदा होना है। निम्न उदाहरणों को क्रूरता माना जा सकता है -

(i) अनैतिक जीवन व्यतीत करना।

(ii) बिना आज्ञा पत्नी की सम्पत्ति का अंतरण करना।

(iii) पत्नी को अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करना।

(iv) धार्मिक रीति-रिवाजों पर प्रतिबंध लगाना।

(v) झूठे मुकदमें में फंसाना क्रूरता माना जायेगा।

(vi) पत्नियों के साथ समान व्यवहार न करना क्रूरता माना जायेगा।

(vii) इतवारी बनाम असगरी यह तय किया गया था कि द्वितीय पत्नी के साथ प्रथम पत्नी को रहने के लिए बाध्य करना क्रूरता माना जायेगा।

9. <u>अन्य आधार</u> :- यह आधार अवशिष्ट उपधारा के रूप में जाना जाता है। अर्थात् यदि कोई आधार अन्य आधारों में न पाया जाये तो इस आधार में गिना जा सकता है। अतः खुला, मुबारत, इला, जिहार तथा लियान आदि के आधार पर पत्नी इस उपधारा के अंतर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए दावा कर सकती है।

लिआन :- लिआन का तात्पर्य है पति द्वारा पत्नी पर परपुरूषगमन का मिथ्या आरोप लगाना है। यह आरोप वयस्क एवं स्वस्थ चित्त द्वारा लगाया जाना चाहिए तथा इसके लिए विवाह वैध होना चाहिए। फासिद विवाह होने पर लिआन के आधार पर दावा नहीं किया जा सकता। यह दावा निगमित दावा के रूप में होगा। सुनवाई के पूर्व पति कभी भी आरोप वापस ले सकता है। यदि लिआन का आरोप सिद्ध हो जाता है तो विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान कर दी जायेगी। सिर्फ अचारित्रिक शब्दों का प्रयोग अपने आप में लियान के समतुल्य नहीं माना जा सकता। लिआन दोषारोपण वापसी के पीछे सिद्धांत वैवाहिक संबंधों को बचाना होना चाहिए और यह वापसी मान्य रूप से होनी चाहिए न कि पत्नी के वाद को विफल कराने के लिए।

धर्मत्याग का विवाह पर प्रभाव

मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 के पारित होने के पूर्व पति या पत्नी द्वारा इस्लाम धर्म का परित्याग करने पर विवाह-विच्छेद तुरंत हो जाया करता था। परंतु उक्त अधिनियम के पारित होने के बाद इस अधिनियम की धारा 4 में पति या पत्नी के धर्म-त्याग से उनके विवाह पर होने वाले प्रभाव की वर्तमान स्थिति निम्नवत् है :-

(अ) **पति का धर्मत्याग** - मुस्लिम पति द्वारा इस्लाम धर्म का परित्याग करते ही विवाह तुरंत भंग हो जाएगा और पत्नी इद्दत पालन करने के बाद अपना दूसरा विवाह करने के लिए स्वतंत्र है।

(ब) **पत्नी का धर्मत्याग** - किसी मुस्लिम पत्नी के इस्लाम धर्म त्याग कर दूसरा धर्म स्वीकार कर लेने पर विवाह-विच्छेद नहीं होता है।

अपवाद -

पत्नी यदि संपरिवर्तित मुस्लिम (converted Muslim) रही हो-और उसने इस्लाम त्याग कर पुनः अपने मूल धर्म को स्वीकार कर लिया हो तो विवाह-विच्छेद तुरंत हो जायेगा।

मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 भूतलक्षी रूप से लागू नहीं होता है।

तलाक के प्रभाव

1. वैवाहिक संभोग अवैध हो जाता है।

2. उत्पन्न संतानें अवैध मानी जाती है। पर हनफी विधि में दो वर्ष के अंदर शफी एवं मालिकी विधि में चार वर्ष के अंदर तथा शिया विधि में 10 महीने के अंदर उत्पन्न संताने वैध मानी जाती है। पर इस संबंध में अब विधि धारा 112 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अनुसार निर्धारित की जाती है।

3. पक्षकार शरीयत के नियमों के अनुसार पुर्नविवाह कर सकते हैं।

4. पत्नी वैध मेहर की अधिकारिणी हो जाती है।

5. पत्नी को इद्दत पालन आवश्यक हो जाता है।

6. पति इद्दत की अवधि तक भरण-पोषण के लिए दायी माना जाता है।

7. पारस्परिक उत्तराधिकार समाप्त माना जाता है पर यदि पति ने तलाक मर्जुल-मौत के दौरान दिया हो और इद्दत अवधि में ही पति की मृत्यु हो जाती है तो पत्नी उत्तराधिकार की अधिकारिणी होती है।

अध्याय 7

भरण-पोषण (नफका)

सार-परिचय

- प्रस्तावना
- भरणपोषण की परिभाषा
- भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी व्यक्ति
  - (1) पत्नी
  - **(i)** मुस्लिम वैयक्तिक विधि के अंतर्गत
  - **(ii)** दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अंतर्गत भरणपोषण
  - **(iii)** शाहबानों प्रकरण
  - **(iv)** मुस्लिम महिला अधिनियम 1986 के अंतर्गत भरण-पोषण
  - **(v)** डेनियल लतीफ़ी वाद
  - (2) अवयस्क संतान
  - (3) अभावग्रस्त माता-पिता
  - (4) निषिद्ध संबंधों के अंतर्गत आने वाले अन्य अभावग्रस्त संबंधी

प्रस्तावना :-

मुस्लिम विधि की शब्दावली में भरण-पोषण को नफका कहा जाता है। भरण-पोषण का अधिकार सिर्फ उस सूरत में होता है जबकि व्यक्ति जीविकाहीन अर्थात् अपना जीविकोपार्जन करने में असमर्थ होता है। भरण-पोषण का दायित्व एक ऐसा दायित्व है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के भोजन, वस्त्रादि की व्यवस्था करने के लिए बाध्य रहता है।

परिभाषा - नफका का शाब्दिक अर्थ है जो कि एक व्यक्ति अपने बच्चों के ऊपर खर्च करता है। विधि में इसका अर्थ भोजन, वस्त्र निवास स्थान हैं।

भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी व्यक्ति

मुस्लिम विधि में निम्नलिखित व्यक्ति भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी माने गये हैं :-

(1) पत्नी,
(2) अवयस्क संतान,
(3) अभावग्रस्त माता-पिता,
(4) निषिद्ध-संबंधों के अंतर्गत आने वाले अन्य अभावग्रस्त संबंधी।

(1) पत्नी का भरण-पोषण

पत्नी के भरण-पोषण की व्यवस्था करना पति का एक विधिक दायित्व माना गया है। चाहे पति साधनहीन हो, उसके पास सम्पत्ति न हो अथवा पत्नी स्वयं भरण-पोषण करने में समर्थ हो तब भी पति भरण-पोषण के लिए दायी है पत्नी अस्ल (मूल) संतानों को फरअ (शाखा) माना जाता है। अतः संतानों के भरण-पोषण की तुलना में पत्नी को वरीयता प्राप्त है, मात्र निकाह होने से ही पत्नी भरण-पोषण की अधिकारिणी होती है। इस संबंध में अलग से अनुबंध की आवश्यकता नहीं होती है। पति का पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व आत्यतिक होता है पत्नी के गैर-मुस्लिम होने पर भी यह अधिकार उसे प्राप्त रहता है। पति का यह दायित्व विधिमान्य या सहीह निकाह होने पर होता है तथा पत्नी के यौवनावस्था के प्रारम्भ के बाद ही उत्पन्न होता है।

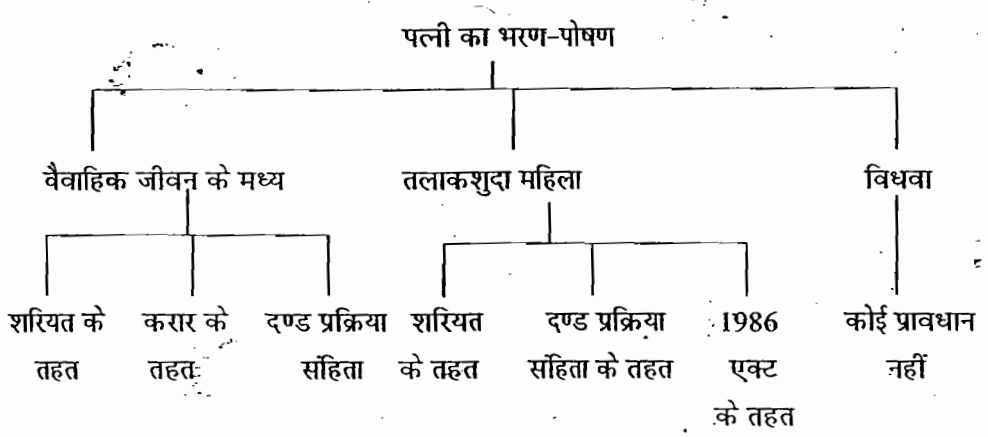
निम्न स्थितियों में पति पत्नी के भरण-पोषण के लिए दायी नहीं माना जाता –

(i) यदि पत्नी वैवाहिक संभोग के लिए अक्षम है।

(ii) यदि पत्नी पति की आज्ञा या अपने वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन नहीं करती है।

(iii) यदि पत्नी जारता की स्थिति में रह रही हो।

(iv) यदि पत्नी ने पति का अधित्याग कर दिया हो या फिर वे दोनों पारस्परिक सहमति से अलग रह रहे हो।



उक्त भरण-पोषण निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है :-

(1) वैवाहिक जीवन के मध्य

(2) तलाकशुदा महिला के संदर्भ में

(3) विधवा के संदर्भ में

(1) <u>वैवाहिक जीवन के मध्य</u> :-

(i) शरियत के तहत

(ii) करार के तहत

(iii) अपराध प्रक्रिया संहिता के तहत

(i) शरियत के तहत :- शरीयत के अनुसार मुस्लिम पति वैवाहिक जीवन के मध्य अपनी पत्नी के भरण-पोषण के लिए आत्यान्तिक रूप से उत्तरदायी हैं जब तक पत्नी शरियत के नियमों के अनुसार भरण-पोषण के लिए आयोग्य न समझी जाती है।

(ii) करार के तहत :- मुस्लिम पति और पत्नी आपस में करार द्वारा भी भरण-पोषण का अनुबंध कर सकते हैं पर यह करार विधि विरूद्ध तथा शरियत के विरूद्ध नहीं होना चाहिए। सामान्य तौर पर खर्चा-ए-पानदान या मेवाखोरी ऐसे करारों के तहत माने जा सकते हैं।

बेगम सुबानू उर्फ सायरा बानू बनाम अब्दुल गफूर AIR (1987) S.C 1103

उक्त वाद में यह कहा गया था कि वैयक्तिक विधि के तहत एक विवाह से अधिक विवाह मान्य होने पर भी प्रथम पत्नी की पति से अलग रहकर मान्य होने पर भी प्रथम पत्नी की पति से अलग रहकर भरण-पोषण की माँग न्यायोचित मानी जायेगी तथा यह भी महत्वहीन होगा कि दूसरी पत्नी रखैल हैं या वैध रूप से विवाहिता पत्नी।

(iii) अपराध प्रक्रिया संहिता 1973 के तहत :- धारा 125 अपराध प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत मुस्लिम विवाहित पत्नी विहित नियमों के अनुसार भरण-पोषण की माँग अपने पति से कर सकती है।

(2) <u>तलाकशुदा महिला के संदर्भ में भरण-पोषण</u> :-

(i) शरियत के अनुसार – इस संबंध में तलाकशुदा पत्नी अपने पति से भरण-पोषण के लिए इद्दत की अवधि

तक ही अधिकारिणी होगी।

(ii) आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत :- धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के अनुसार **नानकचंद बनाम चंद्र किशोर AIR 1970 S.C. 446** उक्त वाद में यह कहा गया था कि धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधान सभी धर्मों से संबद्ध व्यक्तियों पर लागू होते हैं और इनका पक्षकारों के वैयक्तिक विधियों या राष्ट्रीयता या अधिवास (Domicile) से कोई संबंध नहीं है।

यमुनाबाई बनाम अनन्त राव AIR (1988) S.C. 641

इस वाद में यह कहा गया था यद्यपि धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता पर वैयक्तिक विधियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर पक्षकारों के विवाह-इत्यादि की वैधता जाँचने के लिए वैयक्तिक विधि सुसंगत हैं और इस संबंध में वैयक्तिक विधियों के महत्व को पूरी तरीके से नकारा नहीं जा सकता।

बाई ताहिरा बनाम अली हुसैन AIR (1979) S.C. 362

धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता का अधिकार एक स्वतंत्र अधिकार है जो कि वैयक्तिक विधि के तहत मेहर के रूप में किये गये भुगतान से समाप्त नहीं होता। मेहर के अधिकार का समर्थन कर दिये जाने पर भी भरण-पोषण का अधिकार समाप्त नहीं होता क्योंकि परिनियमित अधिकार परस्पर अनुबंध से समाप्त नहीं होते।

मुहम्मद अहमद खाँ बनाम शाह बानू AIR (1985) S. C.945 उक्त वाद के तथ्य संक्षेप में निम्न है:-

मोहम्मद अहमद खान और शाहबानो का विवाह 1932 में हुआ था और इसके फलस्वरूप इनके तीन पुत्र दो पुत्रियाँ थी। 43 वर्षों के वैवाहिक जीवन के बाद 1975 में मोहम्मद अहमद ने शाहबानों को घर से निकाल दिया और शाहबानों ने तब अपनी पुत्री के यहाँ शरण ली जब साल भर तक पति ने शाहबानो की कोई खोज खबर नहीं ली तो उसने इंदौर के प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अप्रैल 1978 में धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत 500/- रूपये प्रतिमाह भरण-पोषण के लिए आवेदन किया 1 नवम्बर 1978 में मु० अहमद ने शाहबानों को अखण्डनीय तलाक दे दिया और 3000/- बतौर मेहर एवं इद्दत के दौरान की भरण-पोषण राशि के लिए न्यायालय में जमा करवा दिया। इसके उपरांत मु० अहमद ने धारा 127 आपराधिक प्रक्रिया संहिता का अभिवाक् लेते हुए यह कहा कि तलाक के बाद शाहबानो उसकी पत्नी नहीं है तथा स्वीय विधि के अंतर्गत विवाह-विच्छेद पर देय राशि उसने अपनी पत्नी को दे दी है। अतः वह किसी भी प्रकार के भरण-पोषण के लिए अधिकारी नहीं है। उसके इस अभिवाक् को सत्य मानते हुए न्यायालय ने शाहबानों के पक्ष में नाममात्र की भरण-पोषण की राशि 25/- प्रतिमाह का आदेश पारित किया। इस आदेश के विरोध में शाहबानो ने उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर किया और सुनवाई के उपरांत उच्च न्यायालय ने यह राशि बढ़ाकर 179 रूपये 20 पैसे/- कर दिया। इस आदेश के खिलाफ मु० अहमद सु० को० चले गये।

इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय देते हुए निर्धारित किया है कि ऐसी तलाक शुदा मुस्लिम-पत्नी, जो अपना निर्वाह स्वयं कर पाने में असमर्थ हो, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत अपने पूर्व-पति से भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी है। कुरान की आयतों (सुर II आयत 241, 242) का उल्लेख करते हुए न्यायलय ने कहा कि चूँकि तलाक-शुदा पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व उसके पूर्व-पति पर कुरान में ही निर्देशित है अतः इस प्रकार की व्यवस्था इस्लाम के विरूद्ध नहीं मानी जा सकती है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 27 (3) के अनुसार तलाकशुदा पत्नी निम्नलिखित परिस्थितियों में अपने पूर्व पति से भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी नहीं रहती है -

(अ) जब उसने पुनर्विवाह कर लिया हो,

(ब) जब उसे प्रथागत अथवा वैयक्तिक विधि के अंतर्गत विवाह-विच्छेद पर देय सम्पूर्ण धनराशि प्राप्त हो गई हो;

(स) जब विवाह-विच्छेद के पश्चात् तलाकशुदा पत्नी ने अपनी स्वेच्छा से भरण-पोषण के अधिकार का परित्याग कर दिया हो।

मुस्लिम महिला अधिनियम 1986 के अंतर्गत —

उक्त अधिनियम की मुख्य बातें निम्न लिखित हैं :-

(1) तलाकशुदा महिला से तात्पर्य है मुस्लिम विधि के तहत विवाहित तथा मुस्लिम विधि के तहत ही तलाक प्राप्त।

(2) तलाक में पति द्वारा दिया गया तलाक तथा महिला द्वारा प्राप्त तलाक भी है।

(3) इद्दत की अवधि में तलाकशुदा मुस्लिम महिला अपने पूर्व पति से स्वयं के लिए युक्तियुक्त तथा उचित भरण-पोषण प्राप्त करेगी

(4) तलाक शुदा महिला की ऐसी संतान जो तलाक से पूर्व या उसके पश्चात उत्पन्न हुई हो और वह उसके साथ रह रही हो, के लिए भी दो वर्ष तक (जन्म से) भरण-पोषण के लिए धनराशि प्राप्त करेगी।

(5) वह मेहर जो कि मुस्लिम विधि के तहत विवाह के पूर्व या पश्चात् तय की गई हो, पाने की अधिकारिणी होगी।

(6) वे सभी सम्पत्तियाँ जो कि विवाह के समय या उसके पश्चात् रिश्तेदारों द्वारा मित्रों पति के द्वारा या पति के रिश्तेदारों के द्वारा विवाह के समय उसे दी गई हो, प्राप्त करने की अधिकारिणी होगी।

(7) यदि पति पर्याप्त साधन होते हुए भी वह असफल रहता है या उपेक्षा करता है। इद्दत काल में युक्तियुक्त एवं ऊपरवर्णित मेहर की धनराशि या अन्य सम्पत्तियाँ और इस संबंध में मजिस्ट्रेट को आवेदन किये जाने पर वह आधारों से संतुष्ट हैं तो आवेदन के 1 माह के अंदर इस संबंध में वैसा आदेश दे सकता है।

आदेश पालन न करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध आपराधिक प्रक्रिया संहिता में वर्णित जुर्माना वसूल करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया के तहत वारंट जारी कर सकता है। तथा वसूली न हो पाने पर एक वर्ष का कारावास या जब तक पहले ही भुगतान न हो जाये तक का कारावास का आदेश दे सकता है।

(8) धारा 4 के अनुसार :- किसी भी विधि में कोई भी बात होते हुए यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट है कि तलाकशुदा महिला ने पुनर्विवाह नहीं किया है तथा वह अपना भरण-पोषण करने में इद्दत काल के बाद असमर्थ हैं तो वह निम्न व्यक्तियों को भरण-पोषण का आदेश दे सकता है :-

(i) वे रिश्तेदार जो उसकी मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं, **(ii)** उसके बच्चे, **(iii)** उसके माता-पिता, **(iv)** अन्य नातेदार

(9) उक्त सूची अधिमानी क्रम मे है अर्थात् पूर्व वर्णित (सूची में) व्यक्ति के असमर्थ होने पर ही ऐसा आदेश दिया जा सकेगा।

(10) भरण-पोषण उचित एवं युक्तियुक्त होगा और इसका निर्धारण व्यक्तियों के साधन, उत्तराधिकार में प्राप्त अंश तथा पत्नी की वह जीवन-स्तर जो कि वह निकाह के समय व्यतीत कर रही थी इत्यादि तत्व ध्यान में रखे जायेंगे।

(11) यदि सूची में वर्णित कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं है या यदि मौजूद हैं तो उसके पास भरण-पोषण के लिए पयाप्त साधन नहीं है तो मजिस्ट्रेट संबंधित राज्य के वक्फ बोर्ड को जहाँ कि महिला निवास कर रही हैं। भरण-पोषण का आदेश दे सकता हैं।

(12) **सेक्रेटरी वक्फ बोर्ड तमिलनाडू बनाम सैयद फातिमा नाची AIR (1996) S.C. 2423** उक्त वाद में यह कहा गया था कि धारा (4) के अनुसार तलाकशुदा महिला सीधे वक्फ बोर्ड को आवेदन कर सकती है और उसी आवेदन में सूची मे वर्णित पक्षकारों की असमर्थता को साबित कर सकती है।

(13) सैयद फजल बनाम भारत संघ **AIR (1993)** केरल 308 उक्त वाद में धारा 4 (2) की संवैधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि अनुच्छेद 26 के तहत वक्फ बोर्ड धार्मिक अभिदाय नहीं है। अत: उसको भरण-पोषण का आदेश नहीं दिया जा सकता। पर न्यायालय ने उक्त अभिवाक् को अस्वीकार करते हुए धारा 4 (2) को संवैधानिक माना।

(14) धारा 5 के अनुसार - प्रथम सुनवाई के दिन दोनों पक्षकार हलफनामें द्वारा यदि यह घोषणा करते हैं कि उनके वाद की सुनवाई धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अनुसार की जाये तो मजिस्ट्रेट वैसा आदेश पारित कर सकता है।

(15) धारा 7 के अनुसार अधिनियम के लागू होने के बाद धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता एवं धारा 127 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत लम्बित प्रार्थना-पत्रों का निपटारा अधिनियम के तहत ही किया जायेगा जब तक कि पक्षकारों ने धारा 5 के तहत घोषणा न प्राप्त कर ली हो।

(16) ए. ए. अब्दुल्ला बनाम ए. बी. मैमूना सैयद भाई AIR (1988) गु० 143 चूँकि अधिनियम का प्रभाव भूतलक्षी नहीं है इसलिए धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत वाद के पूर्व पारित आदेशों को अधिनियम प्रभावित नहीं करता।

(17) परंतु जहाँ तक उक्त आदेशों के पुनरीक्षण या संशोधन का प्रश्न है न्यायालयों में मतभेद हैं। केरल उच्च न्यायालय यह मानता है कि ऐसा पुनरीक्षण या संशोधन नहीं हो सकता। तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय यह मानता है कि चूँकि धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता उक्त अधिनियम के द्वारा निरस्त नहीं की गई है अतः ऐसा संशोधन या पुनरीक्षण हो सकता है।

(18) **डेनियल लतीफी बनाम भारत संघ (2001) S.C. 218**

(i) उक्त वाद में यह कहा गया था कि 1986 का अधिनियम पूर्णतया संवैधानिक है।

(ii) पति का दायित्व सिर्फ इद्दत काल तक ही नहीं बल्कि पत्नी के पूरे जीवन काल तक है। यदि उसने पुनर्विवाह न किया हो। तथा भरण-पोषण में असमर्थ हो।

(iii) अधिनियम, अनुच्छेद 14, 15 तथा 21 भारतीय संविधान का उल्लंघन नहीं करता।

(iv) अधिनियम अभिव्यक्त, अलग रहने वाली, विशेष विवाह अधिनियम 1954 के तहत तलाक प्राप्त पत्नियों पर लागू नहीं होता।

(2) <u>अवयस्क संतान का भरण-पोषण</u> :-

अवयस्क पुत्र एवं पुत्र यदि वह जीवन-निर्वाह में अक्षम हो तो वयस्क होने तक उनका पिता भरण-पोषण के लिए दायी होता है। वयस्कता के बाद यदि शारीरिक अक्षमता हो तो पिता वयस्कता के बाद भी दायी होगा। इस संबंध में पिता, पुत्री के विवाह तक ही भरण-पोषण के लिए दायी होता है। इस सम्बन्ध में यह भी महत्वपूर्ण है कि पुत्र या पुत्री माता के संरक्षण में ही क्यों न हो पिता भरण-पोषण के लिए दायी होगा। सौतेला पिता भी बच्चों के भरण-पोषण के लिए दायी होता है।

नूर सबा-खातून बनाम मोहम्मद कासिम ए० आई० आर० 1997 सु० को० 3280 उक्त वाद में प्रश्न यह था कि एक तलाकशुदा महिला के अवयस्क बच्चों के संबंध में मुस्लिम महिला तलाकों पर अधिकारों का संरक्षण अधिनियम 1986 की धारा 3(1)(b) और आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के संदर्भ में उचित विधि क्या होगी?

इस संदर्भ में माननीय न्यायालय ने निम्न सिद्धांत प्रतिपादित किये :-

(1) उक्त अधिनियम तलाकशुदा महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है बच्चों के संरक्षण के उद्देश्य से नहीं।

अतः अवयस्क बच्चों का अधिकार अभी भी धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता द्वारा नियंत्रित होता है।

(2) उक्त अधिनियम में मांगा गया अधिकार एक माँ द्वारा अपने बच्चों के लिए जो कि भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं अधिकार हैं।

(3) धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता पिता पर आत्यन्तिक जिम्मेदारी भरण-पोषण को लागू करता है और इस संबंध में 1986 का अधिनियम उक्त धारा को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करता।

(4) मुस्लिम संहिता अधिनियम 1986 की धारा 3(1)(b) तथा धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत बच्चों का भरण-पोषण पूर्णतः दो अलग-अलग विशिष्ट परिस्थितियों में लागू होता है। इस संबंध में पिता चाहे तो बच्चों की अभिरक्षा की माँग कर सकता है।

(3) <u>अभावग्रस्त माता-पिता का भरण-पोषण</u> -

(i) अभावग्रस्त माता-पिता के भरण-पोषण के लिए पुत्र एवं पुत्री दोनों दायी होते हैं। यदि अ दोनों के आर्थिक स्थिति में अंतर हो तो जिसकी आर्थिक स्थिति ठीक हो वही दायी होगा।

(ii) यदि पुत्र एवं पुत्री माता-पिता में से एक का ही भरण-पोषण कर सकते हो तो माता को प्राथमिकता दी जायेगी पर अशना-अशरिया विधि के अनुसार वह राशि दोनों के संबंध में बराबर-बराबर बाँट दी जायेगी।

(iii) शरियत के तहत दोनों अपने पितामह एवं पितामही यदि वे अक्षम हो भरण-पोषण के लिए दायी हैं।

(iv) निषिद्ध संबंधों के तहत आने वाले पूर्वजों के भरण-पोषण के लिए व्यक्ति तभी दायी होगा जब वे अभावग्रस्त हो एवं वह व्यक्ति उनकी सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त करें।

विधवा पुत्र वधु का भरण पोषण का अधिकार

- विधवा पुत्र वधु अपने ससुर से भरण-पोषण की अधिकारिणी नहीं होती क्योंकि उसे उत्तराधिकार में सम्पत्ति मिल जाती है।

(v) पवित्री बनाम **कथीसुम्मा ए० आई० आर० 1959 केरल 319** इस वाद में कहा गया है कि अधर्मज संतान को भरण-पोषण के लिए पिता को दायी नहीं ठहराया जा सकता तथा माता को भी दायी नहीं ठहराया जा सकता पर हनाफी सुन्नी विधि में माता को द्रायी ठहराया जा सकता है।

अध्याय 8

जनकता एवं औरसता

सार परिचय

- जनकता
- औरसता
- इंस्लामी विधि के अंतर्गत औरसता की उपधारणा
- औरसता की वर्तमान विधि और इस्लामी विधि
- पितृत्व की अभिस्वीकृति (इकरार-ए-नसब)
- विधिमान्य अभिस्वीकृति की अनिवार्य शर्ते
- पितृत्व की अभिस्वीकृति अप्रतिसंहरणीय
- अभिस्वीकृति के विधिक प्रभाव
- इस्लाम में दत्तकग्रहण

जनकता :-

संतान से माता-पिता का विधिक संबंध जनकता कहलाता है। जनकता का महत्व भरण-पोषण, संरक्षकता उत्तराधिकार इत्यादि मामलों में संतान तथा उसके जनक के बीच विधिक अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के निर्धारण करने में प्रांसागिक होता है।

मुस्लिम विधि में मातृत्व संतान को जन्म देने वाली माता में माना जाता है, सम्भोग, जिसके फलस्वरूप संतान का जन्म हुआ हो, की वैधता अथवा अवैधता का मातृत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अत: अवैध संतान की अपनी माता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी मानी जाती है।

शिया विधि में अवैध संतान से माता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं माना जाता।

संतान का पितृत्व संतान तथा उसके पिता के बीच के विधिक संबंध को माना जाता है। किसी बच्चे का पितृत्व उसकी माता के वैध पति में माना जाता है। विवाह पूर्णतया विधिमान्य हो अथवा अनियमित लेकिन इसे शून्य नहीं होना चाहिए। किसी बच्चे के माता-पिता का विवाह शून्य होने पर पिता पर उस शिशु का पितृत्व आरोपित नहीं किया जा सकता। किसी बच्चे का पितृत्व सुस्थापित हो जाने पर उसे धर्मज संतान मान लिया जाता है।

औरसता :-

मुसम्मात साहेबजादी बेगम बनाम **मिर्जा हिम्मत बहादुर (1869) 12 SWP 512** इस वाद में औरसता की परिभाषा दी गई है।

किसी व्यक्ति की औरसता एक ऐसी प्रास्थिति है जो उसके पितृत्व के स्थापित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

संतान का पितृत्व सुस्थापित हो जाने पर उसकी औरसता भी सुस्थापित हो जाती है।

प्रिवी कौंसिल ने **हबीबुर्रहमान** बनाम **अलताफ अली चौधरी (1912) 48 आई० ए० 114** के मामले में निम्न अवलोकन किया।

"मुस्लिम विधि के अनुसार लड़के के धर्मज होने के लिए पुरूष और उसकी पत्नी या किसी पुरूष और उसकी दासी का बच्चा होना आवश्यक है। कोई और संतान व्याभिचार (जिना) की संतान होती है और धर्मज नहीं हो सकती। 'पत्नी' शब्द आवश्यक रूप से विवाह का लक्षण होता है। मगर चूँकि विवाह बिना रस्म के भी हो सकता है, इसलिए किसी विशेष दृष्टांत में विवाह का अस्तित्व एक खुला प्रश्न होता है। प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हो सकता है परंतु यदि यह न हो तो परोक्ष (indirect) प्रमाण भी काफी हो सकता है। परोक्ष प्रमाण की एक रीति

लड़के की पैतृत्व की अभिस्वीकृति (acknowledgment) है"।

इस्लामी विधि के अंतर्गत औरसता की उपधारणा

नाजायज बच्चा सुन्नी विधि में अपनी माता से अधिकार पाता है और माता ही उसकी नैसर्गिक संरक्षक मानी जाती है। किसी भी मुस्लिम विचारधारा में नाजायज बच्चे से पिता का कोई संबंध मान्य नहीं होता और वह पिता से कुछ भी अधिकार नहीं पाता।

मुस्लिम विधि के अंतर्गत औरसता की उपधारणा (presumption of legitimacy) निम्नलिखित नियमों के आधार पर की जाती हैं -

(1) पिता यदि पितृत्व की अभिस्वीकृति न करे तो विवाह होने के छः मास के अंदर उत्पन्न होने वाला शिशु अवैध (illegitimate) संतान माना जाता है।

(2) विवाह सम्पन्न होने के छः माह बाद पैदा हुआ शिशु वैध संतान माना जाता है बशर्ते पति उसे अस्वीकार (disclaim) न कर दें।

(3) विवाह-विच्छेद हो जाने के पश्चात् उत्पन्न हुआ शिशु वैध संतान माना जायगा; यदि वह -

(i) विवाह-विच्छेद से 10 माह के अंदर उत्पन्न हो (शिया-विधि);

(ii) विवाह-विच्छेद से 2 वर्ष के अंदर उत्पन्न हो (हनफी-विधि);

(iii) विवाह-विच्छेद से 4 वर्ष के अंदर हो (शफी एवं मलिकी विधि)।

औरसता की वर्तमान विधि और इस्लामी विधि

भारत में औरसता का निर्धारण भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अंतर्गत होता है। यह अधिनियम मुस्लिम सहित भारत में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के समान रूप से लागू होता है।

धारा 112 भारतीय साक्ष्य अधिनियम

धारा के आवश्यक तत्व निम्न हैं -

(1) किसी बच्चे के पितृत्व की उपधारणा उस व्यक्ति में जो कि उसके माता का पति अभिकथित हैं, में मानी जायेगी यदि -

(i) बच्चे की माँ और उस व्यक्ति का विवाह वैध हो उस दौरान बच्चे का जन्म हुआ होना चाहिए या

(ii) बच्चे का जन्म उसकी माता और उस व्यक्ति के विवाह विच्छेद के 280 दिनों के भीतर हुआ होना चाहिए बशर्ते कि इस काल में माता ने पुर्नविवाह ना कर लिया हो।

(iii) उपरोक्त दोनों शर्तो पूरी होने पर वह व्यक्ति सारभूत साक्ष्य के रूप में बच्चे का पिता माना जायेगा, जब तक कि उस व्यक्ति ने न्यायालय में यह साबित न कर दिया हो कि जिस समय बच्चे की माता गर्भवती हुई पक्षकारों में परस्पर पहुँच नहीं थी।

दुख्तर जहाँ बनाम मोहम्मद फारूख (1987) 1, SCC 624

इस वाद में यह कहा गया था कि धारा-112 IEA मुस्लिम विधि के साथ-साथ सभी वैयक्तिक विधियों पर लागू होती हैं और औरसता के संबंध में वहीं विधि मान्य है।

इस्लामी विधि तथा वर्तमान विधि में अंतर -

भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उक्तर्युक्त नियम मुस्लिम विधि की औरसता के नियमों से भिन्न हैं। औरसता की उपधारणा के लिए साक्ष्य अधिनियम तथा मुस्लिम विधि के नियमों में निम्न अंतर है -

(1) मुस्लिम विधि में औरस संतान का माता-पिता के वैध विवाह के दौरान पैदा होना ही पर्याप्त नहीं है, उसका इस विवाह के दौरान गर्भ में आना भी आवश्यक है जबकि साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत विवाह सम्पन्न होने के एक दिन बाद उत्पन्न हुई संतान भी औरस मानी जाती है।

(2) मुस्लिम विधि में विवाह-विच्छेद से दो (या अधिक) वर्षो बाद उत्पन्न संतान भी औरस मानी जा सकती हैं परंतु साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत संतान की औरसता के लिए उसे विवाह-विच्छेद से 280 दिनों के अंदर पैदा हो जाना चाहिए।

(3) मुस्लिम विधि में अनियमित (फासिद) विवाह की संतान भी औरस मानी जाती है जबकि साक्ष्य अधिनियम में संतान की औरसता के लिए उसक माता-पिता का विवाह पूर्णयात विधिमान्य (valid) होना आवश्यक हैं।

यद्यपि औरसता के विषय में मुस्लिम विधि तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 में स्पष्ट असमानता है तथापि मुस्लिम विधि के अंतर्गत सम्पन्न हुये विवाह से उत्पन्न संतान की औरसता का निर्धारण भारतीय अदालतों ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 112 के अंतर्गत किया है तथा इस विषय में मुस्लिम विधि लागू नहीं की है। प्रिवी कौंसिल ने मुस्लिम-विवाह की संतान की औरसता निर्धारित करने के लिए भी भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 को ही लागू किया है न कि मुस्लिम विधि को।

पितृत्व की अभिस्वीकृति (इकरार-ए-नसब)

सामान्य तौर पर अभिस्वीकृति किसी संतान का पिता होना स्वीकृति करना है। यदि विवाह पक्षकारों में संशयात्मक हो और इस कारण शिशु की औरसता संदिग्ध हो जाए तो व्यक्ति उस संतान की अभिस्वीकृति करके उसे अपना पुत्र होना स्वीकार कर सकता है।

अर्थात् यदि शिशु की औरसता ना तो पूर्णतया सिद्ध हो ना पूर्णतया आसिद्ध हो तो अभिस्वीकृति की जा सकती है।

मुहम्मद अल्लाहदाद बनाम मुहम्मद इस्माइल (1888) 10 इला० 289 के मामलें में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों ने इस संबंध में यह अभिनिर्धारित किया कि अभिसस्वीकृति तथा धर्मजता की मुस्लिम विधि का उन मामलों पर कोई अंतर नहीं पड़ता जहाँ बच्चे की अधर्मजता प्रमाणित तथा स्थापित कर दी गई हो। यह उसके माता-पिता के बीच विधिक संबंधों का असंभव होने से या शादी की वैधता अप्रमाणित होने से स्थापित हो सकती है। यह सिद्धांत वैधता की अनिश्चितता पर लागू होता है तथा ऐसे मामलों में अभिस्वीकृति का प्रभाव होता है। परंतु यह प्रभाव अभिस्वीकृत बच्चे के माता-पिता के बीच विधिक संबंधों की उपधारणा से होता है। यदि एक बार किसीं अभिस्वीकृति को साबित कर दिया जाय तो विवाह को अप्रमाणित करने का भार उन लोगों पर चला जाता है जो उस तथ्य का प्रतिवाद करते हैं और उसके माता-पिता के विवाह से इंकार करते हैं। पितृत्व की अभिस्वीकृति से ऐसी उपधारणा का उद्भव हो जाता है जिसका खण्डन किया जा सकता है।

अभिव्यक्त एवं विवक्षित अभिस्वीकृति यदि किसी व्यक्ति ने अपने को किसी संतान का पिता होने की अभिस्वीकृति एक स्पष्ट घोषणा द्वारा की हो तो अभिस्वीकृति अभिव्यक्त (express ackmowledgement) मानी जाती है। अभिस्वीकृति स्पष्ट घोषणा के रूप में न होकर मात्र व्यवहार द्वारा भी हो सकती है। कोई व्यक्ति यदि किसी शिशु को अपनी संतान की भांति रखता हो तथा उससे प्रत्यक्षत: ठीक अपनी औरस संतान की भांति ही व्यवहार करता रहा हो तो उसके इस आचरण से संतान की अभिस्वीकृति अनुमानित की जा सकती है। इसे विवक्षित अभिस्वीकृति (implied acknowledgement) कहते हैं।

मो० अमीन बनाम **वकील अहमद** AIR (1952) सु० को० 358

इस वाद में कहा गया था कि अभिस्वीकृति अभिव्यक्त या विवाक्षित हो सकती है।

विधिमान्य अभिस्वीकृति की आवश्यकताएँ

किसी विधिमान्य अभिस्वीकृति में निम्नलिखित शर्तों का पालन होना अनिवार्य है :-

(1) अभिस्वीकृति किए जाने वाले व्यक्ति को अभिस्वीकृति करने वाले व्यक्ति से वैध संबंध होना चाहिए। अर्थात् वह जिना की संतान नहीं होना चाहिए।

(2) अभिस्वीकृति करने वाला मुस्लिम स्वस्थचित्त, व्यस्क एवं संविदा करने के योग्य होना चाहिए।

(3) शिशु के पिता के बारे में अनिश्चितता होनी चाहिए अर्थात् उसका पितृत्व अज्ञात होना चाहिए।

(4) बच्चे की माता के साथ अभिस्वीकृतिकर्ता के विवाह की सभी शर्तें पूर्ण होनी चाहिए।

(5) दोनों में युक्तियुक्त आयु का अंतर होना चाहिए। बेली के अनुसार यह अंतर कम से कम साढ़े बारह

वर्ष का होना चाहिए।

(6) संतान द्वारा यौवनावस्था प्राप्त कर लेने पर अभिस्वीकृति का अनुमोदन होना चाहिए। वह चाहे तो इस अभिस्वीकृति को निराकृत कर सकता है।

पितृत्व की अभिस्वीकृति अप्रतिसंहरणीय है

दयौवनावस्था के विकल्प का प्रयोग न किये जाने पर अभिस्वीकृत-संतान द्वारा अभिस्वीकृति का अनुमोदन माना जाता है। एक बार अभिस्वीकृति का अनुमोदन (approval) कर देने पर वह इसे पुनः निराकृत नहीं कर सकता है और यह अप्रतिसंहरणीय (irrevocable) हो जाता है। इसी प्रकार, अभिस्वीकृति प्रदान करने वाला पिता (acknowledger) भी पुनः इसे निरस्त नहीं कर सकता है। पूर्णरूप से विधिमान्य अभिस्वीकृति अप्रतिसंहरणीय है।

अभिस्वीकृति के विधिक प्रभाव

पितृत्व की अभिस्वीकृति के विधिक प्रभाव निम्नलिखित हैं -

(1) अभिस्वीकृत संतान अभिस्वीकृतिकर्त्ता की औरस संतान बन जाता है तथा उसका पितृत्व भी ससुस्थापित हो जाता है।

(2) किसी औरस संतान की भाँति ही अभिस्वीकृत संतान माता, पिता (अभिस्वीकृतकर्त्ता) तथा अन्य सम्बन्धियों की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बन जाता है।

(3) किसी संतान के पितृत्व की अभिस्वीकृति से उस संतान की माँ तथा अभिस्वीकृतिकर्त्ता के बीच वैध-विवाह भी सुस्थापित हो जाता है। अभिस्वीकृत संतान की माँ अभिस्वीकृतिकर्त्ता की पत्नी की हैसियत (status) प्राप्त कर लेती है तथा उसकी तथा उस संतान की सम्पत्तियों की उत्तराधिकारिणी भी बन जाती है।

मुस्लिम विधि में दत्तक ग्रहण

मुस्लिम विधि में दत्तक ग्रहण की संकल्पना अमान्य है पर यदि प्रथागत विधि मे ऐसा अधिकार हो तो वह मान्य होगा। जैसे - अवध स्टेट एक्ट 1869 में जमींदारी को यह अधिकार दिया गया था, इत्यादि। इस संबंध में शरीयत एक्ट की धारा-3 महत्वपूर्ण हैं जिसक अनुसार यदि व्यक्ति ने दत्तक ग्रहण वसीयत इत्यादि के संबंध में यह स्पष्ट घोषणा नहीं की है कि उक्त विषयों के संदर्भ में वह मुस्लिम विधि से शासित होगा तो उस पर प्रथागत विधि ही लागू होगी।

दत्तकग्रहण	अभिस्वीकृति
1. दत्तक-ग्रहण में दिया गया बच्चा दूसरे व्यक्ति की संतान होता है।	1. यह वास्तविक पितृत्व पर आधारित है। यदि यह तथ्य प्रमाणित हो गया हो कि बच्चा दूसरे व्यक्ति की संतान है तो अभिस्वीकृति असंभव है।
2. जब बच्चे का पिता ज्ञात हो और वह दत्तक लेने वाले माँ बाप को बच्चे का दान कर दे तभी यह संभव होता है।	2. जब बच्चे के पितृत्व का पता न हो, केवल तभी यह संभव है और साथ ही यह प्रमाणित हो कि उसका पितृत्व किसी दूसरे में निहित नहीं है।
3. जन्म के वंश को त्याग देने पर दत्तक लेने वाले व्यक्ति के वंश में पितृत्व स्थापित हो जाता है।	3. अभिस्वीकृति में यह स्थानांतरण संभव नहीं है।
4. आधुनिक हिन्दू विधि के अंतर्गत पुत्र अथवा पुत्री को दत्तक (गोद) लिया जा सकता है।	4. पुरूष और स्त्री दोनों अभिस्वीकृत हो सकते हैं।
5. प्राचीन हिन्दू विधि के अंतर्गत दत्तक-ग्रहण का उद्देश्य मुख्य रूप से धार्मिक हुआ करता था। परंतु आधुनिक हिन्दू विधि के अंतर्गत दत्तक-ग्रहण का उद्देश्य धार्मिक होना आवश्यक नहीं है।	5. कोई धार्मिक और आध्यात्मिक उद्देश्य नहीं होता।

अध्याय 9

संरक्षकता

सार परिचय

- प्रस्तावना
- वयस्कता की आयु
- संरक्षकता के प्रकार
  - (i) विलायत-ए-जबर/निकाह (विवाह)
  - (ii) विलायत-ए-नफ्स/हिजानत (शरीर)
  - (iii) विलायत-ए-माल (सम्पत्ति)
- संरक्षकों का वर्गीकरण
  - (i) नैसर्गिक अर्थात् विधिक संरक्षक
  - (ii) वसीयती संरक्षक
  - (iii) न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक
  - (iv) तथ्यतः संरक्षक

प्रस्तावना

कोई भी अवयस्क अपने व्यक्तित्व तथा अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा कर पाने में समर्थ नहीं होता, इसलिए उसे तथा उसकी सम्पत्ति को किसी वयस्क व्यक्ति के संरक्षण में रखने की व्यवस्था की गई है। वह व्यक्ति जिसे कानून के अंतर्गत किसी अवयस्क के शरीर अथवा सम्पत्ति अथवा दोनों की सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है, उस अवयस्क का संरक्षक कहलाता है।

मुस्लिम विधि में संरक्षकता से तात्पर्य अवयस्क या विकृतचित्त के शरीर या सम्पत्ति या दोनों या विवाह का प्रबंधन, संरक्षण एवं उचित देखभाल करना है।

अब्दुरहीम के अनुसार :- संरक्षकता ऐसा अधिकार है जो किसी अन्य जो कि अपनी मानसिक या शारीरिक किसी त्रुटि के कारण अपने कार्यों का प्रबंधन करने में अक्षम है से संबंधित है जैसे :- अवयस्क, जड़ एवं पागल और यह उस व्यक्ति के शरीर की अभिरक्षा और उसकी सम्पत्ति के प्रशासन तक विस्तृत है।

वयस्कता की आयु -

(1) मुस्लिम विधि की विवाह, मेहर, एवं विवाह-विच्छेद के लिए वयस्कता की आयु 15 वर्ष होगी। अन्य मामलों में वयस्कता की आयु 18 वर्ष होगी (भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 के अनुसार)

(2) यदि अवयस्क की सम्पत्ति कोर्ट ऑफ वार्डस एक्ट के तहत प्रबंधित है तो वयस्कता की आयु 21 वर्ष होगी।

- वाद दायर करने के लिए आयु 18 वर्ष होगी (आदेश 32 दीवानी प्रक्रिया संहिता)

संरक्षकता के प्रकार -

(1) विलायत-ए-जबर/निकाह (विवाह)

(2) विलायत-ए-नफ्स/हिजानत (शरीर)

(3) विलायत-ए-माल (सम्पत्ति)

(1) विलायत-ए-जबर/निकाह -

मुस्लिम अवयस्क या विकृत्तचित्त का विवाह उसके संरक्षक द्वारा किया जा सकता है इस संरक्षक को जबर कहते हैं। शिया विधि के अनुसार जबर पिता और उसके बाद पितामह होते हैं। सुन्नी विधि में निम्न व्यक्तियों को जबर माना जाता है।

(1) पिता
(2) पितामह
(3) भाई या पितृ कुल के अन्य सदस्य जो गोत्रज क्रम मे हो
(4) माता
(5) मातृ कुल के सदस्य जो कि प्रतिसिद्ध नातेदारी में आते हैं।
(6) काजी अर्थात् न्यायालय

शिया और सुन्नी विधि के अंतर्गत यदि उपरोक्त वर्णित नातेदार ना हों तो विवाह न्यायालय द्वारा करवाया जा सकता है। उपरोक्त वर्णित वरीयताक्रम का कड़ाई से पालन होना चाहिए अन्यथा विवाह शून्य माना जाएगा। विवाह के संबंध मे अवयस्क को ख्यार-उल-बुलुग का अधिकार रहता है। जबर के धर्म-परिवर्तन करने से उसका यह अधिकार छीन जाता है। पर जाति निर्योग्यता उन्मूलन अधिनियम के तहत धर्म परिवर्तन के बाद भी ज़बर ऐसा कर सकता है। मुस्लिम विवाह के संदर्भ में ज़बर की संकल्पना को बाल विवाह निरोध अधिनियम 1929 एवं 1978 के पारित होने के पश्चात् अब अप्रासंगिक हो गई है क्योंकि इस अधिनियम के अनुसार विवाह की न्यूनतम आयु पुरूष के लिए 21 वर्ष एवं स्त्री के लिए 18 वर्ष तय की गई है। इसका उल्लंघन करने पर विवाह तो वैध रहता है परंतु विवाह करवाने वाले पक्षकारों को तीन माह की कैद या एक हजार रूपये का जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जा सकता है।

(2) <u>विलायत-ए-नफ्स बनाम हिजानत (शरीर)</u>

अवयस्क के शरीर की संरक्षकता से तात्पर्य सामान्यतः अवयस्क के सम्पूर्ण शरीर पर निगरानी है। जिससे अवयस्क के भरण-पोषण तथा यथोचित देखरेख सहित इससे संबंधित अन्य सभी कल्याणकारी कार्य सम्मिलित हैं। इसको विलायत-ए-नफ्स कहते हैं। अवयस्क के शरीर की संरक्षकता तथा अवयस्क की अभिरक्षा (custody) को प्रायः सामानार्थी मान लिया जाता है परंतु मुस्लिम-विधि में ये दोनों अलग-अलग नियमों द्वारा विनियमित होते हैं। शरीर की संरक्षकता के अंतर्गत संरक्षक को अवयस्कता की पूरी अवधि तक अवयस्क पर नियंत्रण रखने का अधिकार रहता है जब कि अभिरक्षा (हिजानत) का अर्थ है किसी अवयस्क को उसके शैशव-काल तक अपने पास रखना। हिजायत का अधिकार सभी मुस्लिम सम्प्रदायों में माता को दिया गया है।

मुस्लिम विधि के तहत शरीर की संरक्षकता संबंधित आयु

सुन्नी विधि के तहत पुत्र -7 वर्ष, पुत्री-यौवनावस्था तक (15 वर्ष)।
शफी विधि में पुत्री का हिजानत उसके विवाह होने तक उसकी माँ में रहता है।
शिया विधि में पुत्र - 2 वर्ष और पुत्री - 7 वर्ष

हिजानत का अधिकार माता के पास तब भी रहता है जबकि उसे तलाक दे दिया गया हो। बशर्ते उसने पुनर्विवाह न किया हो। माता के धर्म-परिवर्तन करने या पति से बिना युक्ति-युक्त कारणों से अलग रहने पर भी हिजानत का अधिकार माता में निहित रहता है। निर्धनता से भी हिजानत का अधिकार खत्म नहीं होता।

माँ के हिजानत के अधिकार की समाप्ति - निम्न स्थितियों में हिजानत के अधिकार की समाप्ति मानी जाती है :-

(i) यदि वह जारता की स्थिति में रह रही हो।

(ii) यदि उसने ऐसे व्यक्ति से पुनर्विवाह कर लिया हो जो उसकी प्रतिषिद्ध नातेदारी में आता है। तथा इस संबंध में पुनर्विवाहित पति को बच्चे के साथ प्रतिषिद्ध नातेदारी में न होना चाहिए।

(iii) यदि माता अनैतिक जीवन व्यतीत करती है।

(iv) यदि माता समयाभाव के कारण या किसी अन्य कारण से बच्चे की उचित देखभाल नहीं करती।

(v) यदि माता, पिता से इतनी दूर रहती हैं कि बच्चे तक पिता की पहुँच सामान्य अनुक्रम मे नहीं हो सकती।

(vi) माँ के न होने पर हिजानत का अधिकार -

सुन्नी विधि के अनुसार - निम्न व्यक्तियों में हिजायत का अधिकार निहित होता है -

(1) माँ की माँ
(2) पिता की माँ
(3) सगी बहन
(4) सहोदर बहन
(5) सगी बहन की लड़की
(6) सहोदर बहन की लड़की
(7) मौसी
(8) बुआ

शिया विधि के अनुसार - माँ के न होने पर हिजानत का अधिकार निम्न व्यक्तियों में निहित होता है -

(1) सर्वप्रथम यह पिता में निहित होती है।

(2) पिता के न रहने पर या उसके अयोग्य हो जाने पर यह निम्न व्यक्तियों में निहित होगी :-

पितामह के न रहने पर उत्तराधिकार के क्रम में दाय प्राप्त करने वाले पितृकुल के अन्य रिश्तेदार।

(3) यदि उपरवर्णित व्यक्तियों में से कोई भी जीवित न हो या हिजानत के अयोग्य हो तो न्यायालय गार्जियन एण्ड वार्डस एक्ट 1890 की धारा 19 (ब) के तहत किसी भी योग्य व्यक्ति को अभिरक्षा का अधिकार सौंप सकती है।

गौहर बेगम बनाम **नजमा बेगम AIR (1960) SC - 93** उक्त वाद में यह कह गया था कि अवैध संतान की अभिरक्षा का अधिकार सिर्फ माँ का होता है। तथा उसके बाद मातृपक्ष के रिश्तेदारों का। यौवनावस्था से पूर्व पत्नी की अभिरक्षा माँ में तथा यौवनावस्था के बाद पति में निहित होती हैं।

(3) विलायत-ए-माल (सम्पत्ति) :- इस संबंध में संरक्षकों के निम्न प्रकार हैं :-

(i) नैसर्गिक/विधिक संरक्षक
(ii) वसीयती संरक्षक
(iii) न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक
(iv) वस्तुत: संरक्षक/तथ्यत: संरक्षक

(i) नैसर्गिक/विधिक संरक्षक -

अत: अवयस्क के सम्पत्ति की संरक्षकता का अधिक नैसर्गिक-संरक्षक होने के कारण मुख्यत: पिता का विधिक अधिकार माना जाता है। पिता वसीयत द्वारा अपने अवयस्क की सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए किसी व्यक्ति को निष्पादक (executor) भी नियुक्त कर सकता है। पिता की मृत्यु हो जाने पर यही निष्पादक अवयस्क की सम्पत्ति का विधिक संरक्षक बन जाता है। पिता तथा इसके द्वारा नियुक्त किसी निष्पादक के न रहने पर अथवा इनके अयोग्य होने पर सम्पत्ति का संरक्षक अवयस्क का पितामह होता है। पिता की भाँति पितामह भी वसीयत द्वारा निष्पादक की नियुक्ति कर सकता है जो पितामह के मरणोपरांत अवयस्क की सम्पत्ति के विधिक-संरक्षक के रूप में उसकी सुरक्षा का अधिकारी होता है।

इसमें निम्न व्यक्ति आते हैं -

(क) पिता,
(ख) पिता द्वारा नियुक्त निष्पादक,
(ग) पितामह,
(घ) पितामह द्वारा नियुक्त निष्पादक,

महबूब साहेब बनाम सैयद इस्माइल **AIR (1995) S.C. 1205** माँ को अवयस्क की सम्पत्ति का संरक्षक नहीं माना जा सकता।

नैसर्गिक संरक्षक की शक्तियाँ :-

(1) विक्रय - नैसर्गिक संरक्षक निम्न स्थितियों में अवयस्क की सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है।

(क) ऋणों का भुगतान
(ख) जब सम्पत्ति का दुगना दाम मिल रहा हो।

(ग) जब विक्रय करना अवयस्क के भरण-पोषण के लिए आवश्यक है।

(घ) जब सम्पत्ति की आय उसके व्यय से कम हो।

(ङ) यदि सम्पत्ति क्षयशील हो।

(च) जब सम्पत्ति अवैध कब्जे में हो और उसकी पुनः प्राप्ति असंभव हो।

(2) बंधक :- नैसर्गिक संरक्षक सम्पत्ति का बंधक यदि वह अवयस्क के हित में हो या सम्पत्ति के लाभार्थ हो कर सकता है।

(3) पट्टा :- नैसर्गिक संरक्षक सम्पत्ति का पट्टा निम्न दो परिस्थितियों में कर सकता है -

(i) जब अवयस्क के हित में हो

(ii) या सम्पत्ति के लाभार्थ हो।

(4) संविदा करने का अधिकार :- संरक्षक अवयस्क की ओर से संविदा करने के लिए सक्षम होता है और अगर संविदा अवयस्क के लाभ के लिए हो तो अवयस्क को आबद्ध किया जा सकता है।

(5) अवयस्क की ओर से संरक्षक पूर्वाक्रयाधिकार का दावा कर सकता है।

(6) संरक्षक द्वारा किया गया अंतरण शून्यकरणीय माना जाता है यदि वह मुस्लिम विधि के नियमों के विरूद्ध है लेकिन यदि ऐसा अंतरण मुस्लिम विधि के नियमों के अनुसार हुआ हो तो वह अवयस्क के ऊपर बाध्यकारी होगा।

ऐसे अंतरण से प्रभावित अन्य लोगों को भी अंतरण को निराकृत कराने का अधिकार रहता है।

(7) संरक्षक को अवयस्क की चल सम्पत्ति अंरित करने का विशेषाधिकार प्राप्त है।

(8) विधिक संरक्षक अवयस्क की ओर से उसमें लाभार्थ लिये गये ऋण की अभिस्वीकृति कर सकता है।

(ii) वसीयती संरक्षक :- वह संरक्षक जो पिता या पितामह के वसीयत द्वारा नियुक्त हो वसीयती संरक्षक होता है और इसको नैसर्गिक संरक्षक वाली सारी शक्तियाँ उपलब्ध है।

(iii) न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक :- (क) यदि अवयस्क के नैसर्गिक या वसीयती संरक्षक ना हो तो न्यायालय गार्जियन एण्ड वार्डस एक्ट-के तहत संरक्षक नियुक्त कर सकता है। इस संबंध में उक्त एक्ट की धाराएँ 30, 31, 33 एवं 229 इत्यादि धाराएँ सुसंगत है। यह संरक्षक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना अचल सम्पत्ति का किसी भी प्रकार का अंतरण नहीं कर सकता। अत्यधिक आवश्यकता या व्यक्त प्रलाभ होने पर न्यायालय वैसी अनुमति दे सकता है।

(ख) ऐसा संरक्षक सम्पत्ति का पट्टा अधिकतम 5 वर्ष या वयस्क होने के 1 वर्ष पश्चात् तक की समयावधि तक इनमें से जो भी ज्यादा हो कर सकता है। इससे अधिक समय तक का पट्टा कैसे के लिए न्यायालय की पूर्व अनुमति आवश्यक है।

(ग) गार्जियन एण्ड वार्डस एक्ट की धारा 27 के अनुसार :- संरक्षक चल सम्पत्ति का विक्रय बिना न्यायालय की अनुमति के कर सकता है परंतु इस संबंध मं संरक्षक से उतनी सावधानी आवश्यक होगी जितनी एक साधारण प्रज्ञा को व्यक्ति से उसकी स्वयं की सम्पत्ति के संबंध में आवश्यक हैं।

(iv) वस्तुतः संरक्षक :- (क) वह संरक्षक जो न तो नैसर्गिक न ही वसीयती, न ही न्यायालय द्वारा नियुक्त होता है तथा अवयस्क के सम्पत्ति या शरीर या दोनों के लिए कार्य करता है वह वस्तुतः संरक्षक होता है।

इमामबंदी बनाम मुस्तदी **AIR (1918) PC-11**

(ख) वस्तुतः संरक्षक को अचल सम्पत्ति के अंतरण के संबंध मे कोई अधिकार नहीं होते और यदि उसके द्वारा ऐसा अंतरण कर दिया जाये तो ऐसा अंतरण शून्य होता है।

वस्तुतः संरक्षक चल सम्पत्ति को विक्रय कर सकता है या गिरवी रख सकता है यदि अवयस्क के भोजन, वस्त्र या आवास के लिए वैसा करना आवश्यक हो। वस्तुतः संरक्षक अवयस्क की तरफ से पारिवारिक समझौता भी नहीं कर सकता। वस्तुतः संरक्षक इस संबंध में सम्पत्ति का बंटवारा भी नहीं कर सकता चाहे वह अवयस्क के हित में ही क्यों न हो। चूँकि वस्तुतः संरक्षक द्वारा किया गया अंतरण शून्य होता है तो वयस्कता के पश्चात् अवयस्क द्वारा इसे अनुमोदित नहीं किया जा सकता और यदि ऐसा किया जाता है तो वह अविधिक होगा।

अध्याय 10

हिबा (दान)

सार परिचय

- प्रस्तावना
- परिभाषा
- हिबा की मुख्य विशेषताएँ
- हिबा के आवश्यक तत्व
  - घोषणा
  - स्वीकृति
  - कब्जे का परिदान
- रजिस्ट्री न तो अनिवार्य है न पर्याप्त
- हिबा की विषय-वस्तु
- मुशा का दान
- सशर्त एवं समाश्रित दान
- आजीवन हित का दान
- हिबा का प्रतिसंहरण
- हिबा-बिल-एवज
- हिबा-ब-शर्तुल-एवज
- सदका
- अरियत

प्रस्तावना :- दान का अर्थ है दो जीवित व्यक्तियों के बीच प्रतिफल रहित स्वामित्व अर्थात् सम्पत्ति का ऐसा अंतरण जिसमें एक जीवित व्यक्ति किसी दूसरे जीवित व्यक्ति के पक्ष में अपनी सम्पत्ति का स्वामित्व बिना किसी प्रतिफल के अंतरित कर दे, दान कहलाता है। जो व्यक्ति दान करता है उसके दानकर्ता (donor) और जिस व्यक्ति के पक्ष में दान किया जाये उसे दानग्रहीता कहते हैं।

मुस्लिम विधि की शब्दावली में दान को हिबा कहा जाता है। अत: दानकर्ता यदि मुस्लिम है तो उसके द्वारा किया गया दान 'हिबा' कहलायेगा। हिबा मुस्लिम विधि द्वारा विनियमित होता है सम्पत्ति अंतरण अधिनियम 1882 द्वारा नहीं।

हिबा की परिभाषा :-

हेदाया :- हिबा किसी वर्तमान सम्पत्ति के स्वामित्व का प्रतिफल रहित एवं बिना शर्त के किया गया तुरंत प्रभावी होने वला अंतरण है।

अर्ब्दु रहीम :- विधिशास्त्रियों के दृष्टिकोण से हिबा ऐसी संविदा है जिसके द्वारा दाता अपनी सम्पत्ति को अदाता को अंतरित करता है, जो उसकी ओर से स्वीकार की जाती है। मुल्ला ने हिबा की परिभाषा देते हुये कहा है कि हिबा या दान तुरंत प्रभावी होने वाला सम्पत्ति का एक ऐसा अंतरण है जो बिना किसी विनिमय (exchange) के एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के पक्ष में किया जाय तथा (इस) दूसरे व्यक्ति द्वारा इसे स्वीकार कर लिया जाय।

हिबा की मुख्य विशेषताएँ :-

हिबा की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :-

(1) दान को सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 122 में परिभाषित किया गया है जो कि सभी विधियों पर सामान्य रूप से लागू होती है।

परंतु धारा - 129 के अनुसार अध्याय-7 (धारा 122, धारा 129 TPA) की कोई बात हिबा पर लागू नहीं होगी।

(2) हिबा को मुस्लिम द्वारा ही किया गया होना चाहिए अर्थात् दाता को मुस्लिम ही होना चाहिए।

(3) यह अधिकार कि अदालतें दान के संबंध में मुस्लिम विधि ही लागू करेगी। शरीयत एक्ट 1937 द्वारा भी प्राप्त है।

बीबी मनीरन बनाम मोहम्मद इसहाक 1963 पटना 229 उक्त वाद में यह कहा गया था कि हिबा पर मुस्लिम विधि लागू करना संवैधानिक है, चूँकि हिबा का आधार धर्म है (इस्लाम) और यह औपचारिक दान के नियमों से भिन्न है अतः हिबा तथा दान का विभेद युक्तियुक्त वर्गीकरण पर आधारित है।

(4) हिबा परस्पर दो जीवित व्यक्तियों के द्वारा किया गया स्वामित्व के अपने अधिकारों का अंतरण हैं।

(5) हिबा पक्षकारों के कार्यों द्वारा होता है न कि विधि के प्रवर्तन द्वारा।

(6) हिबा में स्वामित्व का अंतरण होता है केवल हित या कब्जे का नहीं।

(7) हिबा वर्तमान सम्पत्ति का ही हो सकता है।

(8) हिबा तुरंत प्रभावी होने वाला अंतरण है।

वैध हिबा की आवश्यक शर्तें :- ये शर्तें निम्न हैं -

(1) हिबा की घोषणा

(2) हिबा की स्वीकृति

(3) कब्जे का परिदान

(1) हिबा की घोषणा :-

(i) यह मौखिक या लिखित हो सकती है और लिखित को हिबानामा कहते हैं।

(ii) हिबा कर्ता द्वारा हिबाग्रहीता के पक्ष में सम्पत्ति को अंतरण करने की बिना प्रतिफल मन्तव्य की अभिव्यक्ति को हिबा की घोषणा कहते हैं।

(iii) हुसैना बाई बनाम जोहरा बाई **AIR (1960) म० प्र० 60** उक्त वाद में कहा गया था कि यदि हिबा कर्ता यह सिद्ध कर दे कि हिबा के वक्त उसे हिबा के विधिक परिणामों की जानकारी नहीं थी तो हिबा को शून्य घोषित कराया जा सकता है।

(iv) हिबा की घोषणा सदाशयपूर्ण होना चाहिए अर्थात् हिबा का उद्देश्य अविधिक नहीं होना चाहिए।

(v) हिबा की वैधता के लिए इसका रजिस्टर्ड होना आवश्यक नहीं है।

(vi) **घोषणा** - स्वतंत्रतापूर्ण होनी चाहिए अर्थात् घोषणा के समय घोषणा के समस्त विधिक परिणामों की जानकारी होनी चाहिए।

(vii) हिबाकर्ता को सक्षम होना चाहिए अर्थात्

(क) उसे मुस्लिम होना चाहिए।

(ख) उसे स्वस्थचित्त का होना चाहिए परंतु यदि वह कुछ अंतरालों के लिए ही विकृतचित्त होता है तो जिन अंतरालों में वह स्वस्थचित्त हो हिबा कर सकता है।

(ग) दानकर्ता को वयस्क होना चाहिए अर्थात् 18 वर्ष का होना चाहिए परंतु यदि अवयस्क कोर्ट ऑफ वार्डस के संरक्षण में हो तो उसकी आयु 21 वर्ष मानी जायेगी।

(घ) हिबा कर्ता को या तो हिबा की विषय-वस्तु का स्वामी होना चाहिए या उसे उस विषयवस्तु के अंतरण का अधिकार होना चाहिए।

(2) हिबा की स्वीकृति - इस संबंध में नियम निम्नलिखित है -

(क) हिबा की वैधता के लिए ग्रहीता के धर्म, लिंग, आयु या मानसिक स्थिति इत्यादि का कोई महत्व नहीं है अर्थात् हिबा गैर-मुस्लिम, अवयस्क, पागल इत्यादि को भी किया जा सकता है।

(ख) हिबाग्रहीता को घोषणा के समय अस्तित्व में होना चाहिए और सम्पत्ति धारण करने के योग्य होना चाहिए।

(ग) हिबा विधिक व्यक्तियों को भी किया जा सकता है जैसे - मस्जिद या स्कूल और इस संबंध में स्वीकृति प्रबंधक या सक्षम अधिकारी के द्वारा की जा सकती है।

(घ) गर्भस्थ शिशु को किया गया हिबा मान्य होता है पर उसे घोषणा के 6 माह के अंदर जन्म ले लेना चाहिए। यदि घोषणा के बाद उसकी मृत्यु हो जाती है (स्वीकृत करने से पहले) तो हिबा शून्य माना जायेगा।

घोषणा के समय यदि ग्रहिता गर्भ में ही न हो तो भी हिबा शून्य माना जायेगा।

(ङ) हिबा की स्वीकृति अवयस्क की माता द्वारा नहीं की जा सकती।

(च) अवयस्क या विकृतचित्त के लिए हिबा की स्वीकृति उसके संरक्षक द्वारा की जा सकती है पर यह निम्न वरीयताक्रम में होगी -

(i) पिता (ii) पिता द्वारा नियुक्त निष्पादक (iii) पितामह द्वारा नियुक्त निष्पादक

(छ) हिबा दो या दो से अधिक व्यक्तियों को किया जा सकता है परंतु -

(i) दानग्रहीता को निश्चित होना चाहिए।

(ii) उसके अंश निश्चित होने चाहिए।

(iii) हिबा के संबंध में उनकी स्वीकृति अलग-अलग होनी चाहिए (अपने-अपने अंशों के संबंध में)

(ज) हिबा विवाहित स्त्री को भी किया जा सकता है, यदि अन्य तत्व पूर्ण हो।

(झ) **मुसम्मात हुसैना बाई बनाम मुसम्मात जोहरा बाई AIR 1960 म० प्र० 60** इस वाद में कहा गया है कि यदि पर्दानशी स्त्री न्यायालय के समक्ष यह साबित कर दे कि हिबा की घोषणा या स्वीकृति अवयस्क असर से पीडित थी तो न्यायालय हिबा को शून्य घोषित कर सकता है।

(3) **कब्जे का परिदान** - कब्जे का परिदान हिबा की सबसे आवश्यक शर्ते हैं। हिबा बिना कब्जे के परिदान के पूर्ण नहीं माना जाता और **रानी खजूरून्निसा** बनाम **मुसम्मात रोशन जहाँ (1876) 8 1A 241** हिबा के संदर्भ में यदि कब्जे का परिदान न हो तो हिबा शून्य माना जाता है।

वाई० एस० चेन बनाम **बातुल बाई AIR (1991)M.P 90** के वाद में कह गया है कि यदि हिबा की विषय-वस्तु पर कब्जे का परिदान नहीं दिया गया हो तो हिबा को शून्य कराने का अधिकार सिर्फ पक्षकारों का होगा। कब्जे का परिदान पूर्ण हुआ या नहीं इस पर भी आपत्ति का अधिकार सिर्फ़ पक्षकारों या उनके विधिक प्रतिनिधियों को है।

कब्जे के परिदान को सम्पत्ति के प्रकार के अनुसार निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(क) **वास्तविक परिदान** - यदि हिबा की विषय-वस्तु ऐसी हो कि उस पर भौतिक रूप से कब्जा दिया जा सके तो कब्जे का परिदान वास्तविक होगा जैसे - अचल सम्पत्ति, वाहन, आभूषण इत्यादि। दान की विषय-वस्तु यदि अचल सम्पत्ति (immovable property) हो तो इसके वास्तविक परिदान के लिए दानकर्त्ता द्वारा कोई ऐसा कार्य किया जाना चाहिए जिससे दानग्रहीता उस सम्पत्ति का पूरा उपभोग कर सकने की स्थिति में आ जाय; अत: दानकर्त्ता यदि उस मकान का हिबा करे जिसमें वह स्वयं रह रहा है तो उसे चाहिये कि वह मकान खाली कर दे ताकि दानग्रहीता उसमें निवास कर सके।

(ख) **आन्वयिक परिदान** - यदि हिबा की विषय-वस्तु की प्रकृति ऐसी होगी कि भौतिक रूप से कब्जा असम्भव हो तो हिबा की वैधता के लिए उसका प्रतिकात्मक हस्तान्तरण किया जाता है। इसे आन्वयिक परिदान कहते हैं जैसे - अमूर्त सम्पत्ति, पराक्रम्य लिखित तथा बंधक मोचन की साम्या का दान।

परिदान कब पूर्ण माना जायेगा :- इस संबंध में चल और अचल सम्पत्ति के परिपेक्ष्य में दो नियम है जो कि निम्न लिखित हैं :-

(1) **चल सम्पत्ति** का परिदान तब पूर्ण मान लिया जाता है जबकि भौतिक रूप से सम्पत्ति दानग्रहीता को प्रदान कर दी जाये।

(2) **अचल सम्पत्ति** तथा अमूर्त सम्पत्ति के संबंध में निम्न दो सिद्धांत हैं :-

(क) लाभ का सिद्धांत - कब्जे का परिदान उस समय पूर्ण मान लिया जायेगा जबकि दान ग्रहीता उसका लाभ उठाना शुभ कर दे। जैसे - पेटेन्ट का लाभ

(ख) आशय का सिद्धांत - कब्जे का परिदान तब पूर्ण मान लिया जायेगा जबकि दाता आशय के साथ उसकी घोषणा कर दे।

उक्त दोनों सिद्धांत सम्पत्ति की प्रकृति, अंतरण की परिस्थितियाँ तथा पक्षकारों के परस्पर व्यवहार पर निर्भर करता है।

कब्जे का परिदान कब आवश्यक नहीं हैं?

(1) जबकि दाता एवं दानग्रहीता एक ही मकान में रहते हैं।

(2) जबकि पति एवं पत्नी एक दूसरे को परस्पर हिबा करते हैं।

(3) संरक्षक द्वारा प्रतिपाल्य को किया गया हिबा परंतु यह हिबा सदाशयपूर्ण होना चाहिए।

(4) यदि हिबा संयुक्तः किया गया हो और उनमें से कुछ व्यक्ति हिबा स्वीकार करने के लिए समर्थ तथा कुछ व्यक्ति असमर्थ हो तो पूरा हिबा शून्य माना जायेगा।

(5) यदि हिबा माँ द्वारा किया जाता है तो कब्जे का परिदान आवश्यक होगा।

(6) यदि दान की विषय-वस्तु स्वयं दानग्रहीता के कब्जे में हो। जैसे - किरायेदार को मकान मालिक द्वारा उस मकान का जिसमें वह किरायेदार हो किया गया हिबा।

रजिस्ट्री न तो अनिवार्य है न पर्याप्त

मुस्लिम-विधि के अंतर्गत हिबा की वैधता के लिए इसका पंजीकृत (registered) होना न तो अनिवार्य है और न ही पर्याप्त। सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 123 के अनुसार किसी भी अचल सम्पत्ति के दान की वैधता के लिए दान की रजिस्ट्री भी हो सकती है। अर्थात्, इस अधिनियम के अंतर्गत अचल सम्पत्ति के दान की रजिस्ट्री अनिवार्य है परंतु चल सम्पत्ति के दान की रजिस्ट्री भी हो सकती है। अर्थात् इस अधिनियम के अंतर्गत अचल सम्पत्ति के दान की रजिस्ट्री अनिवार्य है परंतु चल सम्पत्ति के दान की रजिस्ट्री वैकल्पिक है। मुस्लिम द्वारा किया गया दान (हिबा) केवल कब्जे के परिदान द्वारा ही पूर्ण किया जा सकता है चाहे सम्पत्ति चल हो अथवा अचल। अचल सम्पत्ति कितनी भी मूल्यवान क्यों न हो यदि दानकर्त्ता मुस्लिम है तो बिना रजिस्ट्री के भी दान पूर्णतया वैध होगा। मुस्लिम विधि के अंतर्गत कब्जे का परिदान इतना महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है कि रजिस्ट्री होने के बावजूद यदि कब्जे का वास्तविक अथवा प्रलक्षित परिदान न हो सका तो हिबा शून्य माना जायगा। उदाहरणार्थ, अ जो एक मुस्लिम है, ने अपना मकान ब के पक्ष में दान कर दिया। हिबानामा, लिखित, सत्यापित (attested) तथा विधिवत् रजिस्टर्ड है परंतु ब को मकान का कब्जा नहीं दिया गया। दान शून्य माना जायगा।

हिबा की विषय-वस्तु :

चल, अचल, मूर्त अथवा अमूर्त किसी भी प्रकार की सम्पत्ति जो दान के समय अस्तित्व में हो दान द्वारा अन्तरित की जा सकती है यदि दान करते समय वह दानकर्त्ता के स्वामित्व में हो तथा अंतरण योग्य सम्पत्ति मानी जाती हो।

भावी-सम्पत्ति का दान

भावी सम्पत्ति का दान शून्य होता है। दान के समय सम्पत्ति का अस्तित्व (existence) में होना आवश्यक है। भावी सम्पत्ति अर्थात् वह सम्पत्ति जो भविष्य में अस्तित्व में आने वाली हो अथवा जिस पर दानकर्त्ता का स्वामित्व भविष्य में निहित होने की सम्भावना हो; दान की विषय वस्तु नहीं बन सकती है।

'उत्तराधिकार की संभावना' का दान

'उत्तराधिकार की संभावना' का हिबा भी शून्य होता है। 'उत्तराधिकार की संभावना' का अर्थ है भविष्य में उत्तराधिकार अथवा वसीयत के अंतर्गत किसी सम्पत्ति के प्राप्त होने की संभावना। जिसका स्वामित्व दानकर्त्ता में दान के समय निहित नहीं हो पाता है।

अनुयोज्य-दावे : अमूर्त सम्पत्ति का दान

यद्यपि अमूर्त सम्पत्तियों का भौतिक अस्तित्व नहीं होता तथापि इन पर स्वामित्व प्राप्त किया जा सकता है और ये हस्तान्तरित भी की जा सकती है। अत: किसी प्रकार की अमूर्त सम्पत्ति, जिस पर दानकर्त्ता का स्वामित्व हो, का हिबा पूर्णतया विधिमान्य है। अनुयोज्य दावे अमूर्त सम्पत्ति माने जाते हैं और दान की विषय-वस्तु हो सकते हैं। अनुयोज्य दावे का अर्थ है - (अ) कोई अप्रतिभूत ऋण अथवा (ब) एक ऐसी सम्पत्ति का हित जो दावेदार के कब्जे में न हो।

चल अथवा अचल किसी प्रकार की सम्पत्ति का लाभकारी हित एक अमूर्त सम्पत्ति मानी जाती है और इसका दान किया जा सकता है किराया वसूल करने का अधिकार हिबा द्वारा हस्तान्तरित हो सकता है। इसी प्रकार सरकारी प्रोनोट जमींदारी अधिकार तथा परक्राम्य (बेचनीय) लिखत भी दान की जा सकने वाली अमूर्त संपत्तियाँ हैं। किसी देवालय में चढ़ने वाली भेंट में से एक विशिष्ट हिस्से को प्राप्त करने का अधिकार भी अमूर्त सम्पत्ति है और इसका दान वैध माना जायगा।

बंधक मोचन की साम्या का दान

बंधक मोचन की साम्या का दान वैध है। कर्ज की अदायगी सुनिश्चित करने के लिए ऋणदाता द्वारा कर्जदार की अचल सम्पत्ति आरक्षित करा लेना उस सम्पत्ति को बंधक करना कहा जाता है। ऐसी स्थिति में कर्जदार, जिसकी सम्पत्ति आरक्षित हुई है, बंधककर्त्ता तथा ऋणदाता बंधकधारी कहलाता है। साम्या के सामान्य नियम के अंतर्गत प्रत्येक बंधककर्त्ता को यह अधिकार प्राप्त है कि ऋण अदा करके वह अपनी बन्धित संपत्ति को छुड़ा ले अर्थात् उसका मोचन करा ले। बंधककर्त्ता के इसी अधिकार को 'बंधक मोचन की साम्या' की संज्ञा दी गयी है। भोग-बंधन में बंधकमोचन की साम्या का हिबा कब्जे के हस्तांतरण के बिना भी पूर्णतया विधिमान्य है।

बीमा पॉलिसी का दान

बीमा पॉलिसी का हिबा विधिमान्य है। बीमा पॉलिसी के अंतर्गत प्राप्त होने वाली धनराशि का अधिकार उसका समाश्रित हित माना जाता है। दानग्रहीता को भी समाश्रित हित ही मिलता है। समाश्रित दान शून्य माना गया है अत: मुस्लिम वैयक्तिक विधि के अंतर्गत किसी मुस्लिम द्वारा अपनी बीमा-पॉलिसी का हिबा संभव नहीं है। कानून के रूप में मान्य किसी प्रतिकूल-प्रथा के होने के बावजूद किसी व्यक्ति के पक्ष में किया गया बीमा पॉलिसी का समनुदेशन (assignment), अर्थात् इसका सौंपा जाना वैध है। **सादिक अली बनाम जाहिदा बेगम में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने** निर्धारित किया है कि इंश्योरेंस ऐक्ट, 1938 की धारा 38(7) में दी गयी यह शब्दावली कि "किसी प्रतिकूल विधि अथवा विधि के रूप में मान्य किसी प्रतिकूल प्रथा" में मुस्लिम विधि के हिबा के प्रतिकूल नियम भी सम्मिलित हैं। परिणामत: बीमा पॉलिसी का हिबा मुस्लिम वैयक्तिक विधि के विरूद्ध होने के कारण मुस्लिम विधि के अंतर्गत शून्य होगा परंतु इंश्योरेंस ऐक्ट, 1938 की धारा 38(7) के अंतर्गत पूर्णतया विधिमान्य है।

मेहर का दान

किसी मुस्लिम-पत्नी द्वारा पति के पक्ष में किया गया मेहर का दान वैध है। कानून की दृष्टि में अदत्त मेहर एक ऋण है जिसमें पति ऋणी तथा पत्नी ऋणदाता के समान मानी जाती है। अदत्त मेहर प्राप्त करने का अधिकार पत्नी का अनुयोज्य दावा है और चूँकि यह हस्तांतरण योग्य है इसलिए यह हिबा की विषय-वस्तु बन सकता है। मेहर के दान के संदर्भ में निम्नलिखित दो नियम उल्लेखनीय हैं -

(अ) पत्नी मेहर-का दान सशर्त तथा शर्तरहित, दोनों प्रकार से कर सकती है। मेहर का दान यदि सशर्त है तो शर्त पूरी न होने पर दान निरस्त माना जाता है और पत्नी अदत्त मेहर प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है।

(ब) पति की मृत्यु के पश्चात् भी पत्नी अदत्त मेहर का दान कर सकती है।

मेहर का दान चूँकि एक अनुयोज्य दावे (actionable claim) का अंतरण है अत: यह कहा जा सकता है कि इसका लिखित होना अनिवार्य है।

'सेवाओं' का दान

दान की विषय-वस्तु केवल वे वस्तुएँ हो सकती हैं जिनका कुछ धनीय-मूल्य (pecuniary value) हो अर्थात् वे सम्पत्ति (माल) की कोटि में आती हों। किसी व्यक्ति के प्रति की गयी व्यक्तिगत सेवाएँ अथवा किसी के प्रति नैसर्गिक स्नेह एवं सौहार्द्र (natural love and affection) दान की विषय-वस्तु नहीं है और इनका दान नहीं किया जा सकता है।

मुशा का दान : हनफी-विधि का मुशा का सिद्धांत मुशा = Undivided Property

'मुशा' शब्द की व्युत्पत्ति अरबी शब्द 'शूयूअ्' से हुई है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'असमंजस' अथवा 'विभ्रन्ति' (confusion)। मुस्लिम विधि की शब्दावली में मुशा से तात्पर्य किसी संयुक्त सम्पत्ति के अविभाजित हिस्से (undivided share in a joint-property) से हैं। यदि किसी संयुक्त सम्पत्ति के कई सह-स्वामियों (co-owners) में से केवल एक स्वामी अपने हिस्से की सम्पत्ति को विभाजित किये बगैर दान कर दे तो कब्जे के हस्तान्तरण के समय इस बात को लेकर भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि दान किया गया हिस्सा संयुक्त सम्पत्ति के किस विशिष्ट भाग का अंश माना जाय। दान की विषयवस्तु यदि मुशा सम्पत्ति है तो हनफी विधि में दान की वैधता का निर्धारण मुशा के सिद्धांत के अंतर्गत सुनिश्चित किया जाता है।

(अ) मुशा अविभाज्य - अविभाज्य मुशा-सम्पत्तियों का दान बिना कब्जे का परिदान किये भी विधिमान्य माना जाता है। कुछ सम्पत्तियों की प्रकृति ऐसी होती है कि उन्हें भौतिक रूप से विभाजित करना संभव नहीं होता। उदाहरणास्वरूप, स्नान करने का घाट, सीढ़ी, सिनेमाहाल।

अविभाज्य मुशा-सम्पत्तियों के दान पर मुशा का सिद्धांत नहीं लागू होता है। अर्थात् अविभाज्य मुशा सम्पत्ति के किसी हिस्से का दान विभाजन तथा कब्जे के हस्तान्तरण के बिना भी पूर्णतया विधिमान्य है।

(ब) मुशा विभाजन-योग्य - विभाजन-योग्य मुशा-सम्पत्तियों का दान विभाजन तथा कब्जे का परिदान किये बगैर अनियमित (फासिद) माना जाता है। उदाहरणस्वरूप, मकान, कृषि योग्य भूमि, बाग इत्यादि।

मुशा सिद्धांत के अपवाद (Exceptions to the Doctrine of Mushaa)

निम्नलिखित परिस्थितियों में विभाजन योग्य, संयुक्त सम्पत्ति के दान में हनफी विधि का मुशा का सिद्धांत लागू नहीं होता है - सुन्नी

(1) **किसी सह-उत्तराधिकारी को मुशा का दान (Gift of Mushaa to Co-heir)** :- सह-उत्तराधिकारी का अर्थ है वे व्यक्ति जो उत्तराधिकारी के रूप में किसी मृतक की सम्पत्ति में एक साथ हिस्सा प्राप्त करने के अधिकारी हों। यदि दानकर्त्ता तथा दानग्रहीता सह-उत्तराधिकारी है तो विभाजन योग्य मुशा सम्पत्ति का हिबा विभाजन तथा वास्तविक कब्जे के परिदान के बिना भी पूर्णतया विधिमान्य माना जाता है।

(2) **जमींदारी के किसी हिस्से का दान (Gift of a Share in Zamindari)** :- जमींदारी के किसी एक हिस्सेदार द्वारा अपने अंश (Share) का हिबा करने पर मुशा का सिद्धांत लागू नहीं होता।

(3) **किसी भू-कंपनी के शेयर का दान (Gift of Share in a Lander Company)** - भू-कम्पनी का अर्थ है, कोई बड़ा औद्योगिक प्रतिष्ठान। भू-कम्पनियों अथवा बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठानों का स्वामित्व कई सुनिश्चित शेयरों का समुच्चय होता है जिसमें प्रत्येक शेयर-होल्डर अपने हिस्से का स्वामी माना जाता है। इनमें से किसी एक द्वारा अपने हिस्से (शेयर) का भौतिक विभाजन करके दान करना अत्यधिक असुविधापूर्ण तथा जटिलता उत्पन्न करने वाला कार्य होगा जो मुशा-सिद्धांत के उद्देश्यों के प्रतिकूल है अतः भू-कम्पनी अथवा किसी बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान के शेयर के हिबा में मुशा का सिद्धांत लागू नहीं किया जाता है।

(4) **व्यावसायिक नगर में स्थित किसी उन्मुक्त सम्पत्ति के अंश का दान (Gift of a Share in Freehold Property in a Commercial Town)** :- किसी बड़े शहर अथवा व्यापारिक नगर में अवस्थित अचल सम्पत्तियों का बार-बार भौतिक विभाजन उचित नहीं माना जाता है। अतः ऐसे नगरों में अवस्थित किसी भवन के अंश का हिबा, सुविधा की दृष्टि से, भौतिक विभाजन के बिना भी विधिमान्य मान लिया जाता है।

सशर्त एवं समाश्रित दान (Conditional and Contingent Gifts)

सशर्त दान (Conditional Gifts) – दान स्वेच्छा से किया जाने वाला अंतरण है। यह अंतरण शर्त-सहित तथा शर्त-रहित दोनों प्रकार का हो सकता है। 'शर्त' (Condition) से तात्पर्य किसी ऐसे कार्य अथवा बंधन (Stipulation) से है जिसका पालन दानग्रहीता द्वारा न किये जाने पर उसमें निहित हो चुकी दान की विषय-वस्तु का स्वामित्व समाप्त हो जाता है।

मुस्लिम-विधि के अंतर्गत दान यदि किसी प्रकार की शर्त सहित किया गया है तो वह विधिमान्य होता है परंतु शर्त शून्य मानी जाती है। दानग्रहीता द्वारा शर्त का पालन होना या न होना दान की वैधता को प्रभावित नहीं कर सकता।

सशर्त हिबा :-

इस संबंध में नियम निम्नलिखित हैं :-

(1) मुस्लिम विधि में सम्पत्ति के दो तत्व माने जाते है -

(i) भौतिक (ऐन) – यह सम्पत्ति का पूर्ण अधिकार होता है।

(ii) फलोपभोग (मनाफी) – सम्पत्ति के उपभोग का अधिकार।

(2) ऐन को प्रभावी करने वाली शर्त सहित यदि हिबा किया गया है तो हिबा वैध तथा शर्त शून्य होगी।

(3) मनाफी को प्रभावित करने वाली शर्त शिया और सुन्नी दोनों विधियों में मान्य है।

(4) शिया विधि में जीवन पर्यन्त उपभोग का हिबा किया जा सकता है पर सुन्नी विधि में ऐसा हिबा नहीं किया जा सकता।

नवाजिश अली खाँ बनाम अली रजा खाँ ए० आई० आर० 1948 P.C. 134

समाश्रित दान (Contingent Gift)

समाश्रित दान शून्य होता है। भविष्य की कोई ऐसी अनिश्चित घटना जो पक्षकारों के नियंत्रण में न हो आकस्मिकता कहलाती है। आकस्मिकता पर आश्रित दान समाश्रित दान कहलाता है। शिया तथा सुन्नी दोनों विधियों के अंतर्गत समाश्रित दान प्रारम्भत: शून्य माना जाता है। समाश्रित दान में दानग्रहीता को सम्पत्ति का कोई भी अधिकार नहीं प्राप्त हो पाता है। उदाहरणार्थ अ अपनी सम्पत्तियों के ब के पक्ष में हिबा करता है बशर्ते स एक निर्धारित तिथि को दिवंगत हो जाय। किसी व्यक्ति का मरना तो एक निश्चित घटना है परंतु उसका किसी निधारित तिथि को मरना भविष्य की एक अनिश्चित घटना मानी जाती है जो घट भी सकती है और नहीं भी घट सकती है अत: ब के पक्ष में किया गंया दान समाश्रित दान होने के कारण शून्य है।

आजीवन हित (सम्पदा) का दान (Gift of Life Interest of Life Estate)

किसी सम्पत्ति के 'आजीवन हित' को आजीवन-सम्पदा कहते हैं। सुन्नी विधि के अंतर्गत 'आजीवन सम्पदा' का दान सभव नहीं है क्योंकि मात्र 'जीवन-काल' के लिए किया गया दान भी पूर्णदान के रूप में ही प्रभावी होता है। परंतु शिया विधि के अनुसार दानग्रहीता के जीवनकाल तक के लिए किया गया हिबा वैध तथा प्रभावी माना जाता है। **नवाजिश अली खाँ** बनाम **अली रजा खाँ** के वाद में प्रिवी कौंसिल ने निर्धारित किया कि मुस्लिम-विधि के अंतर्गत आजीवन-हितों का दान विधिमान्य है। न्यायालय ने कारण स्पष्ट करते हुए कहा कि सीमित अथवा आजीवन हित का दान वैध होगा। क्योंकि इसे एक निश्चित समय तक के लिए सम्पत्ति के लाभांश के पूर्ण स्वामित्व का अंतरण माना जायगा न कि सम्पत्ति की 'काय' का सीमित अंतरण। सम्पत्ति की काय को सीमित करने वाला हिबा शून्य है। परंतु सम्पत्ति से प्राप्त होने वाले लाभांश में दानग्रहीता का पूर्ण स्वामित्व रहता है। भले ही यह अधिकार सीमित समयावधि तक ही क्यों न हो। दूसरे मुद्दे अर्थात् 'निहित-शेष' की संकल्पना सर्वथा अमान्य है अतएव अन्तिम उत्तराधिकार को 'नियुक्ति का अधिकार' प्रदान करना निहित-शेष का हस्तान्तरण होने के कारण शून्य हैं। परिणामत: न्यायालय ने निर्णय दिया कि **फतेह अली खाँ तथा मोहम्मद अली खाँ तथा मोहम्मद अली खाँ** दोनों के एक के बाद एक आजीवन-हितों के पश्चात् सम्पत्ति वसीयत-कर्ता (नवाब नासिर

अली खाँ) के उत्तराधिकारी (प्रपौत्र) अली रजा खाँ के पास वापस चली जायगी और चूँकि नियुक्ति ही अमान्य है अत: नवाजिश अली खाँ को सम्पत्ति नहीं प्राप्त हो सकती है।

हिबा का प्रतिसंहरण

इस संबंध में नियम निम्नलिखित हैं –

(1) हिबा का प्रतिसंहरण कब्जे से पूर्व या कब्जे के पश्चात् किया जा सकता है।

बीबी रियाजन खातून बनाम सदरूल आलम AIR (1996) पटना 156

(2) कब्जे से पूर्व प्रतिसंहरण मात्र घोषणा द्वारा किया जा सकता है। क्योंकि यह घोषणा मात्र प्रतिफल रहित प्रस्ताव होता है।

महबूब खाँ बनाम अब्दुल रहीम AIR (1964) राज० 250

(3) हिबा पूर्ण होने से पहले यदि कर्ता की मृत्यु हो जाये तो उत्तराधिकारियों को निरस्त कराने का अधिकार नहीं होता।

(4) यदि हिबा की विषय-वस्तु का कब्जे का परिदान कर दिया गया हो तो हिबा को प्रतिसंहरण नहीं किया जा सकता। परंतु तथ्य की भूल, स्वतंत्र सहमति का अभाव, इत्यादि तत्व होने पर हिबा को अदालत द्वारा निरस्त करवाया जा सकता है।

पर हिबा को अप्रतिसांहरणीय नहीं होना चाहिए।

निम्न स्थितियों में हिबा को अप्रतिसांहरणीय मान लिया जाता है :–

(1) पति और पत्नी द्वारा परस्पर किया गया हिबा – शिया विधि में इसे निरस्त करवाया जा सकता है।

(2) यदि दाता का दानग्रहीता से निषिद्ध संबंध हैं। लेकिन शिया विधि में सिर्फ करावत संबंध ही इस संबंध में मान्य होगे।

(3) कब्जे के परिदान के बाद यदि किसी पक्षकार की मृत्यु हो जाती है।

(4) हिबा की विषय-वस्तु नष्ट हो जाने या खो जाने पर।

(5) दान की पूर्णता के बाद सम्पत्ति का मूल्य बढ़ जाने पर।

(6) परिदान के बाद विषय-वस्तु के स्वरूप में इतना परिवर्तन हो जाये कि सम्पत्ति का मूल्य घट जाये।

(7) हिबा का स्वरूप यदि धार्मिक या आध्यात्मिक हो (सदका)।

(8) यदि हिबा की विषयवस्तु ग्रहीता के कब्जे से किसी वैध अंतरण के फलस्वरूप बाहर चली गई हो।

(9) यदि हिबा हिबा-बिल-ऐवाज़ हो।

हिबा के प्रकार :–

(1) हिबा-बिल-ऐवाज़

(2) हिबा-बिल-शर्तुल ऐवाज़

(1) **हिबा-बिल-ऐवाज :–** **(i)** यह मुस्लिम विधि की हिबा के संदर्भ में एक अनोखी संकल्पना है जिसमें हिबा ऐवाज़ (प्रतिफल) के फलस्वरूप किया जाता है अर्थात् इस हिबा में दानग्रहीता द्वारा कुछ प्रतिफल हिबाकर्त्ता को दिया जाता है। यह हिबा एवं प्रतिफल का दिया जाना जो कि दूसरा हिबा होता है, एक ही संव्यवहार में किये जाने के कारण विक्रय या विनिमय की तरह माना जाता है।

(ii) इसके लिए आवश्यक हैं कि हिबा वैध हिबा की सभी शर्ते पूर्ण करता हो।

(iii) प्रतिफल का मूल्यवान होना आवश्यक नहीं है। परंतु उसका कुछ मूल्य होना चाहिए।

(iv) उक्त वाद में कुरान की प्रतियों, तसबीह (माला फूल्या की) हिबा के प्रतिफल के रूप में दिया जाना पर्याप्त माना गया था।

रानी खजरून्निसा बनाम मुसम्मात रोशन जहाँ (1876) 8 I A 241

(v) प्रतिफल का वास्तव में दिया जाना आवश्यक हैं। सिर्फ उल्लेख कर देना पर्याप्त नहीं होगा।

(vi) सेवाएँ, मान सम्मान, स्नेह इत्यादि पर्याप्त प्रतिफल नहीं माने जायेंगे और ऐसा होने पर संव्यवहार हिबा की तरह माना जायेगा।

(vii) प्रतिफल के रूप में विवाह करने का वचन पर्याप्त ऐवाज़ माना जायेगा।

हिबा-बिल-ऐवाज़	हिबा-बिल-शर्तुल ऐवाज़
1. इसमें प्रतिफल स्वेच्छा से दिया जाता है।	1. इसमें प्रतिफल अनुबंधित होती है।
2. इसमें प्रतिफल की पूर्ववर्ती शर्त नहीं होती।	2. इसमें प्रतिफल देने की पूर्ववर्ती शर्त होती है।
3. इसमें हिबा एवं प्रतिफल का दिया जाना एक ही संव्यवहार के भाग माने जाते हैं	3. इसमें हिबा, प्रतिफल (दूसरा हिबा) दोनों अलग-अलग संव्यवहार माने जाते हैं।
4. इसमें हिबा को विधिक दृष्टि से जैसी भी स्थिति हो विक्रय या विनिमय माना जाता है।	4. इसमें पूरे संव्यवहार को हिबा ही माना जाता है।
5. मुशा इसमें लागू नहीं होता है।	5. मुशा का सिद्धांत लागू होगा।
6. इसमें शुफा लागू नहीं होगा।	6. शुफा का अधिकार लागू नहीं होता है।
7. कब्जे का परिदान आवश्यक नहीं।	7. आवश्यक है

मुस्लिम विधि में हिबा के सादृश्य अंतरण

सदका :- (i) धार्मिक या आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी मुस्लिम द्वारा किया गया हिबा सदका कहलाता है।

(ii) इसमें स्पष्ट स्वीकृति का होना आवश्यक नहीं है। परिस्थितियों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है।

(iii) मुशा के सिद्धांत के विरोध में किया गया सदका मान्य होता है।

(iv) पूर्ण होने के बाद यह बिना अपवाद के अप्रतिसंहरणीय हो जाता है।

अरियत - (1) एक निश्चित अवधि तक सम्पत्ति के उपभोग का अधिकार का हिबा अरियत कहलाता है। यह प्रतिफल रहित अस्थायी अनुदान है। जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति का उपभोग एक निश्चित समय तक कर सकता है।

(2) कर्ता द्वारा इसे कभी भी निरस्त किया जा सकता है।

(3) दानग्रहीता का चूँकि यह व्यक्तिगत अधिकार होता है। इसलिए ना तो यह अंतरणीय होता है और न ही दाय योग्य।

(4) किसी व्यक्ति के पक्ष में निर्वाह भत्ते के रूप में किया गया सम्पत्ति का दान अरियत होता है। हिबा नहीं।

अध्याय 11

वसीयत

सार-परिचय

- परिभाषा
- वसीयत का उद्देश्य
- वसीयत की विशेषताएँ
- वसीयत के आवश्यक तत्व
    1. वसीयतकर्ता की सक्षमता
    2. वसीयतदार की सक्षमता
    3. औपचारिकताएँ
    4. वसीयत की विषय-वस्तु (सम्पत्ति का अंतरणीय होना)
    5. विहित सीमा का पालन करना
- वसीयत का उपशमन
- वसीयत का प्रतिसंहरण
- शिया एवं सुन्नी विधि में अंतर

परिभाषा :-

वसीयत प्रतिफल रहित सम्पत्ति का ऐसा अंतरण है जो अंतरण (वसीयतकर्ता) की इच्छा से उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी होता है। दाय की इसलामिक विधि पूर्व इस्लामिक रूढ़ियों और पैगम्बर मुहम्मद द्वारा स्थापित नियमों के संयोग से उद्भूत है। इस्लामिक विधि में दाय से संबंधित अधिकांश नियम कुरान पर आधारित है।

फलवा-ए-आलमगिरी के अनुसार वसीयतकर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होने वाला किसी विशिष्ट वस्तु, मुनाफा, लाभ या वृत्ति से साम्पत्तिक अधिकार का प्रदान करना वसीयत कहलाता है।

तैय्यब जी के अनुसार वसीयत ऐसी विधिक घोषणा है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के संबंध में अपनी वह इच्छा प्रकट करता है जिसे वह मृत्यु के बाद क्रियान्वित कराना चाहता है।

बेली के अनुसार, ''वसीयत का अर्थ है किसी विशिष्ट सम्पत्ति के अधिकार अथवा लाभ को, किसी दूसरे व्यक्ति के पक्ष में, अनुग्रह-धन के रूप में इस प्रकार प्रदान किया जाना कि वसीयतकर्ता की मृत्यु तक यह स्थगित रहे।

वसीयत का उद्देश्य :-

(i) वसीयत का उद्देश्य विरासत के अंतर्गत प्राप्त होने वाली सम्पत्ति के बँटवारे मे अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करना है।

(ii) यह किसी व्यक्ति को आश्रयहीन होने से बचाती है।

(iii) यह उत्तराधिकार की सही विधि का निर्धारण करती है।

(iv) यह अजनबी को उसके न्यागमन में लाभ देने में सहायता करती हैं।

(v) व्यक्ति अपनी आखिरी इच्छा पूरी कर सकता है।

(vi) यह परस्पर विरोधी हित में संतुलन स्थापित करता है।

वसीयत वस्तुतः मरणोपरान्त प्रभावी होने वाला दान है।

वसीयत की विशेषताऐं –

वसीयत की निम्न विशेषताएँ है –

(1) यह सम्पत्ति का अंतरण नहीं है न्यागमन है।

(2) यह वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद प्रभावी होता है।

(3) वसीयत करने वाले को वसीयतकर्ता या रिक्थदाता (legator) जिसके पक्ष में वसीयत की जाती है उसे वसीयतदार या रिक्थग्राही (legator) कहते हैं तथा उस दस्तावेज को वसीयतनामा या इच्छापत्र कहते है।

(4) वसीयत के शब्दों द्वारा वसीयतकर्ता का आशय स्पष्ट प्रकट होना चाहिए।

(5) रिक्थग्राही को अधिकार तुरंत प्राप्त नहीं होते बल्कि रिक्थकर्ता को मृत्यु के बाद प्राप्त होते हैं।

(6) वसीयत मौखिक या लिखित हो सकती है, परंतु इस प्रकार की मौखिक घोषणा या अदालत में पूर्णतया सिद्ध होना चाहिए कि उसका अन्य कोई मतलब नहीं निकलता।

(7) गूँगा भी संकेतों से वसीयत कर सकता है।

(8) मुस्लिम विधि के अनुसार वसीयतकर्ता की शक्ति इस संबंध में सीमित है और वह तय अनुपातों के अनुसार भी की जा सकती है।

वसीयत के आवश्यक तत्व :-

वसीयत के निम्नलिखित आवश्यक तत्व हैं :-

(1) वसीयतकर्ता की सक्षमता

(2) वसीयतदार की सक्षमता

(3) औपचारिकताएँ

(4) वसीयत की विषय-वस्तु

(5) विहित सीमा का पालन होना।

(1) वसीयतकर्ता की सक्षमता :-

(i) मुस्लिम

वसीयत करते समय वसीयतकर्ता का मुस्लिम होना अनिवार्य है। यदि वसीयत करते समय कर्ता मुस्लिम हो और वसीयत प्रभावी होने के समय वह मुस्लिम न रह जाये तो भी वसीयत मुस्लिम विधि द्वारा ही प्रशासित होगी। परंतु मालिकी विधि में ऐसी वसीयत शून्य होती है।

(ii) वयस्कता

कोई भी मुस्लिम पुरूष या महिला जिसने वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली हो 18 वर्ष यदि न्यायालय द्वारा अवयस्क के शरीर या सम्पत्ति के लिए यदि संरक्षक नियुक्त किया है तो वयस्कता की आयु 21 वर्ष होनी।

अवयस्क को वसीयत करने का अधिकार नहीं है लेकिन यदि उसके द्वारा वसीयत की जाती है तो वयस्कता के बाद इसका अनुमोदन किया जा सकता है यदि अन्य तत्व पूरे हो।

(iii) स्वस्थचित्ता

वसीयतकर्ता को स्वस्थ मस्तिष्क का होना चाहिए। पागल द्वारा की गई वसीयत शून्य होगी। अमीर अली के अनुसार वसीयत करने के पश्चात् यदि वसीयतकर्ता स्थायी रूप से पागल हो जाए तो वसीयत शून्य मानी जायेगी। लेकिन यदि पागलपन छः माह तक के लिए स्थिर न हो तो वसीयत शून्य नहीं मानी जा सकती।

(iv) वसीयतकर्त्ता द्वारा आत्महत्या का प्रयास

आत्महत्या का विचार आने के बाद परंतु प्रयास से पूर्व कर्ता द्वारा की गई वसीयत दोनों विधियों में मान्य होती है।

आत्महत्या के प्रयास के बाद वसीयतकर्ता द्वारा की गई वसीयत शिया विधि में शून्य तथा सुन्नी विधि में मान्य होती है।

(2) वसीयतदार की सक्षमता :-

(i) वसीयत किसके पक्ष में हो सकती है?

वसीयत के प्रभावी होने के समय वसीयतदार को अस्तित्व में एवं सम्पत्ति धारण करने के योग्य होना चाहिए। धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, वैवाहिक स्थिति इत्यादि का वसीयतदार की सक्षमता से कोई संबंध नहीं है।

(ii) गर्भस्थ-शिशु के पक्ष में वसीयत :-

गर्भस्थ शिशु के पक्ष में वसीयत की जा सकती है परंतु :-

(क) वसीयतकर्ता की मृत्यु के समय वह गर्भ में होना चाहिए।

(ख) सुन्नी विधि के अनुसार वसीयतकर्त्ता की मृत्यु से छः माह के अंदर उसका जन्म होना चाहिए।

(ग) शिया विधि के अनुसार मृत्यु से (आठ या नौ माह) अंदर उसका जन्म हुआ होना चाहिए।

(iii) वसीयतकर्त्ता का हत्यारा :-

यदि वसीयतदार वसीयतकर्त्ता का हत्यारा हो तो शिया विधि के अनुसार यदि हत्या आशय के साथ की गई हो तो भी वसीयत शून्य मानी जायेगी।

परंतु सुन्नी विधि के अनुसार चाहे जिस आशय से हत्या की गई हो वसीयतदार वसीयत के अंतर्गत सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकार से वंचित हो जाता है।

(iv) रिक्थ की समाप्ति - वसीयतकर्त्ता से पहले ही वसीयतदार की मृत्यु

सक्षम वसीयतदार (रिक्थग्राही) होने की अनिवार्य शर्त यह है कि वसीयतकर्त्ता की मृत्यु के समय वह जीवित व्यक्ति के रूप में विद्यमान हो अतः वसीयतकर्त्ता के जीवन-काल में ही वसीयतदार की मृत्यु हो जाने पर उसके पक्ष में की गयी वसीयत समाप्त हो जाती है।

वसीयत यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियो के पक्ष में संयुक्त रूप से की गयी हो तथा इनमें से कोई एक वसीयतदार वसीयतकर्त्ता की मृत्यु से पहले ही दिवंगत हो जाता है तो पूरी सम्पत्ति जीवित वसीयतदार (वसीयतदारों) को प्रदान कर दी जाती है। परंतु वसीयत में यदि प्रत्येक वसीयतदार के विशिष्ट हिस्सों का उल्लेख कर दिया गया हो और उनमें से कोई एक वसीयतदार वसीयतकर्त्ता की मृत्यु से पहले ही दिवंगत हो जाय तो दिवंगत हो गये वसीयतदार का हिस्सा अन्य वसीयतदारों के हिस्सों में शामिल नहीं किया जाता; उसका हिस्सा वसीयतकर्त्ता के उत्तराधिकारियों को वापस चला जाता है।

शिया-विधि - शिया-विधि के अंतर्गत वसीयतकर्त्ता के जीवन-काल में ही वसीयतदार की मृत्यु हो जाने पर वसीयत समाप्त नहीं होती है। ऐसी स्थिति में वसीयतकर्त्ता की मृत्यु के समय वसीयतदार के जो भी उत्तराधिकारी हों उन्हें सम्पत्ति प्रदान कर दी जाती है। वसीयतदार के कोई भी विधिक उत्तराधिकारी न होने पर सम्पत्ति वसीयतकर्त्ता के उत्तराधिकारियों में वापस चली जाती है।

वसीयतकर्त्ता की स्वतंत्र सहमति (Free Consent of Legator) :-

वसीयत करते समय वसीयतकर्त्ता की स्वतंत्र सहमति अनिवार्य है। यदि वसीयतकर्त्ता ने किसी प्रकार की मजबूरी, धमकी, कपट के प्रभाव में आकर अथवा अनुचित दबाव में आकर वसीयत लिखी हो तो वसीयत शून्य मानी जाती है और रिक्थग्राही को सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहता है।

वसीयतदार की सहमति (Consent of Legatee)

उत्तराधिकार को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से किसी सम्पत्ति के स्वामित्व को किसी भी व्यक्ति पर उसकी इच्छा के विरूद्ध आरोपित नहीं किया जा सकता है। अतः वसीयत की वैधता के लिए वसीयतदार द्वारा इसकी प्रत्यक्ष अथवा प्रलक्षित स्वीकृति (express or implied acceptance) आवश्यक मानी गयी है। यदि कोई वसीयतदार अपने पक्ष में की गयी वसीयत को इन्कार कर देता है तो वसीयत उसके पक्ष में प्रभावी नहीं हो सकती। वसीयतकर्त्ता की मृत्यु हो जाने के बाद वसीयतदार यदि अपनी सहमति अथवा असहमति व्यक्त करने से पूर्व ही दिवंगत हो गया हो तो यह मान लिया जायगा कि उसने वसीयत के पक्ष में ही अपनी सहमति दी है तथा वसीयतदार के उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति अपने आप निहित हो जाती है। परंतु शिया-विधि के अनुसार

स्वीकृति अथवा अस्वीकृति प्रदान करने से पूर्व ही यदि वसीयतदार की मृत्यु हो जाय तो उसे उत्तराधिकारियों मे सम्पत्ति अपने आप निहित नहीं होती। ऐसी दशा में उत्तराधिकारियों को अधिकार रहता है कि वे चाहें तो वसीयत के अंतर्गत सम्पत्ति प्राप्त कर लें अथवा इसे अस्वीकृत कर दें।

3. <u>वसीयत की औपचारिकताएँ</u> - वसीयत के निष्पादन में वसीयतकर्त्ता द्वारा अपने
   (1) आशय का प्रकाशन आवश्यक है।
   (2) वसीयत या तो मौखिक या लिखित हो सकती है।
   (3) वसीयत का लिखित होना या रजिस्टर्ड होना आवश्यक नहीं है।
   (4) वसीयत निष्पादक द्वारा हस्ताक्षरित होनी आवश्यक नहीं है यदि यह उसके हस्तलेख में है।

4. <u>वसीयत की विषय-वस्तु</u> :-
   (1) वसीयत की विषय-वस्तु अंतरणीय होनी चाहिए (सम्पत्ति अर्थात् अधिनियम 1882 की धारा 6)
   (2) वसीयतकर्ता की मृत्यु के समय वह सम्पत्ति उसके स्वामित्व में हो।
   (3) मात्र मनाफी (लाभांश) की भी वसीयत मान्य है।
   (4) आजीवन हित की वसीयत मान्य है।

5. <u>विहित सीमा का पालन</u> :-

(1) कोई भी मुस्लिम मुस्लिम विधि के द्वारा तय सीमा के तहत ही अपनी सम्पत्ति की वसीयत कर सकता है। कोई भी मुस्लिम अपनी कुल सम्पत्ति का उसके एवं कर्जो को निकालकर 1/3 भाग की वसीयत कर सकता है। यदि कोई मुस्लिम अपनी पूरी सम्पत्ति की वसीयत किसी उत्तराधिकारी के पक्ष में करता है तो वह वसीयत शून्य हागी।

(2) अपनी सम्पत्ति के 1/3 भाग से ज्यादा की वसीयत करने पर उत्तराधिकारियों की सहमति आवश्यक होगी।

वसीयती अधिकार : रिक्थ-योग्य तिहाई

मुस्लिम वसीयतकर्त्ता के वसीयत करने के अधिकार पर निम्नलिखित दो प्रकार के प्रतिबंध हैं -

(i) वसीयत की जा सकने वाली सम्पत्ति की मात्रा से संबंधित प्रतिबंध तथा

(ii) वसीयत किसके पक्ष में की गयी है इसके संबंधित प्रतिबंध।

मुस्लिम विधि के अंतर्गत वसीयतकर्त्ता अपनी कुल सम्पत्ति का केवल 1/3 भाग ही किसी व्यक्ति को वसीयत कर सकने में समर्थ है; इससे अधिक सम्पत्ति की वसीयत के लिये उसके उत्तराधिकारियों की सहमति अनिवार्य है। रिक्थ-योग्य तिहाई से संबंधित नियमों को सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित दो शीर्षकों में स्पष्ट किया गया है -

<u>गैर-उत्तराधिकारी को वसीयत</u> :-

(1) एक मुस्लिम द्वारा अपनी समपूर्ण सम्पत्ति को 1/3 भाग तक की वसीयत के लिए उत्तराधिकारियों की सहमति की कोई आवश्यकता नहीं होती।

(2) यदि 1/3 भाग से ज्यादा की वसीयत की गई है तो सहमति की आवश्यकता होगी, यदि सहमति नहीं दी जाती है तो 1/3 भाग की ही वसीयत मान्य होगी।

(3) यदि पूरी सम्पत्ति की वसीयत कर दी गई है और सहमति है तो वसीयत मान्य होगी। यदि सहमति नहीं है तो 1/3 भाग की वसीयत मान्य होगी।

<u>उत्तराधिकारी को वसीयत</u> :-

(1) सामान्य तौर पर किसी भी मात्रा के लिए अन्य उत्तराधिकारियों की सहमति आवश्यक होगी। (शिया विधि को छोड़कर)

<u>सहमति</u> :-

(1) गैर-उत्तराधिकारी के पक्ष में 1/3 भाग तक की वसीयत - दोनों विधियों में सहमति की आवश्यकता नहीं।

(2) गैर उत्तराधिकारी के पक्ष में 1/3 भाग तक की वसीयत – दोनों विधियों में सहमति अनिवार्य।

(3) शिया विधि में उत्तराधिकारियों को 1/3 भाग तक की वसीयत – सहमति की आवश्यकता नहीं।

(4) शिया विधि में 1/3 भाग से अधिक की वसीयत – सहमति की आवश्यकता अनिवार्य।

(5) सुन्नी विधि में 1/3 भाग तक की वसीयत – सहमति अनिवार्य

(6) सुन्नी विधि में 1/3 भाग से अधिक की वसीयत – सहमति अनिवार्य उपरोक्त सहमति शिया विधि में चाहे कर्ता के जीवनकरण में ही जाये या उसकी मृत्यु के बाद कोई फर्क नहीं पड़ता।

(7) सुन्नी विधि के अनुसार सहमति मृत्यु के बाद ही दिया जाना चाहिए।

इस संबंध में केवल उत्तराधिकारियों की ही (वे लोग जो कर्ता की मृत्यु के समय उसकी सम्पत्ति में हिस्सेदार हो) सम्मति आवश्यक होगी।

(8) सम्मति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हो सकती है। एक बार सम्मति दिये जाने के बाद उसे वापस नहीं लिया जा सकता है। यदि मृत्यु की सूचना के अभाव में एवं वसीयत निष्पदान की सूचना अभाव में उत्तराधिकारी मौन रहता है तो यह पर्याप्त सम्मति नहीं मानी जायेगी।

(9) सम्मति स्वतंत्र होनी चाहिए।

(10) वसीयत उत्तराधिकारियों एवं गैर उत्तराधिकारियों को संयुक्त की जा सकती है। परंतु वसीयत के संदर्भ में मुस्लिम विधि के नियमों का पालन आवश्यक होगा।

वसीयत का उपशमन :–

'रिक्थों के उपशमन' का अर्थ है : वसीयतकर्ता द्वारा वसीयत (रिक्थ) के अंतर्गत दी गयी सम्पत्ति की मात्रा (quantum) में 'कटौती' या 'कमी' (abatement) करना। मुस्लिम-विधि के अंतर्गत किसी गैर उत्तराधिकारी के पक्ष में रिक्थ-योग्य तिहाई (1/3) से अधिक सम्पत्ति की वसीयत में उत्तराधिकारियों की सहमति अनिवार्य है। ऐसा वसीयतदार यदि केवल एक व्यक्ति है तथा उसे सम्पत्ति 1/3 से अधिक दी गयी, तो उत्तराधिकारियों की सहमति के अभाव में वसीयतदार को वसीयत के अंतर्गत दी गयी सम्पत्ति की मात्रा (यथा 1/2) में 'कमी' करके उसे केवल 1/3 से सम्पत्ति ही मिलेगी परंतु यदि वसीयतदार दो या दो से अधिक हो और उनमें से प्रत्येक को 1/3 से अधिक सम्पत्ति दी गयी हो अथवा उन सब के हिस्से का योग 1/3 से अधिक हो, तो किस वसीयतदार को कितनी सम्पत्ति मिलेगी, इसका निर्धारण 'रिक्थों के उपशमन' के नियमों के अंतर्गत किया जाता है रिक्थों के उपशमन का नियम सुन्नी तथा शिया विधियों में भिन्न-भिन्न हैं। 1/3 अधिक की वसीयत में यदि उत्तराधिकारियों की सहमति नहीं है तो सुन्नी विधि में वसीयतों के 'अनुपातिक विभाजन' का सिद्धांत तथा शिया-विधि में 'वरीयता-क्रम' के विभाजन का सिद्धांत लागू किया जाता है। अर्थात्

वसीयत का उपशमन :– वसीयतकर्ता द्वारा वसीयत के तहत दी गई सम्पत्ति की मालाा यदि तय सीमा 1/3 से अधिक हो तो वसीयतदार को उनके मिले अंशों में उनके मिले हिस्से के अनुसार आनुपातिक कमी कर दी जाती है ताकि उच्चतम निषिद्ध सीमा 1/3 का उल्लंघन न हो इसी को रिक्थों का उपशमन कहते हैं।

सुन्नी विधि का नियम :–

सुन्नी विधि में उपशमन के संदर्भ में यदि सम्पत्ति की वसीयत तय सीमा से अधिक हो और उत्तराधिकारियों को इस संदर्भ में स्वीकृति न हो तो वसीयतदार या वसीयतदारों के हिस्सों में विहित सीमा को (1/3) उच्चतम मानते हुए आनुपातिक विभाजन किया जाता है।

(1) सुन्नी विधि में आनुपातिक विभाजन मान्य होता है जिसमें वसीयतदारों को मिले हिस्सों के अनुपात के अनुसार सम्पत्ति को कुल 1/3 भाग मानकर विभाजन किया जाता है। इस संबंध में महत्वपूर्ण यह है कि उत्तराधिकारियों की सहमति तय सीमा से ज्यादा के लिए नहीं होनी चाहिए। जैसे – A 1/2 भाग की वसीयत B को करता है चुँकि वह भाग तय सीमा 1/3 से अधिक हैं इसलिए 1/3 भाग ही B को मिलेगा।

(2) यदि वसीयत कई लोगों को की गई हो और उनके हिस्सों का कुल योग तय सीमा से ज्यादा हो तो आनुपतिक विभाजन का नियम लागू होगा। जैसे – यदि X अपनी सम्पत्ति की वसीयत A के पक्ष में 1/2 भाग, B के पक्ष में 1/4 भाग तथा C के पक्ष में 1/4 भाग करता है। तीनों के हिस्सों का कुल योग

1/2 + 1/4 + 1/4 = 1

कुल हिस्सों का योग एक होगा।

चूँकि योग 1/3 (विहित सीमा से अधिक है) अत: A, B, C के हिस्सों में कटौती इस प्रकार की जायेगी कि उनका पारस्परिक अनुपात तो वही रहे परंतु हिस्से का कुल योग 1/3 से अधिक न हो। अत: 1/3 भाग को कुल भाग मानकर हिस्सों का विभाजन किया जायेगा। जैसे A का B हिस्सा

A = 1/3 का 1/2 = 1/6
B = 1/3 का 1/4 = 1/12 कुल योग 1/6 + 1/12 + 1/12 = 4/12 = 1/3
C = 1/3 का 1/4 = 1/12

(3) यदि वसीयत में धार्मिक एवं लौकिक दोनों प्रयोजनों के लिए वसीयत की गई है तो विहित सीमा के अंदर दोनों प्रयोजनों के लिए बराबर-बराबर राशि आंवतित की जायेगी। यदि की सम्पत्ति का कुल मूल्य 15000/- है और वह 3000/- अपने पुत्रों X और Y के लिए तथा 3000/- धार्मिक कार्यों के लिए धार्मिक कार्यों के लिए। अत: वसीयत के अनुसार कुल वसीयत की गई सम्पत्ति 6000/- है जो विहित सीमा से ज्यादा है। अत: दोनों प्रयोजनों के लिए इस राशि को विहित सीमा यानि 5000/- मानकर 2500/- धार्मिक कार्यों के लिए तथा दोनों पुत्रों के लिए 2500/- यानि X को 1250/- और Y को 1250/- आबंटित किये जायेंगे।

<u>शिया विधि का नियम</u> :-

शिया विधि में अगर ऐसी स्थिति हो तो (तय सीमा से ज्यादा की वसीयत और सहमति नहीं) वरीयताक्रम नियम का पालन होता है। अर्थात् जिस वसीयतदार का नाम सबसे पहले आता है उसे ही तय सीमा तक हिस्सा मिलता है और यदि सम्पत्ति बचती है तो नामों के क्रमानुसार हिस्से आबंटित किये जायेंगे। जैसे - यदि प्रथम हिस्सेदार का हिस्सा विहित सीमा तक या उससे ज्यादा है तो उसे ही सारी वसीयती सम्पत्ति प्राप्त होगी। उदाहरण के लिए X अपनी सम्पत्ति की वसीयत A के पक्ष में 1/2 भाग B के पक्ष में 1/4 भाग तथा C के पक्ष में 1/6 भाग करता है हिस्सों का कुल भाग बराबर

1/2 + 1/4 + 1/6 = 11/12

चूँकि हिस्सेदारों को प्राप्त सम्पत्ति का कुल योग विहित सीमा से ज्यादा है और A का हिस्सा ही विहित सीमा से ज्यादा है इसीलिए A को ही सारी सम्पत्ति प्राप्त होगी।

यदि हिस्सेदारों के हिस्सों का कुल योग विहित सीमा से कम हो तो वरीयता क्रम नियमों का पालन किया जायेगा जैसे X अपनी सम्पत्ति का 1/12 भाग A को तथा 1/4 B को तथा 1/16 भाग C को देता है और इनके हिस्सों का कुल योग विहित सीमा से ज्यादा है इसलिए वरीयता क्रम नियमों का निम्नानुसार पालन होगा।

A का 1/12 + 1/4 + 1/6 = 1/2
A का हिस्सा 1/12 विहित है प्रश्न में
B का हिस्सा - 1/3 - 1/12 = 1/4

चूँकि A के हिस्से को निकालने के बाद जो भाग बचता है वह भाग वरीयताक्रम में दूसरे न० पर वर्णित B का है अत: C को कोई सम्पत्ति प्राप्त नहीं होगी।

सशर्त तथा समाश्रित वसीयत

यदि वसीयतकर्ता ने 1/3 भाग की ही वसीयत कई व्यक्तियों को की हो तो समय के हिसाब से सबसे बाद में की गई वसीयत मान्य होगी।

<u>महत्वपूर्ण बिन्दू</u> :-

(1) कोई वसीयत जिसके अंतर्गत वसीयतदार को सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए कुछ शर्तो का पालन करना हो सशर्त वसीयत कहलाती है। सशर्त वसीयत वैध होती है परंतु इसमें लगाई गई शर्त शून्य होगी।

(2) वसीयत के अंतर्गत यदि वसीयतदार में सम्पत्ति निहित होना भविष्य की किसी अनिश्चित घटना पर निर्भर करता है तो वसीयत आकस्मिक अथवा समाश्रित वसीयत कहलायेगी। आकस्मिक वसीयत शून्य मानी जाती है। समाश्रित वसीयत यदि घटना घटने में अनिश्चितता न हो तो वैध होती है। जैसे – बेटी के पक्ष में की गई वसीयत कि जब वह शादी करेगी तब उसे सम्पत्ति मिलेगी।

(3) वैकल्पिक वसीयत को अर्थ है वसीयतकर्ता की मृत्यु से पहले ही दिवंगत हो जाये तो सम्पत्ति वसीयत के अंतर्गत निर्देशित दूसरे वसीयतदार के पक्ष में मान ली जायेगी वैकल्पिक वसीयत मान्य है जैसे – X वसीयत करता है कि मेरी मृत्यु के बाद मेरा मकान Y को मिले और यदि उस समय Y की भी मृत्यु हो चुकी हो तो C को मिले।

(4) वसीयत की व्याख्या मुस्लिम विधि के नियमों, वसीयतकर्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द, वसीयत के समय की परिस्थितियाँ तथा हर मामले के तथ्यों के अनुरूप की जानी चाहिए।

(5) अगर विवाह विशेष विवाह अधिनियम के तहत हुआ हो तो वसीयत के संदर्भ में लागू की जाने वाली विधि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 के अनुसार होगी।

(6) यदि वसीयत वैध हो तो प्रोबेट के बिना भी वसीयत को सक्षम सबूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

यदि वसीयतकर्ता ने 1/3 भाग की ही वसीयत कई व्यक्तियों को की हो, तो समय के हिसब से सबसे बाद में की गई वसीयत मान्य होगी।

वसीयत संबंधी शिया एवं सुन्नी विधि में अंतर

शिया विधि	सुन्नी विधि
1. उत्तराधिकारियों को सम्पूर्ण सम्पत्ति के 1/3 भाग की वसीयत बिना सहमति के भी वैध है।	1. उत्तराधिकारियों को सम्पूर्ण सम्पत्ति के 1/3 भाग की वसीयत के लिए सहमति आवश्यक है।
2. उक्त सहमति कर्त्ता के जीवन काल में या उसकी मृत्यु के बाद दी जा सकती है।	2. उक्त सहमति मृत्यु के पश्चात् ही दी जानी चाहिए।
3. 1 शिशु के पक्ष में की गई वसीयत के संदर्भ में शिशु का जन्म कर्ता की मृत्यु से 10 माह के अंदर होना चाहिए।	3. शिशु के पक्ष में की गई वसीयत के संदर्भ में शिशु के पक्ष में की गई वसीयत के संदर्भ में शिशु का जन्मकर्ता की मृत्यु के छः माह के अंदर होना चाहिए।
4. कर्त्ता की हत्या यदि आशय के साथ की गई हो तो ही-रिक्थग्राही अयोग्य होता है।	4. कर्त्ता की हत्या चाहे जिस आशय से की गई हो रिक्थग्राही अयोग्य होता है।
5. शिया विधि में उपशमन के संदर्भ में वसीयता क्रम नियम का पालन होता है।	5. उपशमन के संबंध में अनुपातिक विभाजन के नियम का पालन होता है।

हिबा-ए-मर्जुल-मौत

(Donotio-Mortis-Causa - Latin Maxim)

(1) हिबा-ए-मर्ज-उल मौत का तात्पर्य मरणासन्न अवस्था में किया गया दान है। मुस्लिम-विधि के अंतर्गत मर्ज-उल-मौत के दौरान मृत्यु-शैय्या पर से किये गये दान (हिबा) को वसीयत के रूप में माना जाता है। दान होते हुए भी इसे एक वसीयत के रूप में प्रभावी किया जाता है। यदि किसी मुस्लिम द्वारा अपनी सम्पत्ति का हिबा करने पर यह सिद्ध हो जाय कि हिबा करते समय वह 'मर्ज-उल-मौत' से रोगग्रसत था तो हिबा होने के बावजूद इसे वसीयत मान लिया जाता है और सम्पत्ति दानग्रहीता में वसीयत के नियमों के अनुसार ही निहित हो पाती है।

'मर्ज-उल-मौत' किसी रोग विशेष का नाम नहीं है। कोई भी ऐसा रोग जिससे किसी मुस्लिम व्यक्ति के मन में पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो जाय कि वह अब जीवित नहीं बचेगा तथा उसी रोग के कारण उस व्यक्ति का देहांत हो, 'मर्ज-उल-मौत' माना जा सकता है।

(2) **उद्देश्य** :- इस संकल्पना का उद्देश्य हिबा द्वारा वसीयत के विहित सीमा के नियम को विफल बनाने से रोकना है।

(3) इस नियम के निम्न आवश्यक तत्व हैं :-

(क) व्यक्ति किसी न किसी रोग से ग्रसित होना चाहिए।

(ख) उस व्यक्ति को यह पूर्णविश्वास होना चाहिए कि उसकी मृत्यु अब निश्चित है।

(गं) इस संबंध में कुछ बाहरी प्रमाण भी होने चाहिए जैसे - सामान्य काम काज का न कर पाना।

(घ) यह रोग उसकी मृत्यु का कारण बनना चाहिए।

(ङ) उक्त सारे तत्व हर मामले की तथ्यों एवं परिस्थितियों से तय होंगे।

(च) **अब्दुल हाफिज बनाम साहिबा बाई ए० आई० आर० 1975 बिहार - 165** :

उक्त वाद में 80 साल के वृद्ध द्वारा जो कि गम्भीर रूप से बीमार था मृत्यु के पहले किया गया हिबा हिबा-ए-मर्ज-उल मौत माना गया है।

<u>उपरोक्त हिबा के परिणाम</u> :-

(क) उपरोक्त हिबा में हिबा तथा वसीयत दोनों के नियम लागू होते है।

(ख) परंतु हिबा के सारे तत्वों को पूर्ण होना चाहिए।

(ग) **बेमोन्ट बनाम इवबैंक 1902 चान्सलरी 889** के वाद में कहा गया है कि

Donotio-mortis-cousa को न तो पूरी तरीके से दान माना जा सकता हैं और ना ही पूरे तरीके से वसीयत।

(घ) उपरोक्त हिबा करने के बाद उसके विधिक परिणामों को वसीयत के नियमों द्वारा शासित किया जाता है। (1/3 सीमा का नियम इत्यादि)

यदि विहित सीमा से ज्यादा का हिबा किया जाता है तो उत्तराधिकारियों की सहमति से संबंधित सारे नियम लागू होंगे।

(ङ) यदि हिबा कर्त्ता आदाता को बिना कब्जा दिये मर जाये तो हिबा शून्य माना जाता है।

(च) यदि हिबाकर्त्ता उक्त बीमारी के फलस्वरूप ना मरे तो हिबा पर हिबा के ही सारे नियम लागू होंगे।

मर्ज-उल मौत के दौरान किसी भी ऋण की अभिस्वीकृति की जा सकती है और यह बाध्य होगी। परंतु सामान्य अवस्था में की गई अभिस्वीकृति या किसी अन्य तरीके (लिखित या मौखिक) से की गई अभिस्वीकृति ज्यादा मान्य होगी।

अध्याय 12

वक्फ

सार परिचय

- प्रस्तावना
- वक्फ तथा न्यास में अंतर
- परिभाषा
- विधिमान्य वक्फ की अनिवार्य शर्तें
  - (1) स्थायी समपर्ण
  - (2) वाकिफ सक्षम हो
  - (3) वक्फ की विषय-वस्तु
  - (4) वक्फ का उद्देश्य
- तत्सदृश सादृश्यता का सिद्धांत (Doctrine g cypress)
  - (5) वक्फ की औपचारिकतायें
- सृजन की विधियाँ
  - (1) गैर वसीयत वक्फ
  - (2) वसीयती वक्फ
  - (3) स्मरणातीत उपयोग का वक्फ
- वक्फ का प्रबंधक : मुतवल्ली

प्रस्तावना :-

वक्फ शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'बाँधना' अथवा 'रोक रखना'। सामान्य अर्थ में वक्फ का तात्पर्य सम्पत्ति की ऐसी व्यवस्था करना है। जिससे सम्पत्ति अहस्तान्तरणीय हो जाये ताकि इससे प्राप्त होने वाला लाभ धार्मिक अथवा पुण्य कार्यों के लिए किया जा सके।

वक्फ तथा न्यास में अंतर

उद्देश्य	वक्फ	न्यास
	वक्फ केवल उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सृजित किया जा सकता है जो इस्लाम के अंतर्गत धार्मिक अथवा खैरात के कार्य माने जाते है।	न्यास का सृजन किसी भी वैध कार्य के लिए हो सकता है।
हितग्राही	हनफी विधि को छोड़कर वक्फ का सृजन करने वाला व्यक्ति सम्पत्ति के लाभ को स्वयं के लिए आरक्षित नहीं कर सकता।	न्यास करने वाला व्यक्ति स्वयं एक हितग्राही बन सकता है।

शक्तियाँ	मुतवल्ली के अधिकार सीमित है।	न्यास के प्रबंधक अर्थात् न्यासधारी के अधिकार मुतवल्ली की तुलना में कहीं अधिक हैं।
प्रकृति	वक्फ चिरस्थायी तथा अप्रतिसंहरणीय होता है।	न्यास का चिरस्थायी और अप्रतिसंहरणीय होना आवश्यक नहीं है।

वक्फ मुस्लिम वैयक्तिक विधि द्वारा ही प्रशासित किया जाता है। यदि कोई मुस्लिम अपनी सम्पत्तियों को वक्फ करने के बजाय न्यास बनाता है तो उस पर इण्डियन ट्रस्टस एक्ट, 1882 के नियम लागू होंगे।

न्यास की भाँति ही किसी वक्फ के कुप्रबंध अथवा अनियमितता से संबंधित वाद को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अंतर्गत ही प्रस्तुत किया जाता है।

वक्फ से संबंधित कुछ तकनीकी शब्द

वाकिफ – वक्फसृजनकर्त्ता अर्थात् जो व्यक्ति अपनी सम्पत्तियों को वक्फ करता है।

मौकूफ – हितग्राही या लाभार्थी, जिन व्यक्तियों के लाभ के लिए वक्फ का सृजन होता है।

वक्फनामा – लिखित दस्तावेज, जिसके द्वारा वक्फ सृजित किया जाता है।

मुतवल्ली – वक्फ की सम्पत्ति की देखरेख तथा उसका प्रबंध करने वाला व्याक्ति।

वक्फ की परिभाषा :-

(1) <u>अबु हनीफा के अनुसार</u> – वक्फ से तात्पर्य है वक्फ कर्ता (वाकिफ) के स्वामित्व में सम्पत्ति का इस प्रकार निरोधन कि उसकी आय पारिवारिक सदस्यों, गरीबों, जरूरतमंदों या नेक प्रयोजनों के लिए समर्पित हो।

(2) <u>अबु युसूफ एवं इमाम मोहम्मद के अनुसार</u> – वक्फ किसी वस्तु का सर्वशक्तिमान खुदा के उपलक्षित स्वामित्व में इस प्रकार निरोधन है कि वक्फकर्ता का सम्पत्ति संबंधी अधिकार समाप्त हो जाये और उसे खुदा के किसी ऐसे प्रयोजनों के लिए अंतरित किया जाये जिसके द्वारा उससे होने वाली आय को मानव जाति के फायदे के लिए उपयोग किया जा सके।

(3) <u>मुसलमान वक्फ विधिमान्यकरण अधिनियम 1913 की धारा 2(1) के अनुसार</u> – वक्फ का अर्थ है इस्लाम में आस्थावान किसी व्यक्ति द्वारा किया गया किसी सम्पत्ति का ऐसा सीायी समर्पण जो ऐसे उद्देश्य के लिए यिका गया हो जो कि मुस्लिम विधि के अनुसार धार्मिक, परोपकारी तथा खैराती स्वरूप का हो।

(4) <u>वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 3(द) के अनुसार</u> – वक्फ, पवित्र, धार्मिक, खैरात करने योग्य मुस्लिम विधि द्वारा मान्यता प्राप्त किसी प्रयोजन के लिए किसी चल या अचल सम्पत्ति का किसी इस्लाम को मानने वाले व्यक्ति द्वारा स्थायी समर्पण है और इसमें सम्मिलित है। –

(i) मुस्लिम विधि द्वारा मान्य कोई अन्य अनुदान जो कि परोपकारी, धार्मिक या खैराती हो। जिसमें मशरूल-अल-खिदमत सम्मिलित है।

(ii) उस सीमा तक वक्फ-अल-औलाद जो कि मुस्लिम विधि द्वारा मान्यता प्राप्त किसी धार्मिक, खैराती या परोपकार के प्रयोजन के लिए किया जाता है।

<u>वक्फ के विशिष्ट लक्षण</u> :-

(1) <u>शाश्वतता</u> :- सीमित अवधि का वक्फ सृजित नहीं किया जा सकता। सम्पत्ति सदैव के लिए स्थानान्तरित कर दी जाती है।

(2) <u>अहस्तान्तरणीयता</u> :- वक्फ कर देने के बाद वक्फ की ऐन (काय) अहस्तान्तरणीय हो जाती है।

(3) <u>अप्रतिसंहरणीयता</u> :- एक बार वक्फ सृजित करने के बाद इसे निरस्त नहीं किया जा सकता (वसीयती वक्फों को छोड़कर)

(4) पूर्णता :- वक्फ का सृजन बिना किसी शर्त के या किसी आकस्मिकता के ऊपर आधारित नहीं होना चाहिए।

(5) वक्फ का उद्देश्य :- वक्फ मुस्लिम विधि के तहत मान्य धार्मिक या खैराती उद्देश्यों के लिए हुआ होना चाहिए।

विधिमान्य वक्फ की अनिवार्य शर्तें :-

किसी वक्फ के विधिमान्य होने के लिए निम्नलिखित अनिवार्य शर्तों का पालन होना आवश्यक है -

(1) सम्पत्ति का स्थायी समर्पण

(2) वाक्फि सक्षम हो।

(3) वक्फ की विषय-वस्तु

(4) वक्फ का उद्देश्य

(5) वक्फ की औपचारिकताएँ

(1) सम्पत्ति का स्थायी समर्पण - चूँकि वक्फ प्रतिफलरहित ऐसा स्वामित्व का अन्तरण है जो कि धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है अतः आवश्यक है कि सम्पत्ति का भौतिक मूल (ऐन) बरकरार रहे और यहीं कारण है कि इसका समर्पण अल्लाह में किया जाता है। वक्फ की सम्पत्ति का समर्पण स्थायी एवम् खुदा के प्रति होना चाहिए। भले ही शुरूआत में यह स्वयं के लिए हो परंतु अंततः इसका उद्देश्य परोपकारी होना चाहिए। **छेदी लाल मिश्र बनाम सिविल जज (2007) 4 सु० को० के. 632** - यदि एक बार वक्फ का सृजन हो गया है तो वह हमेशा वक्फ ही रहता है। स्थायी समर्पण के बाद सम्पत्ति अहस्तान्तरणीय एवं समर्पण अप्रतिसंहरणीय हो जाता है। वाकिफ को यदि यह अधिकार हो कि वह वक्फ के उद्देश्यों में परिवर्तन कर सकते। इस वक्फ को शून्य माना जाता है। वक्फ के अच्छे प्रशासन के लिए एवं उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किये गये सभी कार्य मान्य होंगे। वाकिफ मुतवल्ली की नियुक्ति कर सकता है एवं उसे हटा सकता है। मर्ज-अल-मौत पर किया गया वक्फ वसीयती वक्फ माना जाता है। **मुहम्मद आरिफ** बनाम स्टेट आफ **गुजरात ए० आई० आर० (1997) सु० को० 104** वक्फ का शर्तरहित एवं घटना पर आधारित नहीं होना चाहिए। अगर वक्फ वसीयती है तो प्रतिसंहरणीय होता है तथा कर्ता अपनी मृत्यु के पहले इसे कभी भी विखण्डित कर सकता है।

(2) वाकिफ सक्षम हो :- वाकिफ को **वयस्क** (18 या 21 वर्ष जैसी भी स्थिति हो) तथा मुस्लिम या **इस्लाम में आस्थावान** होना चाहिए। अर्थात् **गैर मुस्लिम** भी वक्फ सृजित कर सकता हैं परंतु दो शर्तें पूर्ण होनी चाहिए - **(क)** उसे **इस्लाम में पूर्ण आस्थावान** होनी चाहिए **(ख)** वक्फ के उद्देश्य मुस्लिम **विधि के विरूद्ध** नहीं होने चाहिए। **(ग) अवयस्क, विकृतचित्त** द्वारा किया गया वक्फ शून्य होता है और इसे **संरक्षक द्वारा** भी नहीं किया जा सकता। **(घ)** वाकिफ को सम्पत्ति का **स्वामी** होना चाहिए तथा उसे वक्फ करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। **पर्दानशीन** स्त्री भी सक्षम वाकिफ मानी जाती है। परंतु उसकी **सहमति स्वतंत्र** होनी चाहिए अन्यथा वक्फ शून्य माना जायेगा।

(3) वक्फ की विषय-वस्तु :- चल, अचल, मूर्त, अमूर्त सम्पत्ति का वक्फ हो सकता है। पशु, कृषि संबंधी उपकरण, कुरान, राजकीय बचत पत्र, शेयर, नगदी सरकारी प्रतिभूतियाँ एवं दरगाहों का चढ़ावा इत्यादि वक्फ के लिए वैध विषय-वस्तु निर्णीत किये गये है। **बंधकित सम्पत्ति** का भी वक्फ किया जा सकता है। परंतु **भोगबंधकी** अपने अधिकारों का समर्पण वक्फ के लिए नहीं कर सकता है। **मुशा सम्पत्ति** का वक्फ किया जा सकता है परंतु निम्न सम्पत्तियों पर यह नियम लागू नहीं होगा :- (क) सार्वजनिक कब्रिस्तान (ख) मस्जिद, और (ग) पट्टे पर दी गई सम्पत्ति।

निम्न सम्पत्ति का वक्फ नहीं किया जा सकता :- (क) अदत्त मेहर का अधिकार (ख) सामान्य धन की डिक्री के तहत ऋण वसूलने का अधिकार (ग) भोगबंधकी का अधिकार।

(4) वक्फ का उद्देश्य :- वक्फ के उद्देश्य को धार्मिक परोपकारी एवं पुण्यार्थ होना चाहिए तथा उसे मुस्लिम विधि के विपरीत नहीं होना चाहिए।

दरगाह कमेटी बनाम अजमेर बनाम सैय्यद हुसैन अली (1962) 1 SCR 383

उक्त वाद में कहा गया था कि इस्लाम धर्म के तहत प्रचलित सभी **रीतिरिवाज** तथा **लोकाचार** जो कि उसके अभिन्न अंग है इनसे संबद्ध सभी कार्यो के लिए सृजित वक्फ का उद्देश्य धार्मिक माना जायेगा, **पुण्यार्थ उद्देश्य** वे हैं जिनको खुदा का अनुमोदन प्राप्त है एवं जो ईश्वर प्राप्ति के लिए किया जाता है तथा **परोपकारी** उद्देश्य वे उद्देश्य है जो गरीबों, जरूरतमंदों एवं शोषित वर्गो के कल्याण के लिए हो।

वैध उद्देश्य :-

निम्नलिखित 'उद्देश्य' किसी विधिमान्य वक्फ के लिए वैध-उद्देश्य माने गये है। :-

(1) मस्जिद अथवा इमामबाड़ा का निर्माण, उसकी देख-रेख या इसमें धार्मिक प्रार्थनाओं का आयोजन।

(2) मुहर्रम के दौरान ताजिया रखने तथा धार्मिक जुलूस में ऊँट अथवा 'दुलदुल' का प्रबंध करना।

(3) किसी मस्जिद में दीप प्रज्वलित करना अथवा किसी 'खानकाह' की देख-रेख।

(4) मक्का में तीर्थयात्रियों के निःशुल्क आवास एवं भोजन के लिए सराय का निर्माण।

(5) वाकिफ अथवा उसके परिवार के किसी अन्य व्यक्ति की बरसी अर्थात् मृत्यु-दिवस का आयोजन।

सामान्यतः मृत्यु दिवस अर्थात् बरसी के उत्सव में फातिहा (कुरान-पाठ) तथा गरीबों को भिक्षा आदि देने की प्रथा अनिवार्य रूप से प्रचलित है।

अवैध उद्देश्य :-

निम्नलिखित उद्देश्य अवैध उद्देश्य माने जाते हैं, तथा वक्फ शून्य होता है -

(1) किसी मन्दिर अथवा चर्च का निर्माण या देख-रेख तथा किसी प्रकार की मूर्ति पूजा की व्यवस्था।

(2) शराब की दूकान, जुआघर अथवा सूकर-माँस की दूकान का निर्माण या इनकी देख-रेख।

(3) वकीलों को लाभान्वित करने की व्यवस्था।

(4) केवल धनवान व्यक्तियों को लाभान्वित करने की व्यवस्था। परंतु प्रसंगवश ही किसी धनवान व्यक्ति के भी लाभान्वित हो जाने पर वक्फ का उद्देश्य अवैध नहीं माना जाएगा।

अंशतः वैध तथा अंशतः अवैध उद्देश्य :-

यदि वक्फ का उद्देश्य वैध एवम अवैध दोनों हो तो अवैध उद्देश्य के संबंध में वक्फ शून्य माना जायेगा और वैध उद्देश्य के संबंध में यह विधिमान्य होगा। अवैध उद्देश्य के संबंध में यह माना जायेगा कि वक्फ सृजित ही नहीं हुआ था।

यदि वैध और अवैध उद्देश्यों के संदर्भ में उनके अंश निर्धारित न हो तो पूरा उद्देश्य वैध माना जायेगा।

उद्देशय का निश्चित होना

सामान्य तौर पर **उद्देश्य का निश्चित होना** अनिवार्य है परंतु यदि उद्देश्य मुस्लिम विधि के अनुसार वैध तो है पर अनिश्चित है तो वक्फ की वैधानिकता को लेकर इस संबंध में न्यायालयों और विधिशास्त्रियों में मतभेद हैं। जैसे - पैगम्बर के वंशजों के भरण-पोषण के लिए किया गया वक्फ।

परंतु अब मान्य मत है कि उद्देश्य वैध है परंतु अनिश्चित है तो वक्फ सिर्फ इसी आधार पर शून्य नहीं होगा और सम्पत्ति का उपयोग गरीबों एवं जरूरतमंदो के लिए किया जा सकेगा क्योंकि मुस्लिम विधि के अनुसार प्रत्येक वक्फ में गरीबों का लाभ अंर्तनिहित रहता है।

तत्सदृश का सिद्धांत (Docrine of Cypress)

(1) इस सिद्धांत का सामान्य अर्थ यथासम्भव समीप है। यह अंग्रेजी विधि के न्यास की संकल्पना से लिया गया है।

(2) इसका अर्थ है कि यदि वक्फनामा में वर्णित उद्देशयों की पूर्ति हो गई हो तो उससे मिलते-जुलते उद्देश्यों के लिए वक्फ की सम्पत्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

(3) परंतु वह उद्देश्य मुस्लिम विधि के विरूद्ध नहीं होना चाहिए।

(4) इस सिद्धांत को लागू करके किसी अवैध वक्फ को वैधता नहीं प्रदान की जा सकती जैसे :-

पंजाब एण्ड सिंध बैंक बनाम **अन्जुमन हिमायतें इस्लाम ए० आई० आर० (1935) लाहौर 596**

इस वाद में वक्फ उद्देश्य की अनिश्चितता के कारण शून्य था अतः सादृश्य सिद्धांत का प्रयोग अवैध माना गया।

(5) वक्फ की औपचारिकताएँ :-

(क) वक्फ सृजन के लिए किसी विशिष्ट औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती बस वाकिफ द्वारा वक्फ सृजन करने के मंतव्य की घोषणा कर देना ही पर्याप्त है। वक्फ लिखित भी हो सकता है और मौखिक भी हो सकता है।

(ख) पंजीकरण (वक्फ अधिनियम, 1995 के पूर्व की स्थिति)- सौ रूपये से अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति का वक्फ यदि लिखित रूप में किया गया हो तो इसका पंजीकरण आवश्यक है। वस्तुतः इण्डियन रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1908 की धारा 17(1) (b) के अनुसार सौ रूपये से अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति का हित हस्तान्तरित करने वाला कोई गैर-वसीयती दस्तावेज पंजीकृत न होने पर अदालतों द्वारा मान्य नहीं होता है। अतः मुस्लिम विधि के अंतर्गत पंजीकरण अनिवार्य नहीं है परंतु सौ रूपये से अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति का लिखित वक्फ पंजीकरण के बिना अदालतों द्वारा स्वीकार्य नहीं होता।

(ग) पंजीकरण (वक्फ अधिनियम, 1995 के पश्चात की स्थिति) - वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 36 के तहत वक्फ का पंजीकरण आवश्यक है और इस संबंध में आवेदन मुतवल्ली, वाकिफ, उसके वंशज एवं हितग्राही दे सकते हैं।

<u>कब्जे का हस्तान्तरण</u> :- वक्फ गठित करने के लिए कब्जे का परिदान अनिवार्य नहीं है।

परंतु शिया विधि के अनुसार - वक्फ की घोषणा के साथ मुतवल्ली की नियुक्ति एवं उसके पक्ष में सम्पत्ति के कब्जे का परिदान आवश्यक है।

यदि वाकिफ ने स्वयं को ही मुतवल्ली नियुक्त कर लिया हो तो कब्जे का परिदान आवश्यक नहीं होगा।

<u>वक्फ सृजन के प्रकार या तरीके</u>

(1) गैर वसीयती या घोषणा द्वारा - वाकिफ यदि अपनी सम्पत्ति का वक्फ सृजित करके इसे अपने जीवन काल में ही प्रभावी चाहता हो तो वह गैर-वसीयती अर्थात् तत्काल प्रभावी होने वाला वक्फ कहलाता है।

(2) **वसीयती वक्फ** - जब वक्फ का सृजन वसीयत के द्वारा होता है। तो वह वसीयती वक्फ होती है और इस संबंध में वसीयत के सारे नियम लागू होते है।

(3) **प्रयोग द्वारा वक्फ** - चिरकाल से यदि किसी अचल सम्पत्ति का उपयोग धार्मिक या परोपकारी कार्यो के लिए होता रहा है तो विधिक परिकल्पना होगी कि इस संबंध में वक्फ सृजित हुआ होगा। यदि विपरीत सिद्ध न किया जाए। इस संबंध में यह भी आवश्यक है कि प्रयोग की निरंतरता टूटनी नहीं चाहिए।

<u>वक्फ के हितग्राही</u> :-

(1) वक्फ के हितग्राही में किसी धर्म, मूलवंश, जाति तथा स्वास्थय के आधार पर कोई भी भेद नहीं माना गया है। शिया विधि में वाकिफ स्वयं के लिए वक्फ सृजित नहीं कर सकता और यदि वह ऐसा करता है तो वक्फ शून्य होगा।

सुन्नी विधि के तहत वाकिफ ऐसा कर सकता है परंतु उसकी मृत्यु के बाद सम्पत्ति अल्लाह में निहित मानी जायेगी। परंतु वाकिफ अपनी मृत्यु के बाद क्रमागत हितों के लिए वक्फ नहीं कर सकता।

<u>मुतवल्ली</u>

वह व्यक्ति जो वक्फ के उद्देश्यों के संदर्भ में एवं उसकी परिपूर्ति के लिए वक्फ की सम्पत्ति का प्रबंधन, देखरेख एवं उसके लाभांश को उद्देश्यों के लिए विनियोजित करता है, मुतवल्ली कहा जाता है।

विद्या वरूथी बनाम बालू स्वामी अय्यर AIR (1922) P.C. 123

मुतवल्ली ही ईश्वर को प्रदान की गई सम्पत्ति का प्रबंध ईश्वर के सेवक के रूप में सम्पत्ति के कल्याण के लिए करता है।

मुतवल्ली की नियुक्ति - वक्फ एक्ट 1995 के पूर्व

अधिनियम के पूर्व मुतवल्ली की नियुक्ति वरीयताक्रम में वर्णित निम्न व्यक्तियों द्वारा की जाती थी -

(1) वाकिफ

(2) वाकिफ का निष्पादक

(3) मृत्यु शैय्या से स्वयं मुतवल्ली

(4) न्यायालय

(5) धर्म सभा

(1) वाकिफ द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति :-

मुतवल्ली की नियुक्त करने का पूर्ण अधिकार मुचयतः वाकिफ को ही प्राप्त है। अपनी इच्छानुकूल वह किसी भी सक्षम व्यक्ति को वक्फ-सम्पत्ति का मुतवल्ली बना सकता है। यदि चाहे तो वह स्वयं अपनी नियुक्ति भी वक्फ के प्रथम मुतवल्ली के रूप में कर सकता है। वह उन व्यक्तियों की एक क्रमबद्ध सूचीं भी तैयार कर सकता है जिन्हें एक के बाद दूसरे मुतवल्ली के रूप में नियुक्त किया जा सके। भविष्य में मुतवल्लियों के रूप में कार्य करने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति अथवा उनके चयन के लिये किसी भी विस्तृत योजना का उल्लेख भी वाकिफ कर सकता है।

(2) वाकिफ के निष्पादक द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति :-

वाकिफ यदि मुतवल्ली की नियुक्ति करने से पूर्व ही दिवंगत हो जाय और वक्फनामा भी इसकी नियुक्ति के बारें में मौन हो तो वाकिफ के निष्पादक को वाकिफ की भाँति ही मुतवल्ली की नियुक्ति का प्राधिकार प्राप्त है।

(3) मुतवल्ली द्वारा नियुक्ति :-

(क) यदि वर्तमान मुतवल्ली मरणासन्न हो, और

(ख) अपने जीवन की आशा छोड़ चुका हो तथा उपर्युक्त विधियों से दूसरे मुतवल्ली की नियुक्ति तुरंत सम्भव न हो सके, तो वह मृत्यु-शैया से ही अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति कर सकता है।

(4) न्यायालय द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति :-

उपरोक्त वर्णित किसी उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति संभव न होने पर, अंततः मुतवल्ली की नियुक्ति न्यायालय द्वारा की जाती है। मुतवल्ली की नियुक्ति में हितग्राहियों का हित सर्वोपरि होना चाहिए।

(5) धर्म सभा द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति :-

कभी-कभी मुतवल्ली का चुनाव धर्म-सभा द्वारा भी होता है। धर्म-सभा से तात्पर्य किसी समुदाय-विशेष के गणमान्य व्यक्तियों के ऐसे जनसमूह से है जिसमें उस समुदाय के धार्मिक एवं लोकहितकारी विषयों पर चर्चा की जाती हो।

वक्फ एक्ट 1995 के पश्चात :- **अधिनियम की धारा 63 के अनुसार** जब वक्फ के मुतवल्ली का पद खाली हो, एवम् वक्फ की शर्तो के अनुसार नियुक्ति न की जा सकती हो अथवा जहाँ किसी व्यक्ति का मुतवल्ली के रूप में कार्य करने का अधिकार विवादित हो तो वक्फ बोर्ड किसी ऐसे व्यक्ति को जो इस संबंध में उचित हो, तथा ऐसी शर्तो पर जो उचित हो नियुक्ति कर सकता है।

मुतवल्ली कौन हो सकता है -

कोई भी व्यक्ति जो स्वस्थचित्त व वयस्क हो मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है। परंतु यदि मुतवल्ली का पद पैतृक हो और अंतिम मुतवल्ली की मृत्यु हो गई हो, और अगला मुतवल्ली कोई वयस्क न नियुक्त किया जा सकता हो तो अवयस्क को मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है। मुतवल्ली का पद पैतृक निम्न स्थितियों में होता है - (क) जब वक्फ विलेख में वाकिफ द्वारा ऐसा वर्णित हो, (ख) कोई स्थानीय प्रथा हो, परंतु इस संबंध में यह महत्वपूर्ण है कि चूँकि शरियत एक्ट द्वारा प्रथाओं का महत्व समाप्त कर दिया गया है इसलिए जब तक न्यायालय प्रथा को मान्यता न दे किसी प्रथा के द्वारा मुतवल्ली का पद पैतृक नहीं माना जा सकता। किसी भी

महिला को मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है, परंतु यदि मुतवल्ली के पद के साथ कुछ धार्मिक कार्यों का भी सम्पादन करना हो। जैसे - (1) सज्जादनशीन (धार्मिक प्रमुख) (2) इमाम (धापर्मिक प्रार्थनाओं का नेतृत्व करने वाला) (3) कातिब (धर्मोपदेशक) (4) दरगाह के मुजावर इत्यादि (दरगाह का सामान्य कार्य करने वाले) तो महिला व गैर मुस्लिम की नियुक्ति मुतवल्ली के रूप में नहीं हो-सकती अर्थात् प्रबंधकीय या गैर धार्मिक कार्यों के लिए या धार्मिक कार्य पद से संलग्न हों और महिला उस कार्यों के लिए किसी पुरूष की नियुक्ति कर सकती हो तो महिला मुतवल्ली नियुक्त हो सकती है। गैर मुस्लिम व्यक्ति भी मुतवल्ली का पद ग्रहण कर सकता है। मुतवल्ली सह मुतवल्ली की नियुक्ति भी वक्फ के उद्देश्यों के संदर्भ में कर सकता है।

कार्यों एवं शक्तियाँ :-

(1) मुतवल्ली का पद प्रबंधक की तरह होता है। यद्यपि इसके कार्य न्यासी की तरह होते है। परंतु अधिकार एवं दायित्वों में असमानता होती है।

(2) मुतवल्ली का मुख्य कार्य वक्फ के लाभांशों से वक्फ के उद्देश्यों की पूर्ति करना तथा वक्फ के निर्देशों के अनुसार वक्फ की सम्पत्ति का प्रबंध एवं प्रशासन करना।

(3) मुतवल्ली को वक्फ के अधिकारी के तौर पर किसी भी सम्पत्ति पर कब्जे का अधिकार होता है। (वक्फ की)

(4) धारा 53 वक्फ अधिनियम के अनुसार - वक्फ विलेख मे कोई भी बात होते हुए मुतवल्ली वक्फ की सम्पत्ति का विक्रय बिना बोर्ड की अनुमति के नहीं कर सकता।

(5) धारा 51 के अनुसार - मुतवल्ली बिना बोर्ड की अनुमति के वक्फ की सम्पत्ति का विक्रय, विनिमय, हिबा चाहे वक्फ विलेख में कोई भी बात हो नहीं कर सकता। बोर्ड यह अनुमति निम्न आधार पर देगा :-

(क) यदि ऐसा करना वक्फ के हित में है।

(ख) यदि वह वक्फ के उद्देश्यों से संगत है या पर्याप्त प्रतिफल मिल रहा है।

(6) वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 56 के अनुसार - बोर्ड की अनुमति के बाद मुतवल्ली एक से तीन साल का पट्टा वक्फ की सम्पत्ति का कर सकता है।

(7) मुतवल्ली बिना न्यायालय या वक्फ के निर्देशों के ऋण नहीं ले सकता। यदि वह ऐसा करता है तो यह उसका व्यक्तिगत ऋण माना जायेगा।

(8) चूँकि मुतवल्ली का पद व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित रहता है अत: उसका पद अन्तरण योग्य नहीं है।

मुतवल्ली का हटाया जाना

मुतवल्ली को पद-मुक्त कर देने का अधिकार वाकिफ ने यदि अपने पास पहले से ही सुरक्षित न कर लिया हो तो एक बार विधिवत नियुक्ति हो जाने पर स्वयं वाकिफ भी मुतवल्ली को नहीं हटा सकता है। न्यायालय को चूँकि अपने अधिकार-क्षेत्र में स्थित प्रत्येक वक्फ का संरक्षक माना जाता है इसलिए वक्फ-सम्पत्ति अथवा हितग्राहियों के हितों को ध्यान में रखते हुए यदि आवश्यक हो तो न्यायालय मुतवल्ली को पद से हटा सकता है।

वक्फ अधिनियम 1995 धारा 64 के अनुसार वक्फ बोर्ड मुतवल्ली को निम्न में से किन्हीं आधारों पर हटा सकती है :-

(1) धारा 61 के तहत यदि मुतवल्ली किसी दण्डनीय अपराध से एक बार दण्डित हुआ हो। धारा 61 के अनुसार पंजीकरण का आवेदन न देने पर, आयकर रिटर्न (विवरणी) दाखिल न करने पर, बोर्ड के निदेशों का अपालन करने पर इत्यादि आधारों पर दोषसिद्धि होने पर 8000/- रू० तक दण्ड दिया जा सकता है।

(2) यदि मुतवल्ली आपराधिक न्यास-भंग करता है।

(3) यदि मुतवल्ली अननुमोचित दिवालिया घोषित किया जा चुका है।

(4) यदि मुतवल्ली अस्वस्थ मस्तिष्क के कारण वक्फ के कार्यों को करने में असमर्थ है।

(5) शराब या स्वापक औषधि लेता हो।

(6) यदि मुतवल्ली वक्फ के खिलाफ विधिक सलाहकार नियुक्त कर दिया गया हो।

(7) यदि मुतवल्ली दो वर्ष तक वक्फ के खातों का हिसाब नहीं रखता।

(8) यदि मुतवल्ली वक्फ से संबंधित पट्टे में या संविदा में हितबद्ध हो जाता है।

(9) यदि मुतवल्ली कर्त्तव्य में उपेक्षा करता है।

(10) यदि मुतवल्ली वक्फ बोर्ड, केंद्र तथा राज्य सरकार के निर्देशों की उपेक्षा करता है इत्यादि।

वक्फ-अल-औलाद (प्राइवेट वक्फ)

यह व्यक्तिगत वक्फ होता है जो कि सामान्य तौर पर अपने परिवार के सदस्यों के प्रलाभ के लिए सृजित किया जाता है।

राधाकान्त देव बनाम कमिशनर हिन्दू इन्डाउमेन्ट उड़ीसा

उक्त वाद के अनुसार वक्फ में अन्ततः लाभ ईश्वर के लिए सुरक्षित रहता है और सम्पत्ति संतानों में निहित होती है और सम्पत्ति का उपयोग वाकिफ के संतानों की देखरेख के लिए किया जाता है। परिवार के सभी वंशजों के समाप्त हो जाने पर सम्पत्ति ईश्वर में निहित मानी जाती है। इसे व्यक्तिगत वक्फ या वक्फ-अल-औलाद कहते हैं।

न्यायालयों में इस बात पर मतभेद था कि व्यक्तिगत वक्फ केवल वाकिफ के परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण के लिए ही सृजित किया जा सकता है। इस मतभेद को इस वाद में दूर कर दिया गया।

अब्दुल फता मोहम्मद बनाम रूसोमाय घूर चौधरी (1894) 22, 1 A - 76

निम्न नियम इस केस में प्रतिपादित किये गये :-

(1) पारिवारिक वक्फ का सृजन किया जा सकता है।

(2) परिवार के सदस्यों के लाभ के साथ परोपकारी उद्देश्यों के लिए भी व्यवस्था करना होगा।

(3) परोपकारी कार्यों का अंश पर्याप्त होना चाहिए।

(4) यह अंश समवर्ती होना चाहिए।

इसके बाद मुस्लिम वक्फ विधिमान्यकरण अधिनियम 1913 पारित किया गया और उसमें पारिवारिक वक्फ के लिए निम्न प्रावधान किये गये।

धारा 3 के अनुसार - इस्लाम में आस्थावान कोई व्यक्ति धार्मिक या परोपकारी प्रयोजनों के अलावा वक्फ का सृजन निम्न उद्देश्यों के लिए कर सकता है। :-

(1) परिवार, संतान, वंशजों के पूर्ण या आंशिक भरण-पोषण के लिए।

(2) सुन्नी हनफी मुसलमान स्वयं के भरण-पोषण या ऋणों के भुगतान के लिए, बशर्ते वक्फ की आय परोक्ष या अपरोक्ष रूप से किसी ऐसे उद्देश्य के लिए सुरक्षित हो जो कि मुस्लिम विधि में परोपकारी या धार्मिक माने जाते हैं धर्मार्थ दान की दूरस्था के कारण वक्फ शून्य नहीं होगा।

तमिलनाडु वक्फ बोर्ड बनाम लरिब्स दरगाह पारूवल्ली I.T. 2008 (1) 123 इस वाद में परोपकारी प्रयोग का अंश कम था तथा मुतवल्ली भी वंशानुगत थे फिर भी इसको वक्फ-अल-औलाद माना गया।

उपरोक्त अधिनियम शिया एवं सुन्नी दोनों पर लागू होता है। (सिवाय धारा 3(B) के)।

अध्याय 13

उत्तराधिकार

सार-परिचय

- प्रस्तावना
- इस्लाम पूर्व की प्रथायें
- उत्तराधिकार के सामान्य सिद्धांत
- अपवर्जन का नियम
  - मानवहत्या
  - अधर्मजता
  - धार्मिक भिन्नता
  - स्थानीय प्रथा अथवा अधिनियम के अन्तर्गत पुत्रियों का अपवर्जन
- उत्तराधिकार से सम्बन्धित कुछ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या
- उत्तराधिकार की सुन्नी विधि
- उत्तराधिकार के तीन वर्ग
- औल का सिद्धांत
- रद्द का सिद्धांत
- उत्तराधिकार की शिया विधि

प्रस्तावना :-

मुस्लिम विधि के उत्तराधिकार के नियम न्यायोचित एवं अपने आप में परिपूर्ण है। उत्तराधिकार वसीयती तथा निर्वसीयती दो प्रकार का होता है। मृतक की सम्पत्तियाँ उसकी इच्छानुसार इच्छित व्यक्तियों में विभाजित होने पर उत्तराधिकार को वसीयती उत्तराधिकार कहते हैं। निर्वसीयसती उत्तराधिकार में मृतक की संपदा उसके विधिक उत्तराधिकारियों के पूर्व-निर्धारित हिस्सों में विभाजित होकर उनमें निहित हो जाती है। निर्वसीयती उत्तराधिकार को उत्तराधिकार अथवा विरासत तथा वसीयती-उत्तराधिकार को वसीयत की संज्ञा दी जाती है।

इस्लाम-पूर्व की प्रथायें :-

इस्लाम पूर्व के अरब समाज में उत्तराधिकार प्रथागत नियमों द्वारा विनियमित होता था। उत्तराधिकार की सारी व्यवस्था पुरूष प्रधान थी। महिलाएँ एवं मातृबंधुओं को भी उत्तराधिकार का कोई अधिकार नहीं प्राप्त था। इस्लाम-पूर्व की प्रथाओं में निहित उत्तराधिकार के प्रमुख नियम निम्नलिखित थे -

(1) महिलाओं तथा मातृ-बंधुओं (Cognates) को उत्तराधिकारी नहीं माना जाता था।

(2) सामान्यत: मृतक के निकटतम सगोत्र पुरूष-संबंधी (nearest male agnates) ही मृतक के उत्तराधिकारी माने जाते थे।

(3) माता-पिता तथा अन्य पूर्वजों की तुलना में वंशजों को प्राथमिकता मिलती थी।

(4) एक ही वर्ग के सगोत्र-संबंधियों के बीच में सम्पत्तियों का बंटवारा प्रति-व्यक्ति के आधार पर किया जाता था।

इस्लाम द्वारा संशोधन

इस्लाम के आविर्भाव के पश्चात् उपर्युक्त प्रथागत नियमों में कुरान तथा पैगम्बर मुहम्मद की परम्पराओं द्वारा उत्तराधिकार के नियमों में संशोधन हुआ। इस प्रकार, मृतक के सभी निकट संबंधियों के प्रति न्याय हो सका तथा महिलाओं तथा मातृ-बंधुओं को उत्तराधिकारी माना गया। कुरान ने महिलाओं तथा वृद्ध माता-पिता एवं पूर्वजों को उत्तराधिकार का समान अधिकार देते हुए उनके निर्धारित हिस्सों का भी उल्लेख कर दिया है ताकि

इसमें किसी परिवर्तन की सम्भावना न रहे। उल्लेखनीय है कि कुरान चूँकि एक दैवी-मूल (divine origin) की पवित्र-पुस्तक के रूप में मान्य है, अतएव इसमें वर्णित उत्तराधिकारियों तथा उनके हिस्सों में किसी प्रकार का व्यतिक्रम अथवा परिवर्तन सम्भव नहीं है, अर्थात् इनके अधिकार सुरक्षित है। उत्तराधिकार के नियमों में इस्लाम द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित संशोधन किये गये हैं -

(1) महिलाएँ तथा मातृ-बंधु सक्षम उत्तराधिकारी माने गये हैं।

(2) पति तथा पत्नी परस्पर एक-दूसरे के उत्तराधिकारी हैं।

(3) वंशजों को माता-पिता एवं पूर्वजों की तुलना में प्राथमिकता नहीं प्रदान की गयी है; पूर्वजों तथा वंशजों के अधिकार समान् है।

(4) महिला तथा पुरूष उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार का समान अधिकार है परंतु, महिला उत्तराधिकारियों का हिस्सा सामान्यत: पुरूष उत्तराधिकारियों के हिस्सों का आधा रहता है।

अतएव, इस व्यवस्था में नये वर्ग के उत्तराधिकारियों के साथ ही प्रथागत नियमों के उत्तराधिकारी भी इस्लामी व्यवस्था में उत्तराधिकारी माने गये हैं।

परंतु, प्रथागत नियमों को किस सीमा तक संशोधित किया जाये, इस बात को लेकर विधिशास्त्रियों के बीच मतभेद उत्पन्न हो गया। कुरान के उपबंधों की शिया तथा सुन्नी विधिशास्त्रियों द्वारा की गयी इस व्याख्या में भिन्नता होने के कारण ही इन दोनों संप्रदायों के उत्तराधिकार के नियमों में भी भिन्नता है।

उत्तराधिकार के सामान्य सिद्धांत

(1) दाय-योग्य सम्पत्ति की प्रकृति (Nature of Heritable Property) :-

मृतक की संपदा में से अन्त्येष्टि-संस्कार, उसके ऋणों का भुगतान तथा वसीयतदारों की संपत्तियाँ प्रदान कर देने के पश्चात् जो सम्पत्ति बची रहती है उसे दायय्योग्य संपत्ति कहते है।। दायय्योग्य संपत्ति ही मृतक के उत्तराधिकारियों में उत्तराधिकार-नियमों के अंतर्गत विभाजित की जाती है। मुस्लिम विधि के अंतर्गत मृतक द्वारा छोड़ी गयी चल-अचल, मूर्त-अमूर्त सभी प्रकार की संपत्ति दायय्योग्य मानी जाती है।

शिया विधि- शिया-विधि के अंतर्गत-संतान-विहीन विधवा मृतक पति की केवल चल संपत्तियों में से ही अपना निर्धारित हिस्सा (1/4) प्राप्त करने की अधिकारिणी मानी गयी है।

(2) संयुक्त अथवा पैतृक सम्पत्ति (Joint or Ancestral Property) :-

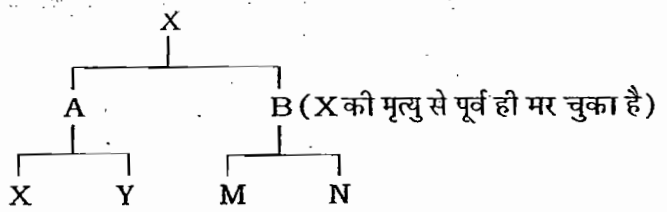
मुस्लिम विधि में संयुक्त या पैतृक-सम्पत्ति नहीं होती क्योंकि हिन्दू-विधि की सहदायिकी-सम्पत्ति की संकल्पना मुस्लिम विधि में नहीं है। फजी के अनुसार मुस्लिम मृतक की सभी संपत्तियाँ चाहे वे स्वार्जित हों चाहे उत्तराधिकार द्वारा प्राप्त पूर्वजों की संपत्तियाँ हो उसकी निजी संपदा मानी जाती है और मृतक के उत्तराधिकारीगण इन्हें उत्तराधिकार द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

(3) जन्म-स्वत्ववाद सिद्धांत (Doctrine of Right by Birth) :-

मुस्लिम विधि में जन्म स्वत्ववाद का सिद्धांत मान्य नहीं है। जन्म स्वत्ववाद हिन्दू-विधि का वह सिद्धांत है, जिसके अंतर्गत किसी पुरूष सदस्य के संयुक्त हिन्दू परिवार में जन्म ले लेने मात्र से ही संयुक्त या सहदायिकी संपत्ति में उसका हित निहित हो जाता है। मुस्लिम विधि के अंतर्गत किसी उत्तराधिकारी के पक्ष में संपत्ति का कोई भी हित तब तक निहित नहीं होता जब तक कि उस व्यक्ति का देहान्त न हो जाय जिसका वह उत्तराधिकारी है।

(4) प्रतिनिधित्व का सिद्धांत (Doctrine of Representation) :-

मुस्लिम विधि के अंतर्गत प्रतिनिधित्व का सिद्धांत मान्य नहीं है। इस सिद्धांत के अनुसार मृतक की मृत्यु से पहले ही दिवंगत हो चुके पुत्र का पुत्र (son of a predeceased son) अपने दिवंगत पिता का प्रतिनिधित्व करके मृतक की सम्पदा में जो हिस्सा उसके पिता को मिलना चाहिये था, उसे प्राप्त करने का अधिकारी माना जाता है। दूसरे शब्दों में, प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के अनुसार, पुत्र का पुत्र अपने पिता का प्रतिनिधित्व करेगा, यदि उसका पिता उत्तराधिकार का प्रश्न उठने से पहले ही मर चुका है।



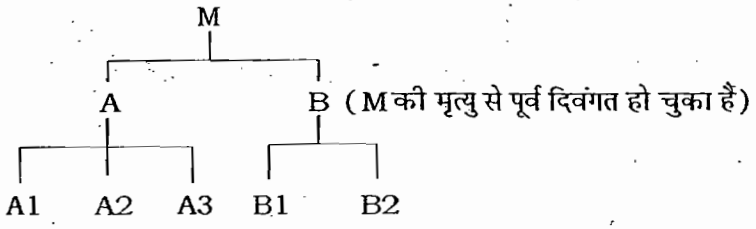
उपरोक्त चित्र में X के पुत्र B की मृत्यु X के पहले हो जाती है अत: B के बच्चे M और N अपने पिता B का प्रतिनिधित्व करते हुएं दादा X की सम्पत्ति मे उत्तराधिकार प्राप्त नहीं करेंगे।

(5) <u>प्रति व्यक्ति एवं प्रति शाखा का विभाजन</u> :-

शिया विधि में विभाजन **प्रतिशाखा** एवं **सुन्नी विधि में** विभाजन **प्रतिव्यक्ति** होता है।

सुन्नी विधि के अंतर्गत एक ही वर्ग के उत्तराधिकारियों के बीच में सम्पत्ति का विभाजन प्रति-व्यक्ति के नियम के अनुसार किया जाता है।

शिया विधि के अंतर्मत एक ही वर्ग के उत्तराधिकारियें के बीच में सम्पदा का विभाजन शाखावार अर्थात् प्रति-शाखा के नियम द्वारा किया जाता है।



शिया विधि के अनुसार उक्त चित्र में शिया विधि में A1, A2, A3 और B1, B2 का हिस्सा क्रमश: 1/6, 1/6, 1/6 एवं 1/4, 1/4 होगा अर्थात् यह विभाजन प्रतिशाखा के अनुसार होगा।

सुन्नी विधि में यह विभाजन प्रतिव्यक्ति के अनुसार होगा और A1, A2, A3, B1 एवं B2 को समान रूप से 1/5 भाग प्राप्त होगा।

ध्यातव्य है कि उपरोक्त उदाहरण में A और B की मृत्यु M के पहले हो चुकी है।

<u>उत्तराधिकार में महिलाओं के अधिकार</u>:-

महिलाओं को भी उत्तराधिकार का हक होता है परंतु सामान्यत: उनका हिस्सा समकक्ष पुरूष उत्तराधिकारी से आधा होता है।

गर्भस्थ शिशु :- यदि मृत्यु के समय गर्भ में हो तो उत्तराधिकार पा सकता है यदि जीवित जन्म ले ले।

सौतेली संतानों को उत्तराधिकार नहीं होता।

दो व्यक्ति यदि पारस्परिक उत्तराधिकारी है और उनकी मृत्यु साथ होती है तो यह उत्तराधिकार समाप्त हो जाता है।

यदि व्यक्ति 7 वर्ष से लापता है तो उसकी मृत्यु मानकर उत्तराधिकार प्रारम्भ किया जा सकता है।

यदि कोई उत्तराधिकारी न हो तो राज्य सरकार को सम्पत्ति चली जायेगी।

यदि पक्षकारों का विवाह विशेष विवाह अधिनियम 1954 के अंतर्गत हुआ हो तो भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 के अनुसार उत्तराधिकार निर्धारित होगा।

<u>अपवर्जन का नियम</u> :- निम्न स्थितियों में उत्तराधिकारी उत्तराधिकार प्राप्त करने से अपवर्जित कर दिया जाता है।

(1) यदि उत्तराधिकारी ने मृतक की हत्या कर दी हो परंतु शिया विधि में आशय के साथ हत्या आवश्यक है।
(2) नाजायज संतान को शिया विधि में कोई अधिकार नहीं होता। परंतु सुन्नी विधि में वह माता से उत्तराधिकार पा सकता है।
(3) **नजदीकी रक्त संबंधी** दूरस्थ रक्त संबंधी को अपवर्जित करता है जैसे पिता द्वारा दादा, पुत्र द्वारा पौत्र।
(4) पक्षकार यदि मृतक हो तो उसके धर्म-परिवर्तन का उत्तराधिकार पर फर्क पड़ता है। परंतु यदि उत्तराधिकारी धर्म परिवर्तित कर ले तो इस परिवर्तन का उसके उत्तराधिकार संबंधी अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

<u>सुन्नी उत्तराधिकार विधि</u> -

(अ) **प्रथम श्रेणी** :- सुन्नी उत्तराधिकार के संबंध में निम्न 3 वर्ग वर्णित है :-

(1) हिस्सेदार (कुरानिक उत्तराधिकारी)
(2) अवशिष्टग्राही (पितृबंधु उत्तराधिकारी)
(3) दूरस्थ रक्त संबंधी (सहोदर उत्तराधिकारी)

(1) <u>प्रथम वर्ग :- हिस्सेदार (Shares)</u> :-

इस वर्ग के उत्तराधिकारी कुरानिक उत्तराधिकारी (Quranic heirs) भी कहे जाते हैं, क्योंकि उनको तथा इनके निर्दिष्ट हिस्सों को स्वयं कुरान में स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिया गया है। इसके उपबंध अपरिवर्तनशील है। परिणामतः न तो इन्हें उत्तराधिकारी की कोटि से हटाया जा सकता है और न ही इनके निधारित हिस्सों में कोई परिवर्तन संभव है। किसी मृतक का उत्तराधिकार प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथम इसी वर्ग के उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति का विभाजन किया जाता है। इन्हें देने के पश्चात् ही सम्पत्ति (यदि बची रही तो) द्वितीय वर्ग के उत्तराधिकारी प्राप्त कर सकते हैं।

कुल 12 हिस्सेदार होते हैं। जिसमें पुरूष वर्ग के 4, महिला वर्ग के 8 हिस्सेदार होते हैं। ये हिस्सेदार निम्नलिखित हैं :-

(1) पति; (2) पिता; (3) दादा; (4) सहोदर भाई; (5) पत्नी (विधवा); (6) माता;
(7) दादी; (8) सहोदर बहन; (9) पुत्री; (10) पौत्री; (11) सगी बहन; (12) सौतेली बहन

(2) <u>द्वितीय वर्ग :- अवशिष्टग्राही (Residuaries)</u> :-

इस वर्ग के उत्तराधिकारियों को पितृ-बंधु उत्तराधिकारी की संज्ञा भी दी गयी है। अवशिष्टग्राही वे उत्तराधिकारी हैं जिन्हें प्रथम वर्ग के उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति का विभाजन कर देने के बाद की बची हुई अर्थात् अवशिष्ट सम्पत्ति प्राप्त होती है। स्वाभाविक है कि इनके हिस्से निर्धारित नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक विभाजन में बची हुई सम्पत्ति की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है।

(क) वंशज
(ख) पूर्वज एवं
(ग) पिता के वंशज और
(घ) वास्तविक पितामह के वंशज

(3) <u>तृतीय वर्ग :- दूरस्थ रक्त संबंधी (Distant Kindreds)</u> :-

इस वर्ग के उत्तराधिकारी मृतक के रक्त-संबंधी हैं जो उपर्युक्त दोनों वर्गों के अंतर्गत सम्मिलित नहीं हो पाये हैं। इन्हें सहोदर-उत्तराधिकारी भी कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि वरीयता-क्रम में अंतिम वर्ग के उत्तराधिकारी होने के कारण किसी हिस्सेदार अथवा अवशिष्टग्राही की उपस्थिति में उत्तराधिकार से इन्हें वंचित होना पड़ता है।

I वर्ग - मृतक के पूर्वज, जो हिस्सेदार या अवशिष्टग्राही नहीं है जैसे नाना-नानी इत्यादि।
II वर्ग - मृतक के वंशज जो हिस्सेदार या अवशिष्टग्राही नहीं हैं जैसे - पुत्री की संतान इत्यादि।
III वर्ग - माता-पिता के वंशज जो हिस्सेदार या अवशिष्टग्राही नहीं है जैसे - सगे भाई की पुत्री इत्यादि।

IV वर्ग – अवशिष्ट ग्राहियों के अतिरिक्त पूर्वजों के अन्य वंशज अवशिष्ट ग्राहियों के संबंध में निम्न नियम लागू होंगे :–

(क) यह वर्ग वरीयताक्रम में है अर्थात् प्रथम वर्ग द्वितीय को अपवर्जित कर देगा।

(ख) समीप डिग्री दूर वाली डिग्री को अपवर्जित कर देगी जैसे पुत्री की संताने पुत्र की पुत्री की संतानों को।

(ग) सगे नातेदारों को सौतेले नातेदारों की तुलना में वरीयता दी जायेगी।

(घ) अवशिष्टग्राही की संतानों को दूरस्थ नातेदारों की तुलना में वरीयता दी जायेगी।

(ब) <u>द्वितीय श्रेणी</u> :–

उत्तराधिकारियों की प्रमुख श्रेणी में उपरोक्त वर्गों के, वरीयत क्रम में, उत्तराधिकारी न होने पर द्वितीयक श्रेणी के उत्तराधिकारियों को अधिकार प्राप्त हो पाता है। परंतु ये उत्तराधिकारी अपवाद स्वरूप ही कभी उत्तराधिकारी प्राप्त करते हैं। इस श्रेणी के उत्तराधिकारी निम्नलिखित हैं –

(1) संविदा द्वारा उत्तराधिकारी
(2) अभिस्वीकृत संबंधी
(3) सर्वस्व वसीयतदार
(4) राजगामित्व की प्रक्रिया द्वारा, सरकार

(1) <u>संविदा द्वारा उत्तराधिकारी</u> :– सहायक वारिसों में सर्वप्रथम संविदा द्वारा उत्तराधिकारी आते हैं। संविदा द्वारा उत्तराधिकार के दो कारण हो सकते हैं – **(i)** विमुक्ति द्वारा, और **(ii)** मित्रता द्वारा। प्रथम प्रकार को वला-अल-इत्क कहते हैं। यदि एक व्यक्ति अपने गुलाम को आजाद कर देता है तो वह गुलाम की सम्पत्ति में उत्तराधिकार का हक प्राप्त कर लेता है, परंतु गुलाम को अपने मालिक की सम्पत्ति मं उत्तराधिकार का हक नहीं होता है। दासता अधिनियम, 1843 के पश्चात् उत्तराधिकारियों की यह श्रेणी मृतप्राय हो गयी है।

दूसरे प्रकार को वला-अल-मुवालत कहा जाता है। उदाहरणात: हसन इन्साउल्लाह नामक एक अजनबी व्यक्ति से यह संविदा करता है कि यदि हसन की मृत्यु हो जाती है तो इन्साउल्लाह इस शर्त पर उत्तराधिकार का अधिकारी होगा कि हसन द्वारा जो जुर्माना या निष्कृति धन (दिया) का भुगतान किया जाना है, वह इन्साउल्लाह द्वारा देय होगा। भारत में यह नियम मुग़तत्व के महत्व का हो गया है क्योंकि भारत में अपराधों के लिये दिया का भुगतान नहीं होता है।

(2) <u>अभिस्वीकृत बंधु</u> – ये ऐसे व्यक्ति होते है जिनके वंश के बारे में जानकारी न हो और जिनके पक्ष में मृतक ने बंधु होने की अभिस्वीकृति प्रदान की हो। यह अभिस्वीकृति स्वयं द्वारा न दी जाकर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी जाती है।

(3) <u>सर्वस्व वसीयतदार</u> – उपर्युक्त 3 की अनुपस्थिति में एक मुसलमान को यह अधिकार है कि वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को किसी भी व्यक्ति को वसीयत कर दे। ऐसे व्यक्ति को सावभौमिक वसीयतदार कहते हैं।

(4) <u>राजगामित्व की प्रक्रिया द्वारा, सरकार</u> – अंतिम रूप से सरकार ही सम्पत्ति की वारिस होती है।

<u>सम्पत्ति वितरण की योजना (Scheme of Distribution)</u>

उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति के वितरण की प्रक्रिया निम्न है-

(1) सर्वप्रथम यह ज्ञात किया जाता है कि मृतक के संबंधियों में प्रथम वर्ग के उत्तराधिकारी कौन-कौन से व्यक्ति हैं और उनका निर्दिष्ट हिस्सा क्या है? इनके पूर्व निर्धारित हिस्से इस वर्ग के सभी उत्तराधिकारियों में एक साथ ही वितरित कर दिये जाते हैं। मृतक की सम्पदा यदि प्रथम-वर्ग के उत्तराधिकारियों अर्थात् हिस्सेदारों में वितरित करने में ही समाप्त हो जाये तो अवशिष्टग्राहियों को कुछ भी सम्पत्ति नही मिल पाती और वितरण की

प्रक्रिया यहीं समाप्त हो जाती है।

(2) हिस्सेदारों को उनके निर्दिष्ट हिस्से प्रदान करने के बाद भी कुछ सम्पत्ति अवशिष्ट रह जाने पर द्वितीय वर्ग के उत्तराधिकारियों में इसे विभाजित कर दिया जाता है। इस प्रकार द्वितीय वर्ग के उत्तराधिकारी अवशिष्ट सम्पदा ही प्राप्त करते हैं। हिस्सेदारों के अभाव में पूरी दाय योग्य सम्पत्ति अवशिष्टग्राहियों के बीच ही वितरित होती है।

(3) मृतक का यदि कोई संबंधी प्रथम तथा द्वितीय वर्ग के उत्तराधिकारियों की कोटि में न हो तो उसकी सम्पदा तृतीय वर्ग अर्थात् दूरस्थ रक्त-संबंधियों में वितरित हो जाती है।

(4) दुर्भाग्यवश यदि दूरस्थ रक्त-संबंधी भी न हो तो सम्पदा वरीयता-क्रम में मृतक के उन उत्तराधिकारियों में निहित हो जाती है जो द्वितीयक वर्ग के उत्तराधिकारियों की कोटि में आते हों।

(5) इनमें से किसी के भी न रहने पर मृतक की सम्पदा अन्ततः सरकार द्वारा राजगामित्व के सिद्धांत के अंतर्गत जब्त कर ली जाती है।

<u>औल का सिद्धांत</u> :-

इस सिद्धांत के अनुसार हिस्सेदारों को हिस्से वितरित करने के बाद यदि संपदा कम पड़ जाती हैं और हिस्सों की संख्या बढ़ जाती है तो निर्धारित हिस्सों को प्रभावित किये बगैर उपलब्ध संपदा का संयोजन उत्तराधिकारियों में कर दिया जाता है। इसे वृद्धि का सिद्धांत भी कहते है।

परंतु यह करने में निम्न बातों का ध्यान रखा जाता है। :-

(1) हिस्सेदारों के हिस्सों का कुल योग इकाई रखा जाता है। ताकि संपदा कम न पड़े न बची रहे। इसका अर्थ है कि मृतक की पूरी सम्पदा उत्तराधिकारियों में उनके निर्धारित हिस्सों में विभाजित करने में समाप्त हो गयी और सम्पदा न तो शेष बची न कम हुई।

(2) चूँकि हिस्से कुरान द्वारा वर्णित है अतः इन्हें घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता, ताकि इनका अनुपात समान रहे ऐसी दशा में औल का नियम लागू करके उत्तराधिकारियों के हिस्सों को यथावत रखते हुए इनका योग ईकाई बना दिया जाता है।

(3) प्रक्रिया यह होती है कि अंश उत्तराधिकारियों के हिस्सों का योग तथा हर संपदा के टुकडों का योग प्रदर्शित करता है।

(4) औल के नियम के अंतर्गत किसी एक उत्तराधिकारी के हिस्से को कम करने की अपेक्षा सम्पत्ति के टुकड़ों को संख्या में वृद्धि कर दी जाती है।

(5) इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक उत्तराधिकारी के हिस्सों में आनुपातिक कटौती हो जाती है। जैसे - यदि कोई सुन्नी महिला अपने पति, माता एवं दो सगी बहनों को छोड़कर मरती है। तो इनका हिस्सा निम्नलिखित होगा :-

पति = 1/2

माता = 1/6

दो सगी बहने = संयुक्त 2/3

इनके हिस्सों का योग = 1/2+ 1/6 + 2/3 = 8/6

अतः हिस्से ज्यादा हैं और सम्पत्ति कम इसलिए भागों का जो हर यानि 6 उसको भी सम्पत्ति का हर बनाने क्योंकि हिस्सों का अनुपात वहीं रखना है और सम्पत्ति इकाई रखनी है।

1/2 या 3/6 औल के पश्चात् 3/8

1/6 या 1/6 औल के पश्चात् 1/8

2/3 या 4/6 औल के पश्चात् 4/8

3/8 +1/8 + 4/8 = 1

चूँकि सम्पत्ति ईकाई नहीं हो रही है इसलिए सम्पत्ति के हिस्सों में 2 की वृद्धि करके उसे ईकाई बना दिया जायेगा और इसे ही हिस्सेदारी की सम्पत्ति में उनका हिस्सा माना जायेगा। अर्थात् हिस्सेदारों का हिस्सा बराबर 3/8 1/8 4/8 होगा।

शिया विधि के संदर्भ में आनुपातिक कटौती की अपेक्षा बढ़े हुए हिस्से को पुत्री एवं सगी बहन के हिस्से में से घटा दिया जाता है।

रद्द का सिद्धांत:- यदि हिस्सेदारों में वितरण के बाद भी सम्पत्ति बच जाती है और अवशिष्टग्राही नहीं होते तो यह बचा हुआ हिस्सा पुनः हिस्सेदारों में लौट आता है और उनमें वितरित होता है। यह वितरण भी उनके तय अनुपातों के अनुसार होता है। इस बचे हुए भाग को पुनः पाने के अधिकार को ही रद्द या वापसी कहा जाता है।

यह वापसी मृतक के पति या पत्नी को नहीं मिलती।

शिया विधि के अनुसार पति और पत्नी के अलावा माता सहोदर भाई और बहन भी वापसी के हकदार नहीं होते।

शिया उत्तराधिकार विधि :- शिया विधि में उत्तराधिकार या तो वैवाहिक संबंधों के आधार पर होता है या फिर रक्त संबंधों के आधार पर। इस संबंध में उत्तराधिकारियों को निम्न 3 वर्गों में बाँटा गया है।

(1) वर्ग -1 :- माता-पिता, संतानें तथा वंशज

(2) वर्ग -2 :- वास्तविक एवं मिथ्या पितामह एवं पितामही, भाई और बहन, भाई और बहनों के वंश।

(3) वर्ग -3 :- (क) स्वयं के पैतृक अथवा मातृक चाचा, चाची या बुआ के वंशज, (ख) माता एवं पिता के मातृक एवं पैत्रिक चाचा (ग) पितामही एवं पिमही के चाचा चाची।

सुन्नी तथा शिया विधि के उत्तराधिकार में अंतर

1. संतान विहिन विधवा मृतक पति की चल-अचल सभी सम्पत्तियों का 1/4 भाग प्राप्त करती है।	1. संतान विहीन विधवा मृतक पति की केवल चल सम्पत्तियों का 1/4 भाग प्राप्त कर सकती है।
2. प्रतिनिधित्व का सिद्धांत नहीं लागू होता। मृतक की मृत्यु से पूर्व दिवंगत हो चुके पुत्र का पुत्र उत्तराधिकार से वंचित हो जाता है।	2. प्रतिनिधित्व का सिद्धांत लागू होता है। मृतक की मृत्यु से पूर्व दिवंगत पुत्र का पुत्र अपने दिवंगत पिता का प्रतिनिधित्व करके उसके हिस्से की सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है।
3. अवैध संतान माता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना जाता है।	3. अवैध संतान माता तथा पिता किसी की भी उत्तराधिकारी नहीं है।
4. मृतक की हत्या कारित करने वाला व्यक्ति प्रत्येक दशा में उत्तराधिकार से वंचित हो जाता है।	4. हत्या सदाशय होने पर ही हत्यारा उत्तराधिकार से वंचित किया जाता है। हत्या भूलवश या दुर्घटनावश हुई हो तो हत्यारा उत्तराधिकार से वंचित नहीं होता।
5. सुन्नी विधि में इस्लामपूर्व को अभिकरण को सिद्धांत मान्य है तथा पितृबंधु महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।	5. शिया विधि में अभिकरण का सिद्धांत मान्य नहीं है। पितृबंधु तथा मातृबंधु उत्तराधिकारियों को बराबर की मान्यता प्रदान की गयी है।
6. उत्तराधिकारियों के तीन वर्ग (अ) हिस्सेदार (ब) अवशिष्टग्राही तथा (स) दूरस्थ रक्त-संबंधी है।	6. उत्तराधिकारियों के दो वर्ग हैं : (अ) हिस्सेदार तथा (ब) अवशिष्टग्राही।

7. औल के सिद्धांत के अंतर्गत बढ़े हुए हिस्से की सभी उत्तराधिकारियों के हिस्से से आनुपातिक कटौती की जाती है।

8. रद्द के सिद्धांत के अंतर्गत केवल पति-पत्नी ही प्रत्यावर्तन में सम्मिलित नहीं हो सकते।

9. एक वर्ग परंतु विभिन्न शाखाओं के उत्तराधिकारीगण प्रति व्यक्ति के हिसाब से सम्पत्ति प्राप्त करते है।

10. यह नियम कि निकटतम उत्तराधिकारी दूरवर्ती को अपवर्जित कर देता है केवल पितृबंध उत्तराधिकारयिों पर ही लागू होता है।

11. यदि मृतक पिता तथा एक पुत्री छोड़ कर दिवंगत हुआ हो तो अवशिष्ट सम्पदा पिता को मिल जाती है। क्योंकि यह दो हैसियतों में उत्तराधिकार प्राप्त करता है।

12. जेष्ठाधिकार का सिद्धांत मान्य नहीं है और जेष्ठ पुत्र को किसी भी प्रकार की सम्पत्ति को प्राप्त करने का एकमात्र अधिकार नहीं रहता है।

7. औल के सिद्धांत के अंतर्गत बढ़े हुए हिस्से की कटौती सीधे पुत्री या बहन के हिस्से से की जाती है।

8. रद्द के सिद्धांत के अंतर्गत पति-पत्नी तथा कुछ परिस्थितियों में माता एवं सहोदर भाई-बहन भी प्रत्यावर्तन में भाग नहीं ले सकते हैं।

9. एक वर्ग परंतु विभिन्न शाखाओं के उत्तराधिकारीगण प्रतिशाखा के हिसाब से सम्पत्ति प्राप्त करते हैं।

10. यह नियम कि निकटतम उत्तराधिकारी दूरवर्ती को अपवर्जित करता है, सभी वर्ग के उत्तराधिकारियों पर लागू होता है।

11. ऐसी दशा में अवशिष्ट सम्पदा रद्द के नियमानुसार हिस्सेदारों के हिस्सों में सम्मिलति हो जाती है।

12. कुछ सम्पत्तियों के लिए जेष्ठाधिकार मान्य है। मृतक के केवल जेष्ठ पुत्र को ही मृतक की कुरान की प्रति, अंगूठी, तलवार तथा वस्त्र प्राप्त करने का अधिकार रहता है।

अध्याय 14

पूर्व-क्रयाधिकार (हकशुफा)

सार-परिचय

- परिभाषा
- अनिवार्य तत्व
- हकशुफा अधिकार की प्रकृति
- हकशुफा अधिकारियों का वर्गीकरण
  - (1) शुफा-ए-शरीफ(सह अंशधारी)
  - (2) शुफा-ए-खलीत(सुविधाओं के सहभोगी)
  - (3) शुफ-ए-जार (संयुक्त सम्पत्तियों के स्वामी)
- पक्षकारों के धर्म एवं सम्प्रदाय का प्रभाव
- अधिकार का प्रवर्तन
- तीन माँगें
  - (1) तलब-ए-मुवासिबत (प्रथम घोषणा)
  - (2) तलब-ए-इशाद (द्वितीय घोषणा)
  - (3) तलब-ए-तमलीक (तृतीय घोषणा या माँग)
- विधिक प्रभाव

प्रस्तावना:-

पूर्व-क्रयधिकार अथवा शुफा एक 'अधिकार' है। इस अधिकार का का प्रयोग करके किसी अचल सम्पत्ति का स्वामी किसी अजनबी व्यक्ति को अपने पड़ोस में स्थायी रूप से निवास करने पर अप्रत्यक्ष रोक लगा सकता है। वस्तुत: किसी अज्ञात व्यक्ति के पड़ोस में निवास करने के कारण होने वाली असुविधा से बचना ही इस अधिकार का आधार है।

परिभाषा:-

मुल्ला के अनुसार - शुफा का अधिकार ऐसा अधिकार है जिसके अंतर्गत किसी अचल सम्पत्ति का स्वामी व्यक्ति को बेची गई किसी अन्य अचल सम्पत्ति को क्रय कर सकता है।

गोविंद दयाल बनाम इनायत अल्लाह (1885) 7 इला०775

शुफा किसी अचल सम्पत्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग के लिए प्रदान किया गया उस सम्पत्ति के स्वामी का एक ऐसा अधिकार है जिसके अंतर्गत वह किसी दूसरे व्यक्ति को बेची गई अचल सम्पत्ति उन्हीं शर्तों पर क्रेता से खरीदकर क्रेता के स्थान पर स्वयं अपने आप को प्रतिस्थापित कर सकता है। इस अधिकार के दावेदार को पूर्वक्रयाधिकारी तथा इस अधिकार को हकशुफा या पूर्वक्रयाधिकार कहा जाता है।

अनिवार्य तत्व :-

(1) यह किसी अचल सम्पत्ति के स्वामी को ही प्राप्त होता है।

मुहम्मद नूर बनाम इब्राहिम (1994) 5 सु० को० के० 562 के वाद में कहा गया है कि हकशुफा अधिकारी को सम्बद्ध सम्पत्ति का स्वामी होना चाहिए। किरायेदार या पट्टाधारी को यह अधिकार नहीं होगा।

(2) हकशुफा अपनी अचल सम्पत्ति से संलग्न किसी अचल सम्पत्ति के विक्रय पर उत्पन्न होता है। एवं इसके अनुसार पूर्वक्रयाधिकारी क्रेता के स्थान पर स्वयं को प्रतिस्थापित कर सकता है।

(3) हकशुफा अधिकारी बिकी हुई सम्पत्ति को क्रेता से ठीक उन्हीं शर्तों पर क्रय करने का अधिकारी होता है। जिन पर क्रेता ने उन्हें क्रय किया हो।

(4) क्रेता चाहे किसी भी धर्म का हो उसके विरूद्ध इस अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

(5) यह एक प्रकार का विशेषाधिकार है। जिसके द्वारा अचल सम्पत्ति का स्वामी अपनी सम्पत्ति का शांतिपूर्ण उपयोग करने की सुविधा प्राप्त करता है।

(6) वक्फ सम्पत्ति से संलग्न सम्पत्ति के संबंध में इस अधिकार का प्रयोग नही किया जा सकता।

हकशुफा अधिकार की प्रकृति :-

(1) यह हकशुफा अधिकारी का सर्वबंधी अधिकार होता है।

(2) हकशुफा के अधिकार के संबंध में प्रारम्भ में न्यायालयों में मतभेद था कि हकशुफा का अधिकार वैयक्तिक है या साम्पत्तिक।

शेख कदरूतुल्ला बनाम **मोहनी साहा (1896) 4, ब. ल. र. 184** के वाद में

कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह माना कि चूँकि यह अधिकार क्रेता के विरूद्ध वैयक्तिक रूप से प्रवर्तित कराया जाता है अतः यह वैयक्तिक अधिकार है।

गोविन्द दयाल बनाम **इनायत उल्लाह (1885)7, इला० 775**

जबकि इलाहाबाद एवं पटना उच्च न्यायालय इत्यादि का मानना था कि चूँकि क्रेता के स्थान पर पूर्वक्रयाधिकारी उसके साम्पत्तिक अधिकार के संबंध में अपना प्रतिस्थापन ककरता है इसीलिए यह साम्पत्तिक अधिकार है।

और इस मतभेद को सु० को० ने

भूप बनाम **मातादीन भारद्वाज ए० आई० आर० (1991) सु० को० 373**

के वाद में दूर कर दिया और कहा कि हकशुफा के अधिकार का दावा चाहे वैयक्तिक विधि में किया जाये या फिर प्रथागत विधि में इसका उद्देश्य किसी आपत्तिजनक अज्ञात पड़ोसी से स्वामी को खुद को दूर रखना है। अतः यह पूरी तरीके से वैयक्तिक अधिकार हैं और इसीलिए यह अन्तरणीय नहीं है।

बिशन सिंह बनाम **खजान सिंह ए० आई० आर० (1958) सु० को० 838** के वाद में कहा गया कि

(3) हकशुफा का अधिकार सामान्य तौर पर एक दुर्बल अधिकार है क्योंकि यह स्वामित्व पर आघाट करता है और क्रेता को उसकी इच्छा के विरूद्ध सम्पत्ति के अंतरण के लिए मजबूर करता है।

हकशुफा की संवैधानिकता :-

(1) सम्पत्ति के अधिकार के परिपेक्ष्य में केवल निकटता के आधार पर ही दावा नहीं किया जा सकता जब तक कि पक्षकार अपनी व्यक्तिगत असुविधा सिद्ध नहीं कर देता।

भाउराम बनाम **बैजनाथ ए० आई० आर० (1962) सु० को०, 1476**

(2) मात्र पडौसी होना हकशुफा के अधिकार का आधार नहीं होगा। जब तक कि वे किसी विशिष्ट सुविधा के सहभागी न हो।

आत्म प्रकाश बनाम **हरियाणा राज्य (1986), SSC 249, 257**

(3) सहअंशधारी द्वारा हकशुफा का दावा संवैधानिक है यदि :-

(क) उनका वर्गीकरण युक्तियुक्त होना चाहिए।

(ख) हकशुफा का प्रयोग व्यक्तिगत असुविधा से बचने के लिए किया जा रहा हो।

हकशुफा अधिकारियों का वर्गीकरण :-

(1) शुफा-ए-शरीक (सह अंशधारी)

यह विक्रेता एवं पूर्वक्रयाधिकारी का वह वर्ग है जिसमें यह दोनों सह उत्तराधिकारी होते हैं जैसे

भाई और बहन इनको हकशुफा का अधिकार रहता है। परंतु आत्म प्रकाश बनाम रटेट ऑफ हरियाणा (1986) SCC 249 वाद की सीमा लागू होती है।

(2) शुफा-ए-खालित (सुविधाओं के सहभोगी)

विक्रेता एवं हकशुफा अधिकारी अपनी अपनी सम्पत्ति के संबंध मे किसी व्यक्तिगत सुविधा के सहभोगी होती है। जैसे - संयुक्त सीढ़ी के उपभोगी, मकान में प्रवेश करने के रास्ते का संयुक्त उपभोग, नाली इत्यादि।

फूलचंद्र बनाम लाला नीमचंद्र ए० आई० आर० (1978) इला. 539

इस वाद में दोनों स्वामियों के मकानों की नाली संयुक्त थी अत: हकशुफा का अधिकार वैध माना गया।

(3) शुफा-ए-जार (संयुक्त सम्पत्तियों के स्वामी)

इस वर्ग के व्यक्ति सिर्फ निकटता के आधार पर ही हकशुफा का दावा नहीं कर सकते। (भाउराम वाद)

ए. रज्जाक साहिब बगवां बनाम इब्राहिम हाजी मुहम्मद हुसैन (1999)

के वाद में कहा गया कि केवल शुफा-ए-शरीक एवं शुफा-ए-जार के आधार पर ही हकशुफा का दावा नहीं किया जा सकता जब तक कि कोई व्यक्तिगत असुविधा न हो।

(4) शिया विधि के अनुसार शुफा-ए-शरीक को ही हकशुफा का अधिकार होता है और भी तब जबकि इनकी दो या दो से कम हो।

पक्षकारों के धर्म एवं सम्प्रदाय का प्रभाव -

(क) विक्रेता एवं हकशुफाधिकारी को मुस्लिम होना चाहिए। परंतु **बिशन सिंह** बनाम खजान सिंह वाद में यह तय कर दिया गया कि क्रेता किसी भी धर्म का हो सकता है।

(ख) विक्रेता एवं हकशुफाधिकारी का सम्प्रदाय महत्वपूर्ण होगा क्रेता का नहीं अर्थात् यदि ये दोनों शिया शिया विधि के हैं तो शिया विधि, या यदि ये दोनों सुन्नी विधि के है तो सुन्नी विधि हकशुफा के संबंध में लागू होगी।

यदि पूर्वक्रयाधिकारी और विक्रेता का सम्प्रदाय विभिन्न हो तो शिया विधि लागू की जायेगी क्योंकि यह हकशुफा के संबंध में संकीर्ण विधि है। और हकशुफा का अधिकार वैयक्तिक अधिकार है।

<u>अधिकार का प्रवर्तन</u> :- हकशुफा अधिकारी अपने अधिकार का प्रवर्तन तब करा सकेगा जबकि :-

(1) कि अंतरण विनियम या विक्रय द्वारा।

(2) अंतरण रजिस्ट्रीकरण के संबंध में पूर्ण हो चुका हो।

राधा कृष्ण लक्ष्मी नारायण बनाम श्रीधर ए० आई० आर० (1960), सु० को०, 1968

इस वाद में कहा गया था कि अंतरण की पूर्णता का निर्धारण सम्पत्ति अंतरण अधिनियम के अनुसार होगा। पंजीकरण पूर्ण होने के पहले हकशुफाधिकारी हकशुफा की मांग नहीं रख सकता।

बातुल बेगम बनाम मंसूर अली (1901), 24 इला० 773

इस वाद में तय किया गया था कि यदि अंतरण विक्रय द्वारा बंधक है तो पुरोबंध के बाद हकशुफा अधिकारी हकशुफा की माँग कर सकता है।

मेहर के बदले में दान वस्तुत विक्रय होता है अत: पूर्व-क्रयाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

तीन माँगे (तीन तलब):-

मुस्लिम विधि के अंतर्गत पूर्व क्रयाधिकार के दावे को प्रभावी करने के लिए कुछ अनिवार्य औपचारिकताएँ निर्धारित हैं। पूर्वक्रयाधिकारी को अंतरण पूर्ण होने के बाद तीन मांगों की घोषणा करनी पड़ती है:- इनमें जरा सी भी चूक हो जाने पर उसका अधिकार खत्म माना जाता है।

ये तीन माँगें निम्नलिखित हैं :-

(1) तलब-ए-मुवासिबत (प्रथम घोषणा)

(2) तलब-ए-इशाद (द्वितीय घोषणा)

(ङ) तलब-ए-तमलीक (तृतीय घोषणा या माँग)

(1) तलब-ए-मुवासिबत :-

(क) यह हकशुफा के संदर्भ में प्रारम्भिक कार्यवाही है और यह वह घोषणा है जिसमें हकशुफाधिकारी अपने हकशुफा के अधिकार को प्रभावी करने की अविलम्ब घोषणा करता है।

(ख) यह घोषणा विक्रय या विनिमय पूर्ण हो जाने के बाद की जानी चाहिए।

(ग) अंतरण की सूचना मिलने पर यह घोषणा बिना किसी देरी के अविलम्ब करना चाहिए अन्यथा अमान्य मानी जायेगी।

जरफन खाँ बनाम **जब्बर मीच (1884), 10, कल० 383**

इस वाद में अंतरण की सूचना मिलने के बाद हकशुफा अधिकारी ने तिजौरी से पैसे निकाले और फिर प्रथम घोषणा की। न्यायालय ने इसे पर्याप्त देरी मानते हुए घोषणा को अमान्य घोषित किया।

(घ) हकशुफा अधिकारी घोषणा करने का अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को भी सौंप सकता है और अवयस्क के संबंध में यह घोषणा उसके संरक्षक द्वारा की जा सकती है।

(ङ) घोषणा में माँग स्पष्ट होनी चाहिए।

ख्याली बनाम **मल्लिक (1916), पटना, 174**

विक्रयपत्र की रजिस्ट्री (क्रेता एवं विक्रेता के संबंध में) रूकवाने के लिए किया गया आवेदन को प्रथम घोषणा की औपचारिकता नहीं मानी गई।

(च) यह घोषणा मौखिक या लिखित हो सकती है।

(छ) इसके लिए किन्हीं गवाहों का होना आवश्यक नहीं है परंतु कुछ साक्ष्य अवश्य होने चाहिए।

(2) तलब-ए-इशाद :-

(क) हकशुफा के दावे को प्रभावी करने के लिए प्रथम घोषणा के बाद द्वितीय घोषणा अवश्य की जानी चाहिए।

(ख) यह घोषणा प्रथम घोषणा की पुष्टिकरण होती है।

(ग) यह मौखिक या लिखित हो सकती है। तथा इसे करने का प्राधिकार किसी अन्य को सौंपा जा सकता है।

(घ) दोनों घोषणाओं के बीच अनुचित अंतराल नहीं होना चाहिए तथा द्वितीय घोषणा में इस बात का उल्लेख होना चाहिए कि प्रथम घोषणा अमुक तिथि को की जा चुकी है।

(ङ) यदि कई दावेदार है तो माँग सबके द्वारा होनी चाहिए अन्यथा दावा मान्य नहीं होगा।

(च) माँग क्रेता या विक्रेता किसी को भी संबोधित की जा सकती है परंतु यदि ये संख्या में एक से अधिक हो तो सबका नाम अवश्य होना चाहिए।

(छ) इस संबंध में यदि सम्पत्ति को इंगित करते हुए विक्रेता का नाम लिया जाता है तो यह पर्याप्त होगा।

(ज) इस संबंध में यह भी महत्वपूर्ण है कि यदि सिर्फ सम्पत्ति को इंगित करते हुए हकशुफा की माँग की जाती है तो यह मान्य होगी।

(झ) द्वितीय माँग के संदर्भ में 2 गवाहों का होना अनिवार्य है परंतु यह गवाह घोषण के समय सम्बद्ध गवाही के लिए ही उपस्थिति हो या अन्य किसी प्रयोजन से। इस बिन्दू मे न्यायालयों में मतभेद है,

इमामुद्दीन बनाम **मुहम्मद रईस (1931) इला० 736**

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अनुसार गवाही के लिए विशेष रूप से उपस्थिति होना अनिवार्य नहीं है।

मेदनी प्रसाद बनाम **सुरेशचंद्र ए० आई० आर० (1943) पटना**, 96 पटना हाईकोर्ट का यह मानना है कि गवाहों को गवाही के उद्देश्य से ही घोषणा के समय उपस्थिति होना चाहिए।

(ञ) द्वितीय माँग के साथ भी मूल्य का भुगतान आवश्यक नहीं है। परंतु मूल्य अदा करने की तत्परता होनी चाहिए।

(त) दोनों माँगे एक साथ की जा सकती है परंतु गवाहों की उपस्थिति आवश्यक होगी।

(3) <u>तलब-ए-तमलीक</u> :- हकशुफा के अधिकार के प्रर्वतन के लिए न्यायालय में वाद करना तृतीय माँग समझा जाता है।

(क) यदि पक्षकार दावे को मान ले तो अधिकार पूर्ण हो जाता है और यदि न माने तो इसका प्रर्वतन न्यायालय के द्वारा तृतीय माँग के रूप में करवाया जा सकता है।
इसके तलब-ए-खुसुमत भी कहते हैं। अर्थात् प्रत्यास्थापित करने की मांग।

(ख) यह वाद विक्रय पूर्णता के 1 वर्ष के अंदर लाया जा सकेगा।

(ग) यह दावा पूर्ण सम्पत्ति पर होना चाहिए।

(घ) यह वाद क्रेता के विरूद्ध लाया जायेगा परंतु यदि सम्पत्ति विक्रेता के कब्जे में है तो उसे भी सहपक्षकार बनाना पड़ेगा।

विधिक प्रभाव :-

(1) हकशुफा अधिकारी के पक्ष में अधिकार सिद्ध होने पर वह उन्हीं शर्तों पर क्रेता से सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

(2) हकशुफा अधिकारी सम्पत्ति का स्वामित्व सम्पत्ति पर कब्जे के बाद ही प्राप्त करता है। जब तक कब्जे का अंतरण नहीं होता हकशुफा अधिकारी में स्वामित्व निहित नही माना जाता।

न्यायालय की डिक्री द्वारा क्रेता को कब्जे के अंतरण के लिए बाध्य किया जा सकता है।

(3) जब तक अंतरण नहीं होता हकशुफा अधिकारी को लाभांश का अधिकार नहीं होता।

(4) डिक्री के अनुसार मूल्य के भुगतान तथा वास्तविक रूप से कब्जा प्राप्ति के मध्य के समय में सम्पत्ति के लाभांश, उपज, किराया इत्यादि प्राप्त करने का हकशुफा अधिकारी होता है।

(5) हकशुफा अधिकारी चूँकि मूल क्रेता द्वारा स्वामित्व प्राप्त नहीं करता बल्कि वह केवल मूल क्रेता के स्थान पर अपने आप को प्रतिस्थापित करता है इसलिए वह सम्पत्ति सभी दायित्वों के साथ प्राप्त करता है।

(6) हकशुफा अधिकारी क्रेता से उसी अवस्था में सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकारी है जिस अवस्था में उसने विक्रेता से प्राप्त किया था अर्थात् विक्रय के बाद यदि कोई अभिवृद्धि होती है तो उसके समायोजन के पश्चात् ही हकशुफा अधिकारी को कब्जे का अधिकार होगा।

(7) यदि सम्पत्ति माँग के बाद नष्ट हो जाये या क्षतिग्रस्त हो जाये तो हकशुफा अधिकारी अपने दावे को त्याग भी कर सकता है।

(8) यदि विक्रय पूर्ण हो गया हो और क्रेता ने भागत: प्रतिफल दिया हो तो भी हकशुफा का अधिकार रहता है।

(9) क्रेता की मृत्यु के बाद भी अधिकार रहता है और उसक उत्तराधिकारियों से इसे प्राप्त किया जा सकता है।

(10) पूर्वक्रयाधिकार की डिक्री अंतरणीय नहीं होती।

(11) **अधिकार का विलोपन :-** अधिकार का विलोपन हो जाता है जबकि :-

(क) औपचारिकताएँ पूर्ण नहीं होती।

(ख) जब हकशुफाधिकारी ऐसे किसी व्यक्ति को सहवादी बना दे जो वास्तविक हकशुफाधिकारी न हो तो वाद खारिज हो जायेगा।

(ग) जब हकशुफाधिकारी अपने अधिकार का स्वयं त्याग कर दें।

(घ) यदि माँगों के दौरान हकशुफाधिकारी की मृत्यु हो जाये तो शिया एवं शफी विधियों को छोड़कर मुस्लिम विधि में ऐसा अधिकार समाप्त हो जाता है।

परंतु **भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 306** के तहत हकशुफा अधिकारी के विधिक प्रतिनिधि वाद जारी रख सकते है।

(ङ) निम्न स्थितियों मे अधिकार का **समपहरण** हो जाता है :-

(1) यदि हकशुफा अधिकारी स्वयं ही विक्रेता के पक्ष में अंतरण कर दें।

(2) यदि मूल विक्रय ही किसी कारणवश शून्य हो गया हो।

(3) यदि पूर्वक्रयाधिकारी को इस संबंध में कोई परिनियमित नियोग्यता है। जैसे :- बुन्देलखण्ड एलीनेशन एक्ट 1903 के तहत कोई भी हकशुफा अधिकारी विक्रय के बाद क्रेता से प्रतिस्थापन की माँग नहीं कर सकता।

सिविल जज (जूनियर डिवीजन) हल सहित प्रश्न पत्र

प्रश्न 1. मुस्लिम विवाह की परिभाषा, उसके आवश्यक तत्व और प्रकृति का उल्लेख कीजिए। यौवनागम का विकल्प क्या होता है? **(P.C.S (J) 2000)**

प्रश्न 2. "आजीवन सम्पदा का मुस्लिम विधि में कोई स्थान, जैसा कि भारत में लागू होता है, नहीं है, परंतु आजीवन हित का निर्माण किया जा सकता है।" विवेचना कीजिए। **(P.C.S (J) 2003)**

प्रश्न 3. (क) भारत में प्रचलित मुस्लिम 'तलाक' प्रक्रिया की विस्तार में विवेचना निर्णीत वादों की सहायता से कीजिये। मुस्लिम विधि के अंतर्गत 'Triple तलाक' की संविधानिकता पर निर्णीत वादों की सहायता से प्रकाश डालिए। क्या आप इस बात से सहमत हैं कि 'Triple तलाक' का मुस्लिम शरीयत में कोई स्थान नहीं है? कारणों की विवेचना कीजिए।

(ख) 'अ' एक मुसलमान मृत्यु के पश्चात एक पुत्र 'ब', एक विधवा 'क', एक प्रपौत्र 'ख' जो कि मृतक पुत्र का पुत्र है, छोड़ता है।

'अ' वसीयत करता है तथा इच्छापत्र द्वारा सम्पदा का 1/3 भाग 'ब' और 'ख' को दे देता है। इस अन्तिमेच्छा द्वारा दिये गये दान को 'क' सहमति नहीं प्रदान करती है जो कि 'ख' के पक्ष में है। क्या यह इच्छापत्र वैध है। **(P.C.S (J) 2006)**

प्रश्न 4. उन आधारों का उल्लेख कीजिए जिन पर एक मुसलमान पत्नी विवाह का विघटन करा सकती है। **(P.C.S (J) 2012)**

प्रश्न 5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :-

(अ) मुतवली (ब) इद्दत **(Bihar P.C.S (J) 2000)**

प्रश्न 6. मुस्लिम विधि के अनुसार सही, फासिद और बातिल शादी समझाइये और इन तीनों में भेद बताइये। **(Bihar P.C.S (J) 2000)**

प्रश्न 7. शरीयत ऐक्ट, 1937 के मुख्य प्रावधान बताइये। इस अधिनियम से आये परिवर्तन बताइये। **(Bihar P.C.S (J) 2000)**

प्रश्न 8. वसीयत बनाने के संबंध में एक मुसलमान की शक्ति की क्या सीमाएँ हैं? **(Bihar P.C.S (J) 2000)**

प्रश्न 9. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :-

(अ) वसीयती संरक्षक और उसके अधिकार

(ब) पत्नी का भरण-पोषण। **(Bihar P.C.S (J) 2000)**

प्रश्न 10. सुन्नी तथा शिया विचारधारा में वारिसों के विभिन्न प्रकार बताइए। अ मरने के बाद अपने पीछे पत्नी, माँ तथा सगा भाई छोड़ता है, उसकी सम्पत्ति को हनाफी विधि के अंतर्गत विभाजित कीजिए। **(Bihar P.C.S (J) 2006)**

प्रश्न 11. वक्फ क्या होता है? वक्फ को मुत्तवल्ली किसको नियुक्त किया जा सकता है? मुतवल्ली के कार्य एवं कर्त्तव्यों की व्याख्या कीजिए। **(Bihar P.C.S (J) 2006)**

प्रश्न 12. एक मुस्लिम महिला के अपनी पुत्री पर अधिकार की विवेचना कीजिए। क्या वह इस अधिकार को शादी विच्छेद के बाद भी प्रयोग कर सकती है। वसीयती संरक्षक कौन है? **(Bihar P.C.S (J) 2006)**

प्रश्न 13. एक तलाक शुदा मुस्लिम महिला के अपने पति से भरणपोषण के अधिकार को समझाइए। शाह बानू के वाद के फलस्वरूप इस में क्या परिवर्तन हुए हैं।
(Bihar P.C.S (J) 2006)

प्रश्न 14. मुस्लिम विधि के विभिन्न स्रोतों का उल्लेख कीजिए। **(Bihar P.C.S (J) 2011)**

प्रश्न 15. मुस्लिम विधि में वक्फ़ से संबंधित विधि पर प्रकाश डालिए। **(Bihar P.C.S (J) 2011)**

प्रश्न 16. मुस्लिम विधि में तलाक से संबंधित प्रावधानों का उल्लेख कीजिए। क्या एक मुस्लिम महिला अपने पति से तलाक प्राप्त कर सकती है? **(Bihar P.C.S (J) 2011)**

प्रश्न 1. मुस्लिम विवाह की परिभाषा, उसके आवश्यक तत्व और प्रकृति का उल्लेख कीजिए। यौवनागम का विकल्प क्या होता है? (P.C.S (J) 2000)

उत्तर :- **प्रस्तावना :-**

मानव सभ्यता का आधार विवाह नामक संस्था है। **कुरान के अनुसार** --मोहम्मद साहब ने कहा है कि निकाह मेरी सुन्नत हैं जो इसे नहीं मानता वह मेरा नहीं है।

रद्द-उल-मुत्तार के अनुसार आदम के समय से आज तक हम लोगों के लिए यह (निकाह) रखा गया है और जन्नत में होने वाला ऐसा कोई भी इबादत का कार्य नहीं है सिवाय निकाह और ईमाम के।

विधिशास्त्रियों में इस बात का इज्मा है कि निकाह सुन्नत-ए-मुवाकिदा हैं अर्थात् ऐसा आचरण जिसका करना साधुता है और विचलन पाप।

परिभाषा :-

हेदाया के अनुसार - कानून की शब्दावली में निकाह से एक ऐसी संविदा का बोध होता है जो संतानोत्पत्ति को वैधानिकता प्रदान करने के उद्देश्य से की जाती है।

जस्टिस महमूद ने अब्दुल कादिर बनाम मुसम्मात सलीमा (1886) 8 इला० 149 नामक वाद में कहा मुस्लिमों में निकाह शुद्ध रूप से एक सिविल संविदा है यह कोई संस्कार नहीं है।

सबरूनिशा बनाम शब्दूशेख ए० आई० आर० (1933) 55 ALL 743, 756 मुस्लिम विधि में निकाह विक्रय के समान एक संविदा है जिसमें मेहर और सम्पत्ति के बदले में पत्नि का अंतरण होता है।

निकाह की प्रकृति :-

मुस्लिम विवाह संविदा है या संस्कार यह जानने के लिए हमे विवाह के विभिन्न पहलू देखने होंगे। मुस्लिम विधि में निकाह के तीन पहलू हैं :-

(i) विधिक (legal)

(ii) सामाजिक (Social)

(iii) धार्मिक (Religious)

विधिक पहलू :- मुस्लिम विधि में निकाह के लिए वैध संविदा की शर्तें पूरी करनी होती हैं इसलिए इसे संविदा माना गया है जैसे -

(i) निकाह इजाब एवं कुबुल अर्थात् प्रस्थापना एवं स्वीकृति से पूर्ण होता है।

(ii) संविदा की तरह निकाह में प्रतिफल यानि मेहर की आवश्यकता होती है यद्यपि दोनो ही सिद्धांतों की शुरूआत में प्रतिफल और मेहर आवश्यक नहीं, पर इनकी पूर्णता के लिए इनका होना आवश्यक हैं।

(iii) संविदा की तरह निकाह में भी पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति होनी चाहिए।

(iv) निकाह में संविदा के प्रकारों शून्य, शून्यकरणीय एवं वैध निकाह का सिद्धांत प्रचलित है।

(v) संविदा की तरह निकाह में भी संव्यवहारपूर्ण होने के बाद पक्षकारों के कुछ अधिकार एवं दायित्व हो जाते हैं। इन अधिकारों एवं दायित्व का उल्लंघन करने पर पीड़ित पक्षकार को संव्यवहार (संविदा/निकाह) को निरस्त करने का अधिकार मिल जाता है।

सामाजिक पहलू :- निकाह एक सामाजिक संस्था हैं जो महिला को समाज में एक सम्मानजनक प्रास्थिति प्रदान करती है। प्रतिफल निकाह में सम्मान के लिए एवं स्त्री के संरक्षण के लिए दिया जाता है। निकाह में कुछ व्यक्तियों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करने पर रोक है जैसे रक्त-संबंधी, निकट संबंधी, धात्रेय संबंधी जबकि संविदा में संबंधों के आधार पर-व्यक्तियों से संविदा करने पर कोई रोक नहीं हैं निकाह सिर्फ चार बार दिया जा सकता है, जबकि संविदा कितनी भी बार की जा सकती है। संविदा अधिनियम की धारा 64 मुस्लिम विवाह पर लागू होती है यानि जहाँ निकाह किसी पक्षकार के द्वारा एकतरफा रूप से निरस्त किया जाता है वहाँ पर दोषी पक्षकार को सारे लाभ पीड़ित पक्षकार को वापस करने होंगे।

निर्णय का अनुसरण करते हुए यह निर्धारित किया है कि सम्पत्ति के 'काय' (corpus) का तो नहीं परंतु सम्पत्ति के मात्र लाभांश का सीमित अथवा आजीवन हित मुस्लिम विधि के अंतर्गत मान्य है।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आजीवन हितों का दान, चाहे वह किसी भी विचारधारा के मानने वाले व्यक्ति द्वारा क्यों न किया गया हो, वैध होगा।

प्रश्न 3. (क) भारत में प्रचलित मुस्लिम 'तलाक' प्रक्रिया की विस्तार में विवेचना निर्णीत वादों की सहायता से कीजिये। मुस्लिम विधि के अंतर्गत 'Triple तलाक' की संविधानिकता पर निर्णीत वादों की सहायता से प्रकाश डालिए। क्या आप इस बात से सहमत हैं कि 'Triple तलाक' का मुस्लिम शरीयत में कोई स्थान नहीं है? कारणों की विवेचना कीजिए।

उत्तर :- प्रस्तावना

'तलाक' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ हैं 'निर्मुक्त करना' अर्थात् किसी भी बंधन को खोल देना। इस्लाम के अंतर्गत वैवाहिक जीवन की स्थापित्व को सामान्य नियम मानकर विवाह-विच्छेद केवल अपवाद के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

पैगम्बर मोहम्मद के कथन के अनुसार कानून के अंतर्गत जिन चीजों को स्वीकृति प्रदान की गई है, विवाह-विच्छेद उनमें सबसे निकृष्ट हैं। (तैय्यब जी)

लेकिन वैवाहिक संबंधों में कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जैसे कि मानसिक असंगति कि पक्षकारों का साथ रहना सामाजिक रूप से न्यायसंगत नहीं होता, तो उनका अलग हो जाना ही उचित माना जाता है।

तलाक के प्रकार

तलाक दो प्रकार के होते हैं :-

(1) तलाक-उल-सुन्नत (प्रतिसंहरणीय तलाक)

(2) तलाक-उल-बिद्दत (अप्रतिसंहरणीय तलाक)

(1) तलाक-उल-सुन्नत या राजे :- यह तलाक मोहम्मद साहब के सुन्नत के द्वारा अनुमोदित एवं मान्यता प्राप्त तलाक है

इसीलिए इसे तलाक-उल-सुन्नत कहते हैं। इस तलाक को तलाक-उल-राजे भी कहते हैं। इसके दो प्रकार है:-

(1) अहसन (2) हसन

(1) अहसन :-

(i) यह शरीयत के द्वारा सर्वाधिक मान्यता प्राप्त तलाक है।

(ii) इसमें तलाक का उच्चारण सिर्फ एक बार ही किया जाता है। यह उच्चारण पत्नी के तुहर काल में किया जाना चाहिए। तुहर काल किसी भी स्त्री के दो मासिक कालों के बीच का वह समय हैं जबकि वह स्त्री शरीरिक रूप से गर्भधारण करने के लिए सक्षम होती है।

(iii) उस तुहर काल में घोषणा के पूर्व वैवाहिक सम्भोग नहीं हुआ होना चाहिए।

(iv) तलाक की घोषणा के बाद पत्नी को इद्दत पालन आवश्यक होता है।

(v) मासिक काल यदि किसी कारणों से खत्म हो चुका हो तो उस स्त्री के संबंध में तुहर काल की सीमा लागू नहीं होगी।

चाँदबी बनाम बलवंत (1960), 62, ब० ल० ज० 811

(vi) इद्दत पूर्ण होते ही तलाक अप्रतिसंहरणीय (irrevocable) हो जाता है।

(vii) तलाक के अप्रतिसंहरणीय होने के पूर्व पति स्पष्ट घोषणा या वैवाहिक संभोग के द्वारा तलाक को निरस्त कर सकता है।

(viii) एक बार तलाक जैसे निंदनीय शब्द का उच्चारण अप्रतिसंहरणीयता के कारण तथा मोहम्मद साहब द्वारा अनुमोदन होने के कारण यह तलाक सर्वाधिक मान्य तलाक माना जाता है। इस तलाक को सर्वाधिक

माना तलाक बनाते हैं।

(xi) इद्दत काल में किसी पक्षकार की मौत हो जाने पर दूसरा पक्षकार उत्तराधिकार पाता है।

(2) हसन :-

(i) इस तलाक में लगातार तीन तुहर कालों तक तलाक की उद्घोषणा की जाती है।

(ii) उद्घोषणा के पहले वैवाहिक संभोग नहीं हुआ होना चाहिए।

(iii) तीसरा उद्घोषणा के बाद तलाक अप्रतिसंहरणीय हो जाता है।

(iv) यदि प्रथम दो तुहर कालों में उद्घोषणा के बाद तलाक को वापस ले लिया गया हो तो तीसरा उद्घोषणा के बाद तलाक पूर्ण माना जायेगा तथा अप्रतिसंहरणीय हो जायेगा।

(v) गुलाम मोहिनुद्दीन बनाम खिजेर AIR (1929) लाहौर- 6

उक्त वाद में पति ने पत्नी को लिखित रूप में सूचित किया कि मैने आपको 15 सितम्बर को तलाक दे दिया है अत: यह तलाक 15 दिसम्बर को स्वत: पूर्ण हो जायेगा और इस आधार पर पति ने विवाह विघटन की माँग न्यायालय से की। पर न्यायालय ने उसके अभिभावाक् (plea) को अस्वीकार करते हुए यह तय किया कि चूँकि तीन क्रमगत तुहर कालों में तलाक की घोषणा नहीं की गई थी इसलिए तलाक पूर्ण नहीं माना जायेगा।

(2) तलाक-उल-बिद्दत या बैन :-

(1) तलाक-उल-बिद्दत का तात्पर्य हैं वह तलाक जो यद्यपि वैध हैं पर पापमय तथा अनियमित हैं।

(2) यह तलाक उम्मैयद शासकों द्वारा शुरू किया गया था।

(3) इस तलाक को शिया सम्प्रदाय मान्यता नहीं देती जबकि सुन्नी सम्प्रदाय मान्यता देता है।

(4) इस तलाक में उच्चारण के क्षण ही तलाक तुरंत अप्रतिसंहरणीय हो जाता है।

(5) मोहम्मद साहब के सुन्नत के विपरीत होने के तथा तुरंत अप्रतिसंहरणीयता के कारण ही इस तलाक को निंदनीय समझा जाता है।

(6) इस तलाक को तलाक-उल-बैन (अप्रतिसंहरणीयता) भी कहते हैं।

(7) इसके दो प्रकार हैं :- (क) तीन घोषणाएँ (तीहरा तलाक) (ख) एक घोषणा ।

(क) तीन घोषणाएँ या तीहरा तलाक :- इस तलाक में पति तुहर काल में तलाक की तीन उद्घोषणाएँ या एक ही वाक्य में तीन उद्घोषणाएँ करता है - मैं तुम्हें तलाक देता हूँ, मैं तुम्हें तलाक देता हूँ, मैं तुम्हे तलाक देता हूँ। मैं तुम्हें तीहरा तलाक देता हूँ।

(ख) एक घोषणा :- इस तलाक में पति तुहर काल में एक वाक्य में (घोषणा में) तलाक-उल-बिद्दत/बैन कहते हुए तलाक दे सकता है। जैसे - मैं तुम्हें तलाक-उल-बिद्दत देता हूँ।

(2) रहमतुल्ला बनाम उ० प्र० राज्य, उ० प्र० सिविल एण्ड रेवेन्यु केसज रिपोर्टर (1994)(1)- 530

इस वाद में कहा गया कि तलाक-उल-बिद्दत अवैध है क्योंकि यह पवित्र कुरान के निर्देशों के विपरीत हैं।

(3) राशीद अहमद बनाम अनीसा खातून AIR 1932, P.C. 25

उक्त वाद में कहा गया कि तलाक-उल-बिद्दत में तलाक की प्रभावकारिता एवं अप्रतिसंहरणीयता पति की मानसिक स्थिति पर निर्भर नहीं करती। इसीलिए यह उचित तलाक नहीं होना चाहिए। अत: यह महत्वहीन हैं कि तलाक गुस्से में दिया गया था या किसी दबाव में। केवल यह आवश्यक हैं कि पति ने उन शब्दों का उच्चारण किया था कैसे किया था; क्यों किया था या कब किया था यह महत्वपूर्ण नहीं है।

(4) मन्सूर अहमद बनाम राज्य (एन. सी. टी. ऑफ दिल्ली)

उक्त वाद में यह तय किया गया था कि तलाक किसी युक्तियुक्त कारण पर होना चाहिए। तलाक के पूर्व मध्यस्थता का प्रयास होना चाहिए जिसमें पत्नी की तरफ से एक एवं पति की तरफ से एक मध्यस्थ हो।

(5) तलाक अपने आप में ही प्रभावी नहीं होगा जब तक की उक्त औपचारिकता पूर्ण नहीं कर दी जाती।

(6) पारस्परिक उत्तराधिकार घोषणा के साथ ही समाप्त हो जाता है।

अपवाद - लेकिन यदि तलाक मर्जुल-उल-मौत के दौरान दिया गया हो और पति की मृत्यु इद्त काल के पूर्व ही हो जाये तो पत्नी विधवा की हैसियत से उत्तराधिकार प्राप्त करेगी।

मुस्लिम विधि के अंतर्गत तिहरे तलाक की सैद्धान्तिकता - तिहरा तलाक एक मान्यता प्राप्त परंतु अस्वीकृत तलाक का प्रकार है तथा इस्लामी विधिवेत्ताओं ने इसे शरीयत में नवीन प्रवर्तन माना है। इसे न तो पवित्र कुरान का प्रमाण और न पवित्र पैगम्बर की स्वीकृति प्राप्त है।

प्रसिद्धि विधिवेत्ता इमाम अबु हनीफा का मानना है कि तीन तलाक का अर्थ है तीन बार अलग-अलग तलाक देना और इसके फलस्वरूप अंतिम तलाक हो जाती है। पति का यह स्पष्टीकरण कि उसने तीन तलाक पहली तलाक को जोर देने के लिये की थी इससे विवाह विच्छेद की प्रकृति को नहीं बदला जा सकता और मुगाल्लजा (अन्तिम) तलाक हो जाती है। यही दृष्टिकोण अधिकतर हनफी विधिवेत्ताओं ने भी अपनाया है कि इस तरह से अन्तिम तलाक हो जाती है जो कि विधि की दृष्टि में तो ठीक है परंतु धर्म की दृष्टि से बुरी है। यदि पति तलाक को तीन बार पृथक् रूप से नहीं कहता बल्कि कहता है "कि मैनें तुम्हें तीन बार तलाक दिया अथवा वह इसी तरह की किसी अभिव्यक्ति का प्रयोग करता है तो यह मानी जायेगा कि उसने एक बार तलाक दी जो कि अन्तिम तलाक नहीं मानी जायेगी।

इसी प्रकार इस्लामी विधिशास्त्र का परम स्त्रोत, पवित्र कुरान ने निर्दिष्ट नहीं किया है कि एक सांस में तीन तलाक की घोषणा तीन पृथक् तलाकों का प्रभाव रखती है।

राशिद अहमद बनाम मुहम्मद अनीसा खातून, 1932 प्रि० का० 25 के वाद में प्रिवी कौंसिल ने एक समय में दी गयी तीन तलाकों को विधिपूर्ण तथा प्रभावी निर्धारित किया।

शमीम आरा बनाम यू० पी० राज्य, जे० टी० 2002 (7) सु० को० 320 के वाद में उच्चतम न्यायालय ने "तीन तलाक" के प्रश्न को मुस्लिम विधि के अंतर्गत स्पष्ट कर दिया है।

उच्चतम न्यायालय ने इस वाद में यह कहा कि पवित्र ग्रन्थ कुरान में तलाक की विधि यह है ि तलाक किसी समुचित कारण पर दी जानी चाहिये और इससे पहले पति-पत्नी द्वारा नियुक्त दो विवाचक नियुक्त हों और वह सुलह के सभी प्रयास कर लें और जब यह प्रयास असफल हो जायें तब तलाक प्रभावी होना चाहिये।

शमीम आरा के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अवलोकन किया है कि एवं तलाक का मौखिक रूप से उच्चारण होना चाहिए। लिखित तलाक मान्य नहीं है।

इस तरह उच्चतम न्यायालय ने भारत वर्ष में लागू तीन तलाक के फार्मूले को अप्रत्यक्ष नकार दिया।

कर्नाटक उच्च न्यायालय ने **मोहम्मद इब्राहीम** बनाम **मेहरून्निसा बेगम, ए० आई० आर० 2004 कर्नाटक** 261 के वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा शमीम आरा के वाद में दिये गये निर्णय की पुष्टि कर दी।

इक्बात बानो बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य, (2007) 6 सु० को० केसेज 785** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि यदि प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित पत्र में यह कहा गया है कि उसने अपनी पत्नी को 30 वर्ष पूर्व तीन बार तलाक दिया था अत: यह तलाक हो गया, नहीं माना जा सकता। प्रतिवादी को तलाक का दिया जाना विशिष्ट साक्ष्य द्वारा न्यायालय के समक्ष सिद्ध करना होगा और यदि वह लिखित पत्र में दिये गए तर्क को सिद्ध नहीं कर पाता तब न्यायालय को इस तर्क को अस्वीकार कर देना चाहिए।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शरियत में तिहरे तलाक की स्थिति स्पष्ट नहीं है, फिर भी इस बात से हम सहमत नहीं हैं कि तिहरे तलाक का मुस्लिम शरियत में कोई स्थान नहीं है। क्योंकि इस्लामी विधिवेत्ताओं ने इसे शरियत में नवीन प्रवर्तन माना है तथा उच्चतम न्यायालय ने भी अप्रत्यक्ष रूप से ही नकारा है, प्रत्यक्ष रूप से नहीं।

(ख) 'अ' एक मुसलमान मृत्यु के पश्चात एक पुत्र 'ब', एक विधवा 'क', एक प्रपौत्र 'ख' जो कि मृतक पुत्र का पुत्र है, छोड़ता है।

'अ' वसीयत करता है तथा इच्छापत्र द्वारा सम्पदा का 1/3 भाग 'ब' और 'ख' को दे देता है। इस अन्तिमेच्छा द्वारा दिये गये दान को 'क' सहमति नहीं प्रदान करती है जो कि 'ख' के पक्ष में है। क्या यह इच्छापत्र वैध है। **(P.C.S (J) 2006)**

उत्तर :- मुस्लिम वसीयतकर्त्ता के वसीयत करने के अधिकार पर निम्नलिखित दो प्रकार के प्रतिबंध हैं -

(i) वसीयत की जा सकने वाली सम्पत्ति की मात्रा से संबंधित प्रतिबंध तथा

(ii) वसीयत किसके पक्ष में की गयी है इसके संबंधित प्रतिबंध।

मुस्लिम विधि के अंतर्गत वसीयतकर्त्ता अपनी कुल सम्पत्ति का केवल 1/3 भाग ही किसी व्यक्ति को वसीयत कर सकने में समर्थ है; इससे अधिक सम्पत्ति की वसीयत के लिये उसके उत्तराधिकारियों की सहमति अनिवार्य है।

उपरोक्त समस्या में पुत्र ब उत्तराधिकारी है।

सुन्नी विधि में - सम्पूर्ण सम्पत्ति के 1/3 भाग तक की उत्तराधिकारियों के पक्ष में वसीयत के लिए सहमति अनिवार्य है तथा 'ब' के 1/3 भाग के लिए विधवा 'क' की सहमति है अतः 'ब' के पक्ष में वसीयत प्रभावी एवं विधिमान्य होगी।

शिया विधि में सम्पूर्ण सम्पत्ति के 1/3 भाग की उत्तराधिकारी के पक्ष में वसीयत के लिए अन्य उत्तराधिकारियों की सहमति की आवश्यकता नहीं होगी। अतः 'ब' के पक्ष में की गई वसीयत प्रभावी एवं विधिमान्य होगी।

पौत्र 'ख' गैर उत्तराधिकारी है।

सुन्नी और शिया दोनों विधियों में गैर उत्तराधिकारी को की गई सम्पूर्ण सम्पत्ति के 1/3 भाग तक की वसीयत के लिए उत्तराधिकारियों की सहमति आवश्यक नहीं होती अतः पौत्र 'ख' के पक्ष में की गई वसीयत वैध एवं प्रभावी होगी।

प्रश्न 4. उन आधारों का उल्लेख कीजिए जिन पर एक मुसलमान पत्नी विवाह का विघटन करा सकती है। (P.C.S (J) 2012)

उत्तर :- 'तलाक' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'निर्मुक्त करना' अर्थात् किसी भी बंधन को खोल देना। इस्लाम के अंतर्गत वैवाहिक जीवन की स्थापित्व को सामान्य नियम मानकर विवाह-विच्छेद केवल अपवाद के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

तलाक ईश्वरीय कृत्य द्वारा (पति या पत्नी की मृत्यु द्वारा) या पक्षकारों के कृत्य द्वारा हो सकता है। पक्षकारों के कृत्य द्वारा बिना न्यायिक कार्यवाही के या न्यायिक कार्यवाही द्वारा तलाक दिया जा सकता है। बिना न्यायिक कार्यवाही के पति द्वारा तलाक-उल-सुन्नत अर्थात् तलाक-अहसन एवं तलाक हसन और तलाक-उल-बिद्दत द्वारा या इला तथा जिहार द्वारा दिया जा सकता है।

पति की भाँति पत्नी मात्र अपनी स्वतंत्र इच्छा से विवाह को भंग कर देने की स्थिति में नहीं रहती हैं। मुस्लिम विधि के अंतर्गत पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद केवल निम्न स्थितियों में ही सम्भव है -

(अ) पति द्वारा तलाक के अधिकार को पत्नी में प्रत्यायोजित करने पर, अर्थात् तफवीज के अंतर्गत,

(ब) पति-पत्नी के आपसी अनुबंध द्वारा अर्थात् खुला एवं मुबारत के अंतर्गत, तथा

(स) न्यायिक विवाह-विच्छेद द्वारा अर्थात् मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 के अंतर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करके।

पत्नी मात्र अपनी स्वेच्छा से विवाह-विच्छेद करने में कभी भी सक्षम नहीं है। पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद (अ) तथा (ब) के अंतर्गत पति की सहमति तथा (स) के अंतर्गत न्यायालय के आदेश पर आश्रित रहता है।

तलाक-ए-तफवीज़ (प्रत्यायोजित तलाक)

तलाक-ए-तफवीज़ का तात्पर्य - प्रत्यायोजित तलाक से हैं। प्राचीन काल में यह प्रत्यायोजन काल भी व्यक्ति में किया जा सकता था पर वर्तमान में यह प्रत्यायोजन स्वयं पत्नी में ही निहित किया जाता है। प्रत्यायोजन के बाद भी पति का तलाक देने का अधिकार समाप्त नहीं होता। जिस व्यक्ति में तलाक देने के अधिकार का प्रत्यायोजन किया जाता है वह व्यक्ति पति के अभिकर्ता की तरह तलाक देने में उसी प्रकार सक्षम माना जाता है जैसे कि पति। इसके निम्न प्रकार हैं :- 1. **अख्तियार** - मैं तुम्हें अख्तियार देता हूँ कि तुम स्वयं को तलाक दे दो। 2. **अमीर-ब-येद** - यह तुम्हारा काम है कि जैसा चाहों वैसा करने के लिए स्वतंत्र हो। 3. **मशीयत** - मैं तुम्हें इस बात का विकल्प देता हूँ कि तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो। स्थायी प्रत्यायोजन का प्रतिसंहरण किया जा सकता

है पर अस्थायी प्रत्यायोजन का प्रतिसंहरण नहीं किया जा सकता। प्रत्यायोजन सशर्त हो सकता है और अशर्त भी। सशर्त होने पर अधिकार का प्रयोग तभी किया जायेगा जब कि वह शर्त घटित हो। **सईनुद्दीन बनाम लतीफन्निसा (1918), 46 कल 141** इस वाद में यह तय किया गया था कि घटना घटने पर ही स्वत: विवाह का विघटन नहीं होता पत्नी को अपने प्राधिकार का प्रयोग करना पड़ता है। प्रत्यायोजन पति के अधिकार को खत्म नहीं करता। "प्रत्यायोजित तलाक का यह रूप पत्नी के हाथ में शायद सबसे शक्तिशाली अस्त्र हैं जिसके द्वारा वह बिना न्यायालय की शरण जाये विवाह-बंधन से मुक्ति पा सकती है।" **मांगिला बीबी बनाम नूर हुसैन AIR (1992) क्ल० 92** उक्त वाद में यह कहा गया था कि लिखित रूप में तलाकनामा होने पर यदि दोनों पक्षकारों के हस्ताक्षर उस तलाकनामों पर हो तो यह द्विपक्षीय प्रत्यायोजन नहीं माना जायेगा और पत्नी को अधिकार होगा कि वह प्रत्यायोजित तलाक की शक्ति का प्रयोग कर सके।

खुला

खुला का शब्दिक अर्थ है 'वस्त्र खोलना' विधि की शब्दावली में खुला का मतलब है पति की सहमति से, उसे (पति को) कुछ मुआवजा (compensation) देकर, पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद।

बेली के अनुसार :- खुला का विधि में अर्थ है पति द्वारा पत्नी पर अपने अधिकार एवं प्रभुत्व को छोड़ देना। यह तलाक पत्नी की पहल पर आपसी सहमति के द्वारा होता है। प्रतिफल के रूप में मेहर या अन्य कोई मूल्यवान वस्तु या कोई अन्य अधिकार जिस पर पक्षकार सहमत हो सकता है। इस तलाक में प्रस्ताव पत्नी की तरफ से एवं स्वीकृति पति की तरफ से होती है और स्वीकृत होते ही यह तलाक एक घोषणा वाले अप्रतसिंहरणीय तलाक में परिवर्तित हो जाता हैं। सामान्य तौर पर प्रतिफल का भुगतान स्वीकृति के समय ही करना होता है। लेकिन यदि पक्षकार सहमत हो तो प्रतिफल बाद में भी दिया जा सकता है। ऊपर वर्णित स्थिति में यदि पत्नी स्वीकृति के बाद प्रतिफल न दे तो पति न्यायालय द्वारा इसकी माँग कर सकता है। स्वीकृति के पूर्व पत्नी द्वारा कभी भी प्रस्ताव वापस लिया जा सकता है। पति स्वीकृति के बाद प्रतिसंहरण नही कर सकता पर यदि पत्नी इद्दत के दौरान प्रतिफल की माँग करती है और पति यदि इस बात पर सहमत होता है तो वह प्रतिसंहरण कर सकता है। यह नियम सिर्फ शिया विधि में ही मान्य है। **खुर्शीद बीबी बनाम मोहम्मद अमीन पी०एल० डी० (1967) सु० कु० (पाक) 97** इस वाद में कहा गया था कि पत्नी खुला की माँग अधिकार स्वरूप कर सकती है यदि वह न्यायालय को अन्यथा इस बात के लिए संतुष्ट कर देती है कि उसका पति के साथ रहना एक घृणित संयोग माना जायेगा।

पति और पत्नी दोनों को ही स्वस्थचित्त एवं यौवनावस्था की वय प्राप्त किये होना चाहिए। प्रस्ताव एवं स्वीकृति दोनों ही स्वतंत्र सहमति से होने चाहिए। शिया विधि में इस संबंध में दो गवाहों की आवश्यकता होती है। **रसीद अहमद बनाम अनीसा खातून (1931) 59, आई० ए० 21** उक्त वाद में यह कहा गया था कि सुन्नी विधि मे खुला दबाव में या फिर नशे की स्थिति में किया जा सकता है पर शिया विधि में नहीं। हनफ़ी सुन्नी विधि में अभिभावक अवयस्क या विकृतचित्त की तरफ से खुला की सहमति दे सकता है। **कासिम हुसैन बेग बनाम कनीज सकीना (1932) 52 इला० 806** उक्त वाद में यह कहा गया था कि यदि राशि एक बार पक्षकारों द्वारा सहमति से तय की जा चुकी हो तो बाद में एकतरफा तौर से बढ़ायी नहीं जा सकती। **मुंशी बुजलुल रहीम बनाम लतीफुन्निसा बेगम (1861) 8, एम० आई० ए०379** इस वाद में – खुला और सामान्य तलाक में अंतर की विवेचना की गई थी। तलाक पति का मनमाना कार्य होता हैं जिसमें वह अकारण ही पत्नी का त्याग कर देता हैं जबकि खुला पत्नी की पहल पर दोनों पक्षकारों की सहमति से होता है। जिसमें कि पत्नी विवाह बंधन से मुक्ति के लिए कुछ प्रतिफल पति को देती है। खुला पति की स्वीकृति के बाद ही पूर्ण हो जाता है और प्रतिफल देने या न देने से इसकी वैधता पर कोई असर नहीं पड़ता।

मुबारत (पारस्परिक सहमति)

मुबारत का तात्पर्य पारस्परिक सहमति से एक दूसरे को स्वतंत्र करना है। इसमें तलाक की पहल पति और पत्नी दोनों ही कर सकते हैं तथा स्वीकृति के बाद तलाक एकघोषणा (अप्रतिसंहरणीय तलाक) की तरह

अविखण्डनीय हो जाता है। पक्षकारों को स्वस्थचित्त एवं यौवन होना चाहिए। सामान्य तौर पर इसमें प्रतिफल की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि दोनों पक्ष अलगाव में हित रखते है। पत्नी को इद्दत का पालन करना होता है तथा पति इद्दत के दौरान भरणपोषण के लिए उत्तरदायी होता है।

न्यायिक विवाह-विच्छेद (फस्क)

किसी न्यायालय के आदेश द्वारा विवाह-विच्छेद न्यायिक विवाह -विच्छेद कहलाता है।मुस्लिम-विधि में न्यायिक विवाह-विच्छेद को फस्क कहते है। न्यायिक तलाक का आधार मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 है। इस अधिनियम के तहत तलाक का अधिकार सिर्फ पत्नी को ही प्राप्त है। इस अधिनियम के पारित होने के पहले पत्नी के पास सिर्फ निम्न तीन अधिकार ही तलाक के लिए प्राप्त थे :- 1. यौवनावस्था का विकल्प, 2. पति की नपुंसकता, 3. लियान (Lian)। यह अधिनियम सभी मुस्लिम विचारधाराओं पर लागू होता है।इस अधि नियम की क्षेत्रीय अधिकारिता जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर पूरे भारतवर्ष में है। इस अधिनियम की धारा 2 में नौ ऐसे आधार (grounds) दिये गये हैं जिनमें से किसी एक के अंतर्गत विवाहिता स्त्री अपने विवाह को भंग करने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकती है। इन 'आधारों' की उपस्थिति मात्र से ही विवाह-विच्छेद नहीं होता, पत्नी को केवल विवाह-विच्छेद का वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिल जाता है। विवाह-विच्छेद न्यायालय की डिक्री पर ही निर्भर करता है। विवाह, मेहर एवं विवाह-विच्छेद इत्यादि के लिए पक्षकार की आयु यौवनावस्था की होनी चाहिए परंतु दीवानी प्रक्रिया संहिता (संशोधन अधिनियम 1976) के अनुसार अब वाद दायर करते समय पक्षकारों की आयु 18 वर्ष की होनी चाहिए। तो यदि पत्नी 18 वर्ष से कम है तो वह उक्त अधि नियम के अंतर्गत कोई वाद वादमित्र के द्वारा ही (दीवानी प्रक्रिया संहिता के नियमों के अनुसार) दायर कर सकती है। उक्त अधिनियम का लाभ मुस्लिम विधि के तहत विवाहित पत्नी को मिलता है। उक्त अधिनियम का लाभ स्त्री को धर्म-परिवर्तन के बाद भी प्राप्त होता है। (धारा 4) पर पुन: प्रर्वतन पर यह लाभ नहीं मिलेगा। धारा 5 के तहत मेहर का अधिकार भी प्रभावित नहीं होगा।

पत्नी द्वारा न्यायिक विवाह-विच्छेद का अधिकार

1. पति चार साल तक लापता है - उक्त आधार के तहत यदि पति 4 वर्षो तक लापता रह चुका है तो पत्नी इस आधार पर विवाह विच्छेद का वाद दायर कर सकती है। डिक्री देने के पूर्व धारा 3 के तहत न्यायालय पति के उत्तराधिकारियों को सुनकर आधार की पुष्टि करेगा। परंतुक (B) के अनुसार उक्त डिक्री 6 माह तक प्रवर्तित नहीं होगी और यदि इस समय में पति न्यायालय के समक्ष आकर यह संतुष्ट करता है कि वह वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए तैयार है तो न्यायालय डिक्री को निरस्त कर देगा।

2. भरणपोषण दो साल तक :- यदि पति 2 साल तक अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने में उपेक्षा करता है या असफल रहता है तो पत्नी के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिए यह उचित आध ार होगा। **सतुंज बनाम रहमत** AIR (1945) सिंध -48 उक्त वाद में यह कहा गया था कि निर्धनता, बेरोजगारी, बीमारी की अवस्था या अन्य किसी दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था के द्वारा यदि पति असफल रहा है तो भी पत्नी उक्त आध ार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए दावा कर सकती है।

यूसुफ रोथन बनाम सोरम्मा ए० आई० आर० 1971 केरल 261 के वाद में केरल उच्च न्यायालय ने निध ारित किया है कि पत्नी यदि बिना किसी न्यायोचित कारण के भी पति से अलग रहती हो और पति उसके भरण-पोषण की व्यवस्था न कर सका हो तो पत्नी को विवाह-विच्छेद की डिक्री धारा 2(2) के अंतर्गत प्राप्त हो सकती है। न्यायालय को उचित सम्मान देते हुये कहा जा सकता है कि यह निर्णय युक्तिसंगत नहीं है और इस पर पुनर्विचार होना चाहिए।

भरण-पोषण का दायित्व पति का आत्यन्तिक दायित्व है।

3. सात साल तक पति का कारावास - पति को यदि किसी अपराध के लिए सात या अधिक वर्षो तक का कारावास हुआ हो तो पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री का वाद प्रस्तुत कर सकती है। इस आधार पर विवाह भंग कराने का अधिकार उस समय से प्रारम्भ माना जायगा जब पति के कारावास का निर्णय अंतिम रूप से निश्चित हो चुका हो।

4. तीन वर्षो तक वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन ना करना – यदि पति बिना किसी युक्तियुक्त कारण के वैवाहिक कर्त्तव्यों के पालन में 3 वर्षो तक यदि उपेक्षा करता है तो पत्नी के पास यह उचित आधार होगा कि वह विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिए दावा करे। जैसे – पति द्वारा बिना किसी कारण के पत्नी का अधित्यजन करना।

5. पति की नपुंसकता :- नपुंसकता विवाह के समय तथा विवाह विच्छेद का प्रार्थना पत्र देते समय की ही होनी चाहिए। विवाहोपरांत नपुंसकता अमान्य होगी। नपुंसकता संबद्ध पक्षकार के संबंध में ही जाँची जायेगी। नपुंसकता शारीरिक या मानसिक हो सकती है। इस संबंध में पति को यह अधिकार होगा कि वह अपनी पुंसकता सिद्ध करने के लिए न्यायालय से एक वर्ष का समय माँगे और यदि इस काल में यदि वह अपनी पुंसकता को सिद्ध का देता है तो वाद खारिज कर दिया जायेगा। ऐसे समय का माँगा जाना पति का अधिकार है न्यायालय इसे देने से मना नहीं कर सकता।

गुलाम मुहम्मद खाँ बनाम हसीना AIR (1988) J & K 12 उक्त वाद में यह कहा गया था कि यदि पति की नपुंसकता का परीक्षण किसी सक्षम मेडीकल बोर्ड द्वारा होता हैं और सम्बद्ध प्रमाणपत्र पति न्यायालय में जमा कर देता है तो नपुंसकता को आसिद्ध करने का पुनः आदेश अविधिक होगा।

6. पागलपन, कुष्ठरोग तथा रतिरोग :- इस आधार में वर्णित पागलपन, कुष्ठरोग तथा रतिरोग आधारों का स्थायी होना या असाध्य होना वर्णित नहीं है। अतः यदि विहित काल (2 वर्ष) तक ऐसी कमी पति के अंदर चाहे नियमित या अनियमित रूप से हो तब भी यह विवाह-विच्छेद का उचित आधार होगा। रतिरोग चाहे वैवाहिक संभोग के पहले या फिर बाद में उत्पन्न हुआ हो यह उचित आधार होगा।

7. यौवनावस्था का विकल्प :- धारा 2 (7) के अनुसार यदि किसी पत्नी का विवाह उसकी अवयस्कता (15 वर्ष कम उम्र) में उसके पिता अथवा किसी अन्य अभिभावक ने कराया हो और वयस्कता (15 वर्ष)का वय प्राप्त करने पर उसने विवाह निराकृत (repudiate) कर दिया हो तो इस स्थिति से न्यायालय को अवगत कराते हुए वह विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकती है।

8. पति की क्रूरता – क्रूरता में मानसिक और शारीरिक क्रूरता दोनों ही आती है। मानसिक क्रूरता से तात्पर्य है कि पत्नी का मन पति के किसी व्यवहार से आहत महसूस करे और शारीरिक क्रूरता का मतलब हैं कि पत्नी को यह विश्वास हो जाये कि उसका जीवन सुरक्षित नहीं है कुल मिलाकर क्रूरता से तात्पर्य पति के संदर्भ में पत्नी के मन में असुरक्षा का पैदा होना है। निम्न उदाहरणों को क्रूरता माना जा सकता है –

(i) अनैतिक जीवन व्यतीत करना।

(ii) बिना आज्ञा पत्नी की सम्पत्ति का अंतरण करना।

(iii) पत्नी को अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करना।

(iv) धार्मिक रीति-रिवाजों पर प्रतिबंध लगाना।

(v) झूठे मुकदमें में फंसाना क्रूरता माना जायेगा।

(vi) पत्नियों के साथ समान व्यवहार न करना क्रूरता माना जायेगा।

(vii) इतवारी बनाम असगरी यह तय किया गया था कि द्वितीय पत्नी के साथ प्रथम पत्नी को रहने के लिए बाध्य करना क्रूरता माना जायेगा।

9. अन्य आधार :- यह आधार अवशिष्ट उपधारा के रूप में जाना जाता है। अर्थात् यदि कोई आधार अन्य आधारों में न पाया जाये तो इस आधार में गिना जा सकता है। अतः खुला, मुबारत, इला, जिहार तथा लियान आदि के आधार पर पत्नी इस उपधारा के अंतर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए दावा कर सकती है।

प्रश्न 5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :-

(अ) मुतवल्ली	**(Bihar P.C.S (J) 2000, 2011)**
(ब) इद्दत	**(Bihar P.C.S (J) 2000, 2006, 2011)**
(स) अभिस्वीकार	**(Bihar P.C.S (J) 2006, 2011)**
(द) हिबा-ब-शर्तुल-एवज	**(Bihar P.C.S (J) 2006)**

उत्तर 5 (अ) मुतवल्ली :-

वह व्यक्ति जो वक्फ के उद्देश्यों के संदर्भ में एवं उसकी परिपूर्ति के लिए वक्फ की सम्पत्ति का प्रबंधन, देखरेख एवं उसके लाभांश को उद्देश्यों के लिए विनियोजित करता है, मुतवल्ली कहा जाता है।

विद्या वरूथी बनाम बालू स्वामी अय्यर AIR (1922) P.C. 123

मुतवल्ली ही ईश्वर को प्रदान की गई सम्पत्ति का प्रबंध ईश्वर के सेवक के रूप में सम्पत्ति के कल्याण के लिए करता है।

मुतवल्ली की नियुक्ति - वक्फ एक्ट 1995 के पूर्व

अधिनियम के पूर्व मुतवल्ली की नियुक्ति वरीयताक्रम में वर्णित निम्न व्यक्तियों द्वारा की जाती थी -

(1) वाकिफ
(2) वाकिफ का निष्पादक
(3) मृत्यु शैय्या से स्वयं मुतवल्ली
(4) न्यायालय
(5) धर्म सभा

मुतवल्ली कौन हो सकता है -

कोई भी व्यक्ति जो स्वस्थचित्त व वयस्क हो मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है। परंतु यदि मुतवल्ली का पद पैतृक हो और अंतिम मुतवल्ली की मृत्यु हो गई हो, और अगला मुतवल्ली कोई वयस्क न नियुक्त किया जा सकता हो तो अवयस्क को मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है। मुतवल्ली का पद पैतृक निम्न स्थितियों में होता है - (क) जब वक्फ विलेख में वाकिफ द्वारा ऐसा वर्णित हो, (ख) कोई स्थानीय प्रथा हो, परंतु इस संबंध में यह महत्वपूर्ण है कि चूँकि शरियत एक्ट द्वारा प्रथाओं का महत्व समाप्त कर दिया गया है इसलिए जब तक न्यायालय प्रथा को मान्यता न दे किसी प्रथा के द्वारा मुतवल्ली का पद पैतृक नहीं माना जा सकता। किसी भी महिला को मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है, परंतु यदि मुतवल्ली के पद के साथ कुछ धार्मिक कार्यों का भी सम्पादन करना हो। जैसे - (1) सज्जादनशीन (धार्मिक प्रमुख) (2) इमाम (धापर्मिक प्रार्थनाओं का नेतृत्व करने वाला) (3) कातिब (धर्मोपदेशक) (4) दरगाह के मुजावर इत्यादि (दरगाह का सामान्य कार्य करने वाले) तो महिला व गैर मुस्लिम की नियुक्ति मुतवल्ली के रूप में नहीं हो सकती अर्थात् प्रबंधकीय या गैर धार्मिक कार्यों के लिए या धार्मिक कार्य पद से संलग्न हो और महिला उस कार्यों के लिए किसी पुरूष की नियुक्ति कर सकती हो तो महिला मुतवल्ली नियुक्त हो सकती है। गैर मुस्लिम व्यक्ति भी मुतवल्ली का पद ग्रहण कर सकता है। मुतवल्ली सह मुतवल्ली की नियुक्ति भी वक्फ के उद्देश्यों के संदर्भ में कर सकता है।

कार्यों एवं शक्तियाँ :-

(1) मुतवल्ली का पद प्रबंधक की तरह होता है। यद्यपि इसके कार्य न्यासी की तरह होते है। परंतु अधिकार एवं दायित्वों में असमानता होती है।

(2) मुतवल्ली का मुख्य कार्य वक्फ के लाभांशों से वक्फ के उद्देश्यों की पूर्ति करना तथा वक्फ के निर्देशों के अनुसार वक्फ की सम्पत्ति का प्रबंध एवं प्रशासन करना।

(3) मुतवल्ली को वक्फ के अधिकारी के तौर पर किसी भी सम्पत्ति पर कब्जे का अधिकार होता है। (वक्फ की)

(4) धारा 53 वक्फ अधिनियम के अनुसार - वक्फ विलेख मे कोई भी बात होते हुए मुतवल्ली वक्फ की सम्पत्ति का विक्रय बिना बोर्ड की अनुमति के नहीं कर सकता।

(5) धारा 51 के अनुसार - मुतवल्ली बिना बोर्ड की अनुमति के वक्फ की सम्पत्ति का विक्रय, विनिमय, हिबा चाहे वक्फ विलेख में कोई भी बात हो नहीं कर सकता। बोर्ड यह अनुमति निम्न आधार पर देगा :-

(क) यदि ऐसा करना वक्फ के हित में है।

(ख) यदि वह वक्फ के उद्देश्यों से संगत है या पर्याप्त प्रतिफल मिल रहा है।

(6) वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 56 के अनुसार - बोर्ड की अनुमति के बाद मुतवल्ली एक से तीन साल का पट्टा वक्फ की सम्पत्ति का कर सकता है।

(7) मुतवल्ली बिना न्यायालय या वक्फ के निर्देशों के ऋण नहीं ले सकता। यदि वह ऐसा करता है तो यह उसका व्यक्तिगत ऋण माना जायेगा।

(8) चूँकि मुतवल्ली का पद व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित रहता है अतः उसका पद अन्तरण योग्य नहीं है।

मुतवल्ली का हटाया जाना

मुतवल्ली को पद-मुक्त कर देने का अधिकार वाकिफ ने यदि अपने पास पहले से ही सुरक्षित न कर लिया हो तो एक बार विधिवत नियुक्ति हो जाने पर स्वयं वाकिफ भी मुतवल्ली को नहीं हटा सकता है। न्यायालय को चूँकि अपने अधिकार-क्षेत्र में स्थित प्रत्येक वक्फ का संरक्षक माना जाता है इसलिए वक्फ-सम्पत्ति अथवा हितग्राहियों के हितों को ध्यान में रखते हुए यदि आवश्यक हो तो न्यायालय मुतवल्ली को पद से हटा सकता है।

वक्फ अधिनियम 1995 धारा 64 के अनुसार वक्फ बोर्ड मुतवल्ली को निम्न में से किन्हीं आधारों पर हटा सकती है :-

(1) धारा 61 के तहत यदि मुतवल्ली किसी दण्डनीय अपराध से एक बार दण्डित हुआ हो धारा 61 के अनुसार पंजीकरण का आवेदन न देने पर, आयकर रिटर्न (विवरणी) दाखिल न करने पर, बोर्ड के निदेशों का अपालन करने पर इत्यादि आधारों पर दोषसिद्धि होने पर 8000/- रू० तक दण्ड दिया जा सकता है।

(2) यदि मुतवल्ली आपराधिक न्यास-भंग करता है।

(3) यदि मुतवल्ली अननुमोचित दिवालिया घोषित किया जा चुका है।

(4) यदि मुतवल्ली अस्वस्थ मस्तिष्क के कारण वक्फ के कार्यों को करने में असमर्थ है।

(5) शराब या स्वापक औषधि लेता हो।

(6) यदि मुतवल्ली वक्फ के खिलाफ विधिक सलाहकार नियुक्त कर दिया गया हो।

(7) यदि मुतवल्ली दो वर्ष तक वक्फ के खातों का हिसाब नहीं रखता।

(8) यदि मुतवल्ली वक्फ से संबंधित पट्टे में या संविदा में हितबद्ध हो जाता है।

(9) यदि मुतवल्ली कर्त्तव्य में उपेक्षा करता है।

(10) यदि मुतवल्ली वक्फ बोर्ड, केंद्र तथा राज्य सरकार के निर्देशों की उपेक्षा करता है इत्यादि।

(ब) इद्दत :- इद्दत का शाब्दिक अर्थ है 'गणना करना'।

इद्दत से तात्पर्य उस अवधि से है जिसमें कोई भी मुस्लिम स्त्री विवाह-विघटन के बाद चाहे वह विघटन मृत्यु द्वारा या पक्षकारों के किसी कार्य द्वारा हुआ हो पुनर्विवाह करने से प्रतिबंधित रहती है।

उद्देश्य - (1) यदि स्त्री गर्भवती हो तो उस बच्चे का पितृत्व तय करना या निश्चित करना।

(2) विवाह का विघटन यदि पति की मृत्यु से होता है तो पति के प्रति शोक प्रकटीकरण एवं उसके सम्मान में किया जाता है।

अवधि - **(1) यदि विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद से होता है -**

यदि सम्भोग न हुआ हो तो इद्दत पालन करने की आवश्यकता नहीं है।

(i) यदि संभोग हुआ हो तीन मासिक चक्रों तक

(ii) यदि मासिक चक्र नहीं है तो तीन चन्द्रमास तक

(iii) यदि स्त्री गर्भवती हो तो बच्चा पैदा होने तक या गर्भपात होने तक।

(2) यदि विवाह का विघटन मृत्यु द्वारा हुआ हो -

(i) इद्दत की अवधि 4 माह 10 दिन होगी।

(ii) यदि मृत्यु के समय स्त्री गर्भवती हो तो बच्चा पैदा होने तक या 4 माह 10 दिन जो भी अवधि लम्बी हो।

(iii) अगर वैवाहिक संभोग नहीं हुआ हो तो 4 माह 10 दिन तक इद्दत पालन करने होगा।

तलाक से विवाह विच्छेद के संबंध में इद्दत की अवधि धारा 2(ब) मुस्लिम महिला तलाक पर अधिकारों का संरक्षण अधिनियम 1986 में वर्णित है।

इद्दत में संबंध में आवश्यक नियम :-

(1) यदि विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद के द्वारा होता है और इद्दत काल में पति की मृत्यु हो जाती है तो स्त्री को मृत्यु की तारीख से पुनः चार माह 10 दिन का इद्दत पालन करना होगा।

(2) इद्दत का समय विवाह विच्छेद या मृत्यु जैसी भी स्थिति हो कि तारीख से प्रारम्भ होगा। न कि उस दिन से जब पति के देहान्त या उसके तलाक दिये जाने की उसे सूचना मिली हो। इद्दत के लिए निर्धारित अवधि समाप्त हो चुकने के पश्चात् तलाक या पति की मृत्यु की सूचना मिलने पर उस महिला को निर्धारित इद्दत पालन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

(3) सामान्य तौर पर पति इद्दत काल में पुनर्विवाह करने के लिए स्वतंत्र है पर यदि उसकी चार पत्नियाँ हैं तो पाँचवीं स्त्री से निकाह करने के लिए उसे चौथी पत्नी के इद्दत काल तक इंतजार करना होगा। (पति के लिए उपधारित इद्दत)

(4) यदि पति द्वारा तलाक दिया गया हो और फिर तलाक से इंकार किया गया हो तो यदि पत्नि उद्घोषणात्मक वाद दायर करती है तो डिक्री की तिथि से नहीं बल्कि तलाक की तिथि से इद्दत की अवधि की गणना की जायेगी।

(5) इद्दत की अवधि में शिया मुस्लिम द्वारा किया गया निकाह बातिल एवं सुन्नी मुस्लिम द्वारा किया गया निकाह फासिद होता है।

(6) यदि कोई शिया मुस्लिम इद्दत की अवधि व्यतीत करती हुई स्त्री से निकाह की अवैधता की जानकारी होते हुए भी संभोग करता है तो वह स्त्री उस व्यक्ति के लिए सदा के लिए हराम (निषिद्ध) हो जाती है।

(7) इद्दत की अवधि के दौरान स्त्री भरण-पोषण एवं मेहर के लिए हकदार होती है।

(8) यदि तलाक अविखण्डनीय है और इद्दत अवधि में पक्षकार की मृत्यु हो जाती है तो सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार होगा।

(स) अभिस्वीकार (इकरार-ए-नसब)

सामान्य तौर पर अभिस्वीकृति किसी संतान का पिता होना स्वीकृति करना है। यदि विवाह पक्षकारों में संशयात्मक हो और इस कारण शिशु की औरसता संदिग्ध हो जाए तो व्यक्ति उस संतान की अभिस्वीकृति करके उसे अपना पुत्र होना स्वीकार कर सकता है।

अर्थात् यदि शिशु की औरसता ना तो पूर्णतया सिद्ध हो ना पूर्णतया आसिद्ध हो तो अभिस्वीकृति की जा सकती है।

मुहम्मद अल्लाहदाद बनाम मुहम्मद इस्माइल (1888) 10 इला० 289 के मामलें में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों ने इस संबंध में यह अभिनिर्धारित किया कि अभिसस्वीकृति तथा धर्मजता की मुस्लिम विधि का उन मामलों पर कोई अंतर नहीं पड़ता जहाँ बच्चे की अधर्मजता प्रमाणित तथा स्थापित कर दी गई हो। यह उसके माता-पिता के बीच विधिक संबंधों का असंभव होने से या शादी की वैधता अप्रमाणित होने से स्थापित हो सकती है। यह सिद्धांत वैधता की अनिश्चितता पर लागू होता है तथा ऐसे मामलों में अभिस्वीकृति का प्रभाव होता है। परंतु यह प्रभाव अभिस्वीकृत बच्चे के माता-पिता के बीच विधिक संबंधों की उपधारणा से होता है। यदि एक बार किसी अभिस्वीकृति को साबित कर दिया जाय तो विवाह को अप्रमाणित करने का भार उन लोगों पर चला जाता है जो उस तथ्य का प्रतिवाद करते हैं और उसके माता-पिता के विवाह से इंकार करते हैं। पितृत्व की अभिस्वीकृति से ऐसी उपधारणा का उद्भव हो जाता है जिसका खण्डन किया जा सकता है।

अभिव्यक्त एवं विवक्षित अभिस्वीकृति यदि किसी व्यक्ति ने अपने को किसी संतान का पिता होने की अभिस्वीकृति एक स्पष्ट घोषणा द्वारा की हो तो अभिस्वीकृति अभिव्यक्त (express ackmowledgement) मानी जाती है। अभिस्वीकृति स्पष्ट घोषणा के रूप में न होकर मात्र व्यवहार द्वारा भी हो सकती है। कोई व्यक्ति

यदि किसी शिशु को अपनी संतान की भांति रखता हो तथा उससे प्रत्यक्षतः ठीक अपनी औरस संतान की भांति ही व्यवहार करता रहा हो तो उसके इस आचरण से संतान की अभिस्वीकृति अनुमानित की जा सकती है। इसे विवक्षित अभिस्वीकृति (implied acknowledgement) कहते हैं।

मो० अमीन बनाम वकील अहमद AIR (1952) सु० को० 358

इस वाद में कहा गया था कि अभिस्वीकृति अभिव्यक्त या विवाक्षित हो सकती है।

विधिमान्य अभिस्वीकृति की आवश्यकताएँ

किसी विधिमान्य अभिस्वीकृति में निम्नलिखित शर्तों का पालन होना अनिवार्य है :-

(1) अभिस्वीकृति किए जाने वाले व्यक्ति को अभिस्वीकृति करने वाले व्यक्ति से वैध संबंध होना चाहिए। अर्थात् वह जिना की संतान नहीं होना चाहिए।

(2) अभिस्वीकृति करने वाला मुस्लिम स्वस्थचित्त, व्यस्क एवं सविदा करने के योग्य होना चाहिए।

(3) शिशु के पिता के बारे में अनिश्चितता होनी चाहिए अर्थात् उसका पितृत्व अज्ञात होना चाहिए।

(4) बच्चे की माता के साथ अभिस्वीकृतिकर्ता के विवाह की सभी शर्ते पूर्ण होनी चाहिए।

(5) दोनों में युक्तियुक्त आयु का अंतर होना चाहिए। बेली के अनुसार यह अंतर कम से कम साढ़े बारह वर्ष का होना चाहिए।

(6) संतान द्वारा यौवनावस्था प्राप्त कर लेने पर अभिस्वीकृति का अनुमोदन होना चाहिए। वह चाहे तो इस अभिस्वीकृति को निराकृत कर सकता है।

पितृत्व की अभिस्वीकृति अप्रतिसंहरणीय है

यौवनावस्था के विकल्प का प्रयोग न किये जाने पर अभिस्वीकृत-संतान द्वारा अभिस्वीकृति का अनुमोदन माना जाता है। एक बार अभिस्वीकृति का अनुमोदन (approval) कर देने पर वह इसे पुनः निराकृत नहीं कर सकता है और यह अप्रतिसंहरणीय (irrevocable) हो जाता है। इसी प्रकार, अभिस्वीकृति प्रदान करने वाला पिता (acknowledger) भी पुनः इसे निरस्त नहीं कर सकता है। पूर्णरूप से विधिमान्य अभिस्वीकृति अप्रतिसंहरणीय है।

अभिस्वीकृति के विधिक प्रभाव

पितृत्व की अभिस्वीकृति के विधिक प्रभाव निम्नलिखित हैं –

(1) अभिस्वीकृत संतान अभिस्वीकृतिकर्त्ता की औरस संतान बन जाता है तथा उसका पितृत्व भी ससुस्थापित हो जाता है।

(2) किसी औरस संतान की भाँति ही अभिस्वीकृत संतान माता, पिता (अभिस्वीकृतकर्त्ता) तथा अन्य सम्बन्धियों की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बन जाता है।

(3) किसी संतान के पितृत्व की अभिस्वीकृति से उस संतान की माँ तथा अभिस्वीकृतिकर्त्ता के बीच वैध-विवाह भी सुस्थापित हो जाता है। अभिस्वीकृत संतान की माँ अभिस्वीकृतिकर्त्ता की पत्नी की हैसियत (status) प्राप्त कर लेती है तथा उसकी तथा उस संतान की सम्पतियों की उत्तराधिकारिणी भी बन जाती है।

(द) हिबा-ब-शर्तुल-एबज :- (1) हिबा-ए-मर्ज-उल मौत का तात्पर्य मरणासन्न अवस्था में किया गया दान है। मुस्लिम-विधि के अंतर्गत मर्ज-उल-मौत के दौरान मृत्यु-शैय्या पर से किये गये दान (हिबा) को वसीयत के रूप में माना जाता है। दान होते हुए भी इसे एक वसीयत के रूप में प्रभावी किया जाता है। यदि किसी मुस्लिम द्वारा अपनी सम्पत्ति का हिबा करने पर यह सिद्ध हो जाय कि हिबा करते समय वह 'मर्ज-उल-मौत' से रोगग्रसत था तो हिबा होने के बावजूद इसे वसीयत मान लिया जाता है और सम्पत्ति दानग्रहीता में वसीयत के नियमों के अनुसार ही निहित हो पाती है। 'मर्ज-उल-मौत' किसी रोग विशेष का नाम नहीं है। कोई भी ऐसा रोग जिससे किसी मुस्लिम व्यक्ति के मन में पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो जाय कि वह अब जीवित नहीं बचेगा तथा उसी रोग के कारण उस व्यक्ति का देहांत हो, 'मर्ज-उल-मौत' माना जा सकता है।

(2) उद्देश्य :- इस संकल्पना का उद्देश्य हिबा द्वारा वसीयत के विहित सीमा के नियम को विफल बनाने से रोकना है।

(3) इस नियम के निम्न आवश्यक तत्व हैं :-

(क) व्यक्ति किसी न किसी रोग से ग्रसित होना चाहिए।

(ख) उस व्यक्ति को यह पूर्णविश्वास होना चाहिए कि उसकी मृत्यु अब निश्चित है।

(ग) इस संबंध में कुछ बाहरी प्रमाण भी होने चाहिए जैसे – सामान्य काम काज का न कर पाना।

(घ) यह रोग उसकी मृत्यु का कारण बनना चाहिए।

(ङ) उक्त सारे तत्व हर मामले की तथ्यों एवं परिस्थितियों से तय होंगे।

(च) **अब्दुल हाफ़िज बनाम साहिबा बाई ए० आई० आर० 1975 बिहार – 165**

उक्त वाद में 80 साल के वृद्ध द्वारा जो कि गम्भीर रूप से बीमार था मृत्यु के पहले किया गया हिबा हिबा-ए-मर्ज-उल मौत माना गया है।

उपरोक्त हिबा के परिणाम :-

(क) उपरोक्त हिबा में हिबा तथा वसीयत दोनों के नियम लागू होते है।

(ख) परंतु हिबा के सारे तत्वों को पूर्ण होना चाहिए।

(ग) **बेमोन्ट बनाम इवबैंक 1902 चान्सलरी 889** के वाद में कहा गया है कि Donotio-mortis-cousa को न तो पूरी तरीके से दान माना जा सकता हैं और ना ही पूरे तरीके से वसीयत।

(घ) उपरोक्त हिबा करने के बाद उसके विधिक परिणामों को वसीयत के नियमों द्वारा शासित किया जाता है। (1/3 सीमा का नियम इत्यादि)

यदि विहित सीमा से ज्यादा का हिबा किया जाता है तो उत्तराधिकारियों की सहमति से संबंधित सारे नियम लागू होंगे।

(ङ) यदि हिबा कर्त्ता आदाता को बिना कब्जा दिये मर जाये तो हिबा शून्य माना जाता है।

(च) यदि हिबाकर्त्ता उक्त बीमारी के फलस्वरूप ना मरे तो हिबा पर हिबा के ही सारे नियम लागू होंगे।

मर्ज-उल मौत के दौरान किसी भी ऋण की अभिस्वीकृति की जा सकती है और यह बाध्य होगी। परंतु सामान्य अवस्था में की गई अभिस्वीकृति या किसी अन्य तरीके (लिखित या मौखिक) से की गई अभिस्वीकृति ज्यादा मान्य होगी।

प्रश्न 6. मुस्लिम विधि के अनुसार सही, फासिद और बातिल शादी समझाइये और इन तीनों में भेद बताइये। **(Bihar P.C.S (J) 2000)**

या

मुस्लिम विधि में विवाह के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए। उनके परस्पर अंतरों को भी स्पष्ट कीजिए। **(Bihar P.C.S (J) 2011)**

उत्तर :- मानव सभ्यता का आधार विवाह नामक संस्था है। कुरान के अनुसार – मोहम्मद साहब ने कहा है कि निकाह मेरी सुन्नत हैं जो इसे नहीं मानता वह मेरा नहीं है।

रद्द-उल-मुत्तार के अनुसार आदम के समय से आज तक हम लोगों के लिए यह (निकाह) रखा गया है और जन्नत में होने वाला ऐसा कोई भी इबादत का कार्य नहीं है सिवाय निकाह और ईमाम के। विधिशास्त्रियों में इस बात का इज्मा है कि निकाह सुन्नत-ए-मुवाकिदा हैं अर्थात् ऐसा आचरण जिसका करना साधुता है और विचलन पाप।

निकाह के प्रकार

अभिव्यक्त निषेध एवं अक्षमताओं के आधार पर मुस्लिम निकाह को तीन भागों में बाँटा गया है :-

(क) सहीह (वैध निकाह)

(ख) बातिल (शून्य निकाह)

(ग) फासिद (अनियमित निकाह) —

फासिद निकाह की संकल्पना शिया विधि में अमान्य हैं। शिया विधि में या तो निकाह सही होते हैं या बातिल

(क) सहीह (वैध निकाह) - जब निकाह में सभी शर्तें पूर्ण होती हैं एवं कोई निषेध या अक्षमता नहीं पायी जाती तो निकाह सहीह होता है।

सहीह निकाह के परिणाम :-

(i) दोनों पक्षकारों को एक दूसरे से वैवाहिक संभोग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(ii) पुरूष पति की एवं स्त्री पत्नी की प्रस्थिति प्राप्त कर लेते हैं।

(iii) पति तथा पत्नी के विवाह से पहले की विधिक प्रास्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता है अर्थात, कानून की दृष्टि में पति तथा पत्नी दो स्वतंत्र व्यक्ति माने जायेंगे; विवाह इनके व्यक्तित्व का एकीकरण नहीं करता। किसी मुस्लिम पत्नी की सम्पत्ति पर भी उसके पति का कोई नियंत्रण नहीं रहता। इसी प्रकार पति की सम्पत्ति में पत्नी का भी कोई अधिकार नहीं रहता है। पत्नी को पति की सम्पत्ति की चोरी के अपराध का दोषी माना जा सकता है।

(iv) पत्नी मेहर एवं भरण-पोषण की अधिकारिणी हो जाती हैं।

(v) निकाह के फलस्वरूप उत्पन्न बच्चे एवं जायज होते हैं।

(vi) पारस्परिक उत्तराधिकार प्राप्त हो जाता है।

(vii) विवाह विघटन पर स्त्री को इद्दत पालन करना आवश्यक होता है।

(viii) पत्नी पति के साथ वैवाहिक घर में रहने के लिए बाध्य होती है।

(ix) निषिद्ध संबंधों पर (करावात, मुशारत, रिजा) के उल्लंघन में किया गया निकाह बातिल होता है।

(x) कोई अन्य समझौता जो कि निकाह नामे में हो और जो इस्लाम के एवं निकाह के उद्देश्यों के विपरीत न हो लागू करवाया जा सकता हैं।

(ख) बातिल अर्थात् (शून्य निकाह) :- यदि निकाह आत्यान्तिक निषेध हो या अक्षमताओं (शिया विधि के ऊपर ही लागू हो) के उल्लंघन में किया जाता है तो इसे बातिल निकाह कहते हैं यह प्रारम्भ से ही शून्य होता है। इसे निकाह सिर्फ इसीलिए कहते हैं क्योंकि प्रक्रियात्मक औपचारिकताएँ पूर्ण हो जाती हैं। शिया विधि के अंतर्गत बातिल निकाह निम्न हैं -

(1) आत्यान्तिक निषेध (कमबत, मुशारद, रिजा) के उल्लंघन में किया गया निकाह।

(2) अक्षमता (पक्षकारों की) (आयु विकृतचित्त) में किया गया निकाह।

(3) पाँचवी पत्नी से किया गया निकाह।

(4) धार्मिक यात्रा के दौरान किया गया निकाह।

(5) इद्दत के दौरान किया गया निकाह।

(6) गैर-मुस्लिम से किया गया निकाह।

सुन्नी विधि के अंतर्गत बातिल निकाह - आत्यन्तिक निषेध, अक्षमता, इत्यादि।

बातिल निकाह के विधिक परिणाम :-

(i) यह निकाह नहीं माना जाता और इससे संबद्ध कोई भी विधिक प्रसंगति उत्पन्न नहीं होती।

(ii) पुरूष को पति और स्त्री को पत्नी की प्रास्थिति प्राप्त नहीं होती।

(iii) इस निकाह के फलस्वरूप वैवाहिक पूर्णता होने पर उत्पन्न संताने अधर्मज मानी जाती हैं। (जिना की संतान)

(iv) पारस्परिक उत्तराधिकार प्राप्त नहीं होता।

(v) इस निकाह को शून्य घोषित कराने के लिए किसी भी विधिक कार्य की आवश्यकता नहीं होती।

(vi) चूँकि यह संबंध निकाह नहीं होता इसलिए पक्षकार निकाह संबंधी किसी भी शरियत कर्त्तव्यों को पालन करने की आवश्यकता नहीं होती।

(vii) पत्नी मेहर एवं भरण-पोषण के लिए अधिकारी नहीं होती।

(viii) इस निकाह के बाद पक्षकार पुर्नविवाह करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं।

(ix) यदि निकाह पूर्णता को प्राप्त हो जाता है तो पत्नी प्रथागत मेहर की अधिकारी होती है।

(ग) फासिद अर्थात् अनियमित निकाह :- अनियमित विवाह केवल सुन्नी-विधि में ही मान्य है। शिया विधि में अनियमित विवाह नहीं होते। अनियमित विवाह ऐसे अपूर्ण विवाह होते हैं जिन्हें इनकी अनियमितताएँ दूर करके पूर्ण किया जा सकता है। पूर्ण होने पर ऐसे विवाह प्रारम्भ से ही विधिमान्य विवाह मान लिए जाते हैं। किसी सापेक्ष निषेध का उल्लंघन होने पर सुन्नी विधि में विवाह अनियमित माना गया है।

अनियमित (फासिद) विवाह के विधिक प्रभाव

(Legal Effects of Irregular Marriage)

(1) सम्भोग वैध (lawful) होता है।

(2) संतानें धर्मज (legitimate) होती हैं तथा उन्हें अपने माता-पिता की सम्पत्तियों का उत्तराधिकारी भी माना जाता है।

(3) पति तथा पत्नी में परस्पर उत्तराधिकार नहीं रहता। अर्थात् विवाह यदि फासिद है तो पति के देहान्त के पश्चात् पत्नी उसके सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं मानी जायगी। इसी प्रकार पति भी पत्नी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता है।

(4) फासिद विवाह में यदि संभोग न हो पाया हो तो पत्नी को कोई मेहर (dower) नहीं मिलता है।

(5) संभोग हो चुकने की स्थिति में भी पत्नी उचित मेहर (proper dower), अथवा निश्चित मेहर जो भी कम हो, केवल उसे ही प्राप्त करने की अधिकारिणी है।

(6) संभोग होने के पूर्व ही विवाह-विच्छेद होने पर पत्नी का इद्दत पालन करना आवश्यक नहीं है। विवाह-विच्छेद यदि संभोग के पश्चात् हुआ है तो पत्नी को केवल तीन माह की इद्दत का पालन करना होता है।

(7) अनियमित विवाह पति-पत्नी का स्थायी एवं पूर्ण संबंध नहीं माना जाता है अतः अनियमित विवाह के दम्पत्तियों को विवाह की अनियमितता दूर करने के लिए बाध्य करने अन्यथा विवाह को ही भंग करने का अधिकार काजी को प्राप्त है। संभोग के पूर्व या उसके पश्चात् पति-पत्नी स्वयं भी अपने अनियमित विवाह को भंग कर सकते हैं।

शिया विधि - अनियमित विवाह शिया-विधि मे मान्य नहीं है। शिया-विधि के अंतर्गत विवाह या तो पूर्णतया विधिमान्य (सहीह) हो सकते हैं या शून्य (बातिल)।

अंतर

सही विवाह	शून्य (बातिल) विवाह	अनियमित (फासिद) विवाह
1. सही विवाह मान्य होता है।	1. यदि रूकावट निरपेक्ष और स्थायी है तो विवाह शून्य होता है।	1. यदि विवाह सापेक्ष और स्थायी है तो विवाह अनियमित होता है।
2. वैध विवाह में कोई रूकावट नहीं होती।	2. शून्य विवाह में कभी भी रूकावटें दूर नहीं की जा सकती अर्थात् शून्य विवाह प्रारम्भ से ही शून्य होता है।	2. परंतु अनियमित विवाह में निषेध सापेक्ष होते हैं, इसलिये विवाह की रूकावट दूर हो जाने पर विवाह मान्य हो जाता है।
3. वैध विवाह में पति-पत्नी	3. शून्य विवाह में	3. परंतु अनियमित विवाह में यदि पूर्णावस्था प्राप्त कर ली

के बीच वैधानिक अधिकारों या दायित्वों का सृजन होता है।	पति-पत्नी के बीच वैधानिक अधिकारों या दायित्वों का सृजन नहीं होता है।	है तो कुछ वैधानिक परिणाम होते हैं।
4. सही विवाह में समागम वैध होता है।	4. शून्य विवाह में समागम अवैध (जिना) होता है और उसकी संतान अधर्मज होती है।	4. अनियमित विवाह में समागम वैध तथा संतान धर्मज होती है।

प्रश्न 7. शरीयत ऐक्ट, 1937 के मुख्य प्रावधान बताइये। इस अधिनियम से आये परिवर्तन बताइये।
(Bihar P.C.S (J) 2000)

उत्तर :- वैयक्तिक विधि का सुधार सरकार के लिए गम्भीर समस्या पैदा करता है, विशेषतया यदि धर्म उसमें भाग लेता हो। हमारे देश में इस्लामिक विधि का सुधार काफी कठिन रहा है हालांकि यह जनता का विचार है कि समय के अनुसार विचारों को मुस्लिम विधि में अधिनियमित किया जाना चाहिये।

कुछ अधिनियम मुस्लिम वैयक्तिक विधि का सुधार करने के लिये अधिनियमित किये गये हैं। एक मुख्य अधिनियम जो 1937 में पारित किया गया था।

शरियत एक्ट की विशेषताएँ

(1) इस एक्ट का पूरा नाम मुस्लिम वैयक्तिक विधि (शरियत) प्रभावीकरण अधिनियम 1937 हैं। यह 7 अक्टूबर 1937 को लागू हुआ था। यह जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर पूरे भारतवर्ष में लागू हैं। इस एक्ट का उद्देश्य भारत में रहने वाले मुस्लिमों पर शरियत विधि को प्रभावी करना है।

(2) शरियत एक्ट की धारा 2 के अनुसार - ऐसे वादों में जिनमें पक्षकार मुस्लिम हो निम्नलिखित मामलों में लागू की जाने वाली विधि शरीयत होगी -

(क) निर्वसीयत उत्तराधिकार
(ख) महिलाओं की विशेष सम्पत्ति (संविदा हिबा का दाय में प्रांत)
(ग) निकाह
(घ) तलाक (इला, जिहार, खुला, मुबारत, लियान)
(ङ) भरण-पोषण
(च) मेहर
(छ) दान
(ज) संरक्षकता
(झ) न्यास एवं वक्फ सम्पत्ति (खैरात, खैराती, धर्मदाय को छोड़कर)

अपवाद :- शरीयत एक्ट **कृषि भूमि संबंधी** विषयों पर लागू नहीं होगी। शरीयत एक्ट के प्रावधान मुस्लिम विधि में प्रचलित किसी भी प्रथा या रूढ़ि के होते हुए लागू होंगे।

धारा 3 के अनुसार :- कोई भी व्यक्ति जो मुस्लिम हैं, सक्षम है (संविदा अधिनियम की धारा 11 के अनुसार) भारत का निवासी हैं तो वह सक्षम प्राधिकारी के समक्ष यह घोषणा कर सकता है। कि धारा 2 शरियत अधिनियम के उपबंध तथा दत्तक ग्रहण, वसीयत, वसीयती दान इत्यादि उस पर लागू होंगे।

यदि विहित प्राधिकारी घोषणा के संबंध में आपत्ति करता हैं तो व्यक्ति के पास विहित अधिकारों के समक्ष अपील करने का अधिकार होगा।

राज्य सरकार इस अधिनियम के उद्देश्यों को सफल बनाने के लिए नियम बना सकेगी।

"किसी प्रतिकूल रिवाज या आचार के होते हुए भी (कृषि भूमि संबंधी प्रश्नों के अतिरिक्त) निर्वासीयती उत्तराधिकार स्त्रियों की विशेष संपत्ति, जिसमें संविदा या हिबा या स्वीय विधि के किसी अन्य उपबंध के

अंतर्गत हासिल या विरासत में प्राप्त की गई सम्पत्ति शामिल है, निकाह, विवाह-विच्छेद, जिसमें तलाक, इला, जिहार, खुला और मुबारत शामिल हैं, निर्वाह, मेहर, संरक्षकता, दान, न्यास की सम्पत्ति और वक्फ (खैरात, खैराती संस्थाओं और खैराती और धार्मिक धर्मस्वों से भिन्न) संबंधी सब प्रश्नों में, ऐसे वादों में जिनके पक्ष मुसलमान हों, विनिश्चय की विधि मुस्लिम स्वीय विधि (शरिअत) होगी।''

मुसलमानों के अपने खानदानों, संतान और वंशजों के पक्ष में वक्फों के रूप में सम्पत्ति का व्यवस्थापन करने के अधिकारों की घोषणा के लिये वक्फ अधिनियम, 1913 में पास किया गया। मुसलमान वक्फ विधि मान्यकारी अधिनियम, 1913 की धारा 3 के अनुसार अन्य प्रयोजनों के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रयोजनों के लिये इस्लाम धर्म में निष्ठा प्रकाशित करने वाले किसी व्यक्ति के लिये ऐसा वक्फ करना वैध होगा जो और सब बातों में मुस्लिम विधि के उपबंधों के अनुसार हो –

(1) अपने कुटुम्ब, संतान और वंशजों के पूर्णतः या भागतः भरण-पोषण और निर्वाह के लिये, और

(2) जहाँ वक्फ का सृजन करने वाला व्यक्ति हनाफी मुसलमान है वहाँ जीवन पर्यन्त उसके अपने भरण-पोषण और निर्वाह के लिये भी या समर्पित सम्पत्ति के भाटकों और लाभों में से उसके ऋणों के संदाय के लिये।

परंतु अन्तिम लाभ ऐसे मामलों के अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से गरीबों के लिये या किसी ऐसे प्रयोजनों क लिये आरक्षित होना चाहियें जो मुस्लिम विधि द्वारा धार्मिक, पवित्र या खैराती प्रयोजन माना गया हो और स्थायी स्वरूप का हो।

यह अधिनियम प्रिवी कौंसिल के **अबुल फता मोहम्मद** बनाम **रोस्सोमोयधर चौधरी** (1894) आई० ए० 1976 के निर्णय के कारण उत्पन्न हुई असमर्थता को समाप्त करने क लिये पारित किया गया, जिसके अनुसार अपने कुटुम्ब, संतान और वंशजों के पूर्ण या आंशिक निर्वाह और भरण-पोषण के लिये किया गया वक्फ मान्य होता है।

यह अधिनियम वक्फ की मुस्लिम विधि को संशोधित तथा सुधार करने के लिये पारित नहीं किया गया था बल्कि यह प्रिवी कौंसिल के निर्णय को अप्रभावी करने के लिये पारित किया गया था, क्योंकि इस निर्णय के विरूद्ध तूफान खड़ा हो गया तथा मुसलमानों द्वारा यह तर्क दिया गया कि यह निर्णय इस्लामिक विधि के मूलभूत सिद्धांत के विरूद्ध था।

मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1939 मुस्लिम विधि के अंतर्गत विवाहिता स्त्रियों द्वारा विवाहों के विच्छेद के लिये दायर किये गये वावदों से सम्बद्ध मुस्लिम विधि के उपबंधों के एकीकरण और स्पष्टीकरण तथा विवाहिता मुस्लिम स्त्री द्वारा इस्लाम धर्म के त्याग के उसके विवाह बंधन पर प्रभावों के संबंध में संदेहों को दूर करने के लिये पारित किया गया था। इस अधिनियम के विधेयक के उद्देश्य तथा कारणों में यह कहा गया है कि यदि मुस्लिम स्त्री या पति उसका भरण-पोषण करने में प्रमाद करता है या उसका परित्याग करके उसका जीवन शोचनीय बना देता है या लगातार दुर्व्यवहार करता है या उसके जीवन के लिए बिना इन्तजाम किये भाग जाता है या किसी अन्य परिस्थिति में हनाफी विधि में विवाह-विच्छेदन की आज्ञप्ति प्राप्त करने का कोई उपबंध नहीं है, ऐसे उपबंध की अनुपस्थिति मं ब्रिटिश भारत में असंख्य मुस्लिम स्त्रियों में अकथित शोचनीय स्थिति को सुधारने की जरूरत महसूस की गई। यह भी कह गया था कि न्यायालय मलिकी विधि को लागू करने में झिझकते हैं हालांकि हनाफी विधिशास्त्र ने स्पष्टतया यह कह दिया है कि हनाफी विधि में कठिनाई की स्थिति में मलिकी विधि के सिद्धांत लागू किये जा सकते हैं।

संरक्षक तथा प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के शरीर तथा सम्पत्ति के संरक्षको की नियुक्ति के लिये पारित किया गया था। इस प्रकार नियुक्त संरक्षकों की शक्ति इस अधिनियम में दी गई थी।

मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों की सुरक्षा) अधिनियम, 1986 उन मुस्लिम स्त्रियों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिये अधिनियमित किया गया है, जिनको तलाक दे दिया गया है या जिन्होंने अपने पतियों से तलाक ले लिया है। इस अधिनियम की धारा 3 के अनुसार तलाकशुदा स्त्री इद्दत की अवधि में अपने पूर्व पति से भरण-पोषण पाने की, मेहर प्राप्त करने की तथा यदि वह स्वयं तलाक से पहले या बाद में पैदा हुए

बच्चों का भरण-पोषण करती है तो ऐसे बच्चों के पैदा होने से दो वर्ष की अवधि तक भरण-पोषण पाने की हकदार है। ऐसी स्त्री, विवाह से पहले या विवाह के समय या विवाह के पश्चात् उसके पति, पति के रिश्तेदार या दोस्तों द्वारा दी गई सम्पत्ति को भी प्राप्त करने की हकदार है। इद्दत की अवधि के पश्चात् तलाकशुदा स्त्री अपने उन रिश्तेदारों के पास यदि उसका भरण-पोषण करने का साधन नहीं है तो वक्फ अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत बनाये गये राज्य वक्फ बोर्ड का ऐसी स्त्री के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व होगा। इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् उसके पति की इद्दत की अवधि क पश्चात् भरण-पोषण की कोई जिम्मेदारी नहीं है। यह अधिनियम **मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानों बेगम के मामले ए० आई० आर० 1985 एस० सी० 945** के उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रभाव को समाप्त करने के लिये पारित किया गया है।

मुस्लिम महिला अधिनियम 1986 की धारा 3(1) (अ) के अंतर्गत यह उपबंध है कि तलाकशुदा पत्नी अपने पूर्व पति से इद्दत की अवधि के दौरान युक्तिसंगत और समुचित उपबंध और भरण-पोषण प्राप्त करने की हकदार है।

डेनियल तलीफी बनाम भारत संघ, जजमेन्ट टूडे 2001 (8) एस० सी० 228 के वाद में उच्चतम न्यायालय ने मुस्लिम महिला अधिनियम की संवैधानिकता की पुष्टि करते हुये निम्न मत अभिव्यक्त किया है -

(1) पूर्व मुस्लिम पति का यह दायित्व है कि अपनी तलाकशुदा पत्नी के लिए समुचित व न्यायपूर्ण व्यवस्था करें। ऐसी व्यवस्था के अंतर्गत पत्नी का भरण-पोषण भी सम्मिलित है। इस तरह की समुचित व न्यायपूर्ण व्यवस्था पति को पत्नी की इद्दत के समय करनी होगी और इद्दत की कालावधि के बाद भी अधिनियम के अंतर्गत क्रियान्वित रहेगी।

(2) मुस्लिम पति का अपनी तलाकशुदा पत्नी को भरण-पोषण प्रदान करने का दायित्व तलाकशुदा पत्नी के इद्दत तक ही सीमित नहीं है।

उपरोक्त के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारत मे अधिनियम विधि के द्वारा मुस्लिम वैयक्तिक विधि पर गम्भीर अतिक्रमण नहीं किया गया है। अधिनियम मुस्लिम विधि में संदेह होने पर स्पष्टीकरण करने के लिए या मामूली सुधार करने के लिये पारित किये गये हैं। उपर्युक्त अधिनियमों के अतिरिक्त कुछ छोटे अधिनियम भी पारित किये गये हैं जिनके द्वारा भी मुस्लिम विधि में गम्भीर अतिक्रमण नहीं किया गया है। यह कथन कि भारत में अधिनियम विधि के द्वारा मुस्लिम वैयक्तिक विधि पर गम्भीर अतिक्रमण हुआ है, सत्य नहीं है। अधिनियमित विधि ने मुस्लिम वैयक्तिक विधि में बहुत कम परिवर्तन किया है।

प्रश्न 8. वसीयत बनाने के संबंध में एक मुसलमान की शक्ति की क्या सीमाएँ हैं?

(Bihar P.C.S (J) 2000)

उत्तर :- **परिभाषा :-**

वसीयत प्रतिफल रहित सम्पत्ति का ऐसा अंतरण है जो अंतरण (वसीयतकर्ता) की इच्छा से उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी होता है। दाय की इसलामिक विधि पूर्व इस्लामिक रूढ़ियों और पैगम्बर मुहम्मद द्वारा स्थापित नियमों के संयोग से उद्भूत है। इस्लामिक विधि में दाय से संबंधित अधिकांश नियम कुरान पर आधारित है।

फलवा-ए-आलमगिरी के अनुसार वसीयतकर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होने वाला किसी विशिष्ट वस्तु, मुनाफा, लाभ या वृत्ति से साम्पत्तिक अधिकार का प्रदान करना वसीयत कहलाता है।

तैय्यब जी के अनुसार वसीयत ऐसी विधिक घोषणा है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के संबंध में अपनी वह इच्छा प्रकट करता है जिसे वह मृत्यु के बाद क्रियान्वित कराना चाहता है।

बेली के अनुसार, "वसीयत का अर्थ है किसी विशिष्ट सम्पत्ति के अधिकार अथवा लाभ को, किसी दूसरे व्यक्ति के पक्ष में, अनुग्रह-धन के रूप में इस प्रकार प्रदान किया जाना कि वसीयतकर्ता की मृत्यु तक यह स्थगित रहे।

मुस्लिम वसीयत पर निर्बन्धन - मुस्लिम वसीयत पर निम्नलिखित निर्बन्धन लगाया गया है -

किसी मुसलमान की वसीयती शक्ति दो प्रकार से सीमित होती है। उसे वसीयत द्वारा बन्दोबस्त की असीमित शक्ति नहीं होती। निम्नलिखित दो शीर्षकों के अंतर्गत इन सीमाओं पर विचार किया जायेगा -

(i) वसीयतदार व्यक्तियों से सम्बद्ध सीमा,

(ii) सम्पत्ति से सम्बद्ध सीमा।

(i) वसीयतदार व्यक्तियों से सम्बद्ध सीमा :- एक मुसलमान द्वारा उत्तराधिकारी के पक्ष में वसीयत नहीं की जा सकती है। ऐसा कहा जाता है कि खुदा ने प्रत्येक व्यक्ति को उसका हिसाब दे दिया है। इसलिये ऐसे व्यक्ति के पक्ष में वसीयत नहीं की जा सकती है जो उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकारी हो। परिणामस्वरूप सुन्नी एवं फातिमिद विधियों का यह सिद्धांत है कि जब तक अन्य उत्तराधिकारियों द्वारा सहमति न दी गई हो किसी उत्तराधिकारी को उत्तरदान (वसीयत) नहीं दिया जा सकता है।

इस विषय से सम्बद्ध सामान्य नियम **गुलाम मोहम्मद बनाम गुलाम हुसैन, ए० आई० आर० 1971 राज० 149** के वाद में अत्यंत स्पष्ट रूप से लेखबद्ध किया गया है। इस वाद में यह निर्णीत किया गया था कि किसी उत्तराधिकारी के पक्ष में (बिना अन्य उत्तराधिकारियों की सहमति के) वसीयत अमान्य होती है।

सामान्य नियम का अपवाद - उपर्युक्त सामान्य नियम का एक अपवाद है। यदि दूसरे उत्तराधिकारी वसीयती दान के लिये सहमत हों, तो किसी उत्तराधिकारी के पक्ष में वसीयत के द्वारा सम्पत्ति का बन्दोबस्त मान्य होता है। ऐसी सहमति वसीयतकर्त्ता की मृत्यु के पश्चात् दी जानी चाहिये।

शिया कानून - (1) यदि सम्पत्ति के 1/3 हिस्से तक की वसीयत है तो उत्तराधिकारियों की सम्मति आवश्यक नहीं है।

(2) 1/3 से अधिक की वसीयत मान्य है बशर्ते वसीयतकर्ता उत्तराधिकारियों ने उत्तराधिकारियों को वसीयतकर्ता की मृत्यु के पूर्व या बाद में अनुमति प्रदान की हो।

(ii) सम्पत्ति से सम्बद्ध सीमा :- सम्पत्ति की सीमा जिसकी वसीयत की जा सके - किसी मुसलमान व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी सम्पत्ति का 1/3 से अधिक भाग वसीयत द्वारा बिना उत्तराधिकारियों की अनुमति के दे सके। सम्पत्ति का एक-तिहाई कुल सम्पत्ति में से अन्त्येष्टि क्रिया का खर्च तथा ऋण निकालकर समझना चाहिये।

एक-तिहाई से अधिक का दान वसीयत द्वारा तब मान्य हो सकता है जबकि वसीयतकर्ता के उत्तराधिकारी इसकी अनुमति प्रदान कर दें।

अतः हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं -

(1) बिना उत्तराधिकारियों की सहमति के 1/3 भाग की वसीयत अजनबी को हो सकती है।

(2) उत्तराधिकारियों की सम्मति से 1/3 से अधिक भाग की वसीयत अजनबी के पक्ष में और किसी भी भाग की वसीयत किसी उत्तराधिकारी के पक्ष में की जा सकती है।

सामान्य नियम के अपवाद - उपर्युक्त सामान्य नियम के निम्नलिखित अपवाद हैं -

(क) सुन्नी विधि के अंतर्गत, यदि वसीयतकर्ता मर जाने के बाद ऐसे उत्तराधिकारी जिनके अधिकारों का अतिलंघन हो, अपनी सहमति दे दें तो शुद्ध परिसम्पत्ति के एक-तिहाई से अधिक का वसीयती दान मान्य हो सकता है। शिया विधि में उत्तराधिकारियों की सहमति, चाहे वसीयतकर्ता के जीवनकाल में दी गई हो या मरने के बाद, प्रभावी होती है।

(ख) जहाँ वसीयतकर्ता के कोई उत्तराधिकारी न हों वहाँ वसीयती दान के योग्य एक-तिहाई का उपर्युक्त नियम लागू न होगा। उत्तराधिकारी विहीन व्यक्ति की सम्पदा ग्रहण करने का सरकार का अधिकार किसी व्यक्ति के अपनी सम्पदा के इच्छानुसार बन्दोबस्त करने के अधिकार को किसी प्रकार निर्बन्धित नहीं करता।

प्रश्न 9. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :-

(अ) वसीयती संरक्षक और उसके अधिकार

(ब) पत्नी का भरण-पोषण। **(Bihar P.C.S (J) 2000)**

उत्तर :- कोई भी अवयस्क अपने व्यक्तित्व तथा अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा कर पाने में समर्थ नहीं होता, इसलिए उसे तथा उसकी सम्पत्ति को किसी वयस्क व्यक्ति के संरक्षण में रखने की व्यवस्था की गई है। वह

व्यक्ति जिसे कानून के अंतर्गत किसी अवयस्क के शरीर अथवा सम्पत्ति अथवा दोनों की सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है, उस अवयस्क का संरक्षक कहलाता है।

मुस्लिम विधि में संरक्षकता से तात्पर्य अवयस्क या विकृतचित्त के शरीर या सम्पत्ति या दोनों या विवाह का प्रबंधन, संरक्षण एवं उचित देखभाल करना है।

संरक्षकों के निम्न प्रकार हैं :-

(i) नैसर्गिक/विधिक संरक्षक

(ii) वसीयती संरक्षक

(iii) न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक

(iv) वस्तुतः संरक्षक/तथ्यतः संरक्षक

वसीयती-संरक्षक :-

किसी वसीयत के अंतर्गत नियुक्त किया गया संरक्षक वसीयती संरक्षक कहलाता है। पिता या उसके न रहने पर पितामह वसीयत द्वारा अपनी अवयस्क संतान के लिए संरक्षक नियुक्त कर सकता है। वसीयत द्वारा अवयस्क का संरक्षक नियुक्त किये जाने के लिए किसी विशिष्ट प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती परंतु संरक्षक नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति का स्वयं सक्षम होना आवश्यक है अर्थात् संरक्षक नियुक्त किया जाने वाला व्यक्ति वयस्क तथा स्वस्थचित्त वाला होना चाहिये। किसी गैर-मुस्लिम या महिला को भी वसीयती-संरक्षक नियुक्त किया जा सकता है।

शिया विधि - गैर-मुस्लिम, यथा हिन्दू किसी मुस्लिम अवयस्क का वसीयत संरक्षक नहीं बन सकता।

वसीयती संरक्षक की शक्तियाँ :-

(1) विक्रय - वसीयती संरक्षक निम्न स्थितियों में अवयस्क की सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है।

(क) ऋणों का भुगतान

(ख) जब सम्पत्ति का दुगना दाम मिल रहा हो।

(ग) जब विक्रय करना अवयस्क के भरण-पोषण के लिए आवश्यक है।

(घ) जब सम्पत्ति की आय उसके व्यय से कम हो।

(ङ) यदि सम्पत्ति क्षयशील हो।

(च) जब सम्पत्ति अवैध कब्जे में हो और उसकी पुनः प्राप्ति असंभव हो।

(2) बंधक :- वसीयती संरक्षक सम्पत्ति का बंधक यदि वह अवयस्क के हित में हो या सम्पत्ति के लाभार्थ हो कर सकता है।

(3) पट्टा :- वसीयती संरक्षक सम्पत्ति का पट्टा निम्न दो परिस्थितियों में कर सकता है -

(i) जब अवयस्क के हित में हो

(ii) या सम्पत्ति के लाभार्थ हो।

(4) संविदा करने का अधिकार :- संरक्षक अवयस्क की ओर से संविदा करने के लिए सक्षम होता है और अगर संविदा अवयस्क के लाभ के लिए हो तो अवयस्क को आबद्ध किया जा सकता है।

(5) अवयस्क की ओर से संरक्षक पूर्वाक्रयाधिकार का दावा कर सकता है।

(6) संरक्षक द्वारा किया गया अंतरण शून्यकरणीय माना जाता है यदि वह मुस्लिम विधि के नियमों के विरूद्ध है लेकिन यदि ऐसा अंतरण मुस्लिम विधि के नियमों के अनुसार हुआ हो तो वह अवयस्क के ऊपर बाध्यकारी होगा।

ऐसे अंतरण से प्रभावित अन्य लोगों को भी अंतरण को निराकृत कराने का अधिकार रहता है।

(7) संरक्षक को अवयस्क की चल सम्पत्ति अंरित करने का विशेषाधिकार प्राप्त है।

(8) विधिक संरक्षक अवयस्क की ओर से उसमें लाभार्थ लिये गये ऋण की अभिस्वीकृति कर सकता है।

(ब) पत्नी का भरण-पोषण। **(Bihar P.C.S (J) 2000)**

उत्तर :

मुस्लिम विधि की शब्दावली में भरण-पोषण को नफका कहा जाता है। भरण-पोषण का अधिकार सिर्फ उस सूरत में होता है जबकि व्यक्ति जीविकाहीन अर्थात् अपना जीविकोपार्जन करने में असमर्थ होता है। भरण-पोषण का दायित्व-एक ऐसा दायित्व है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के भोजन, वस्त्रादि की व्यवस्था करने के लिए बाध्य रहता है।

परिभाषा - नफका का शाब्दिक अर्थ है जो कि एक व्यक्ति अपने बच्चों के ऊपर खर्च करता है। विधि में इसका अर्थ भोजन, वस्त्र निवास स्थान हैं।

भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी व्यक्ति

मुस्लिम विधि में निम्नलिखित व्यक्ति भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी माने गये हैं :-

(1) पत्नी,

(2) अवयस्क संतान,

(3) अभावग्रस्त माता-पिता,

(4) निषिद्ध-संबंधों के अंतर्गत आने वाले अन्य अभावग्रस्त संबंधी।

(1) पत्नी का भरण-पोषण

पत्नी के भरण-पोषण की व्यवस्था करना पति का एक विधिक दायित्व माना गया है। चाहे पति साधनहीन हो, उसके पास सम्पति न हो अथवा पत्नी स्वयं भरण-पोषण करने में समर्थ हो तब भी पति भरण-पोषण के लिए दायी है पत्नी अस्ल (मूल) संतानों को फरअ (शाखा) माना जाता है। अत: संतानों के भरण-पोषण की तुलना में पत्नी को वरीयता प्राप्त है, मात्र निकाह होने से ही पत्नी भरण-पोषण की अधिकारिणी होती है। इस संबंध में अलग से अनुबंध की आवश्यकता नहीं होती है। पति का पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व आत्यतिक होता है पत्नी के गैर-मुस्लिम होने पर भी यह अधिकार उसे प्राप्त रहता है। पति का यह दायित्व विधिमान्य या सहीह निकाह होने पर होता है तथा पत्नी के यौवनावस्था के प्रारम्भ के बाद ही उत्पन्न होता है।

मुस्लिम विधि में तलाक शुदा पत्नी को अपने पति से भरण-पोषण प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित नियम हैं-

(1) मुस्लिम विधि के अंतर्गत, (2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, (3) मुस्लिम महिला (विवाह विच्छेद पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अंतर्गत।

1. **मुस्लिम विधि के अंतर्गत विवाह विच्छेद** के बाद पत्नी इद्दत की अवधि तक अपने पति से या उसकी सम्पत्ति से भरण-पोषण वसूल करने का अधिकार रखती है।

2. **दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत** - दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत प्रत्येक स्त्री को अपने पति से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार होता है यदि उसे पति ने बिना किसी पर्याप्त कारण के छोड़ दिया है। तलाकशुदा पत्नी भी इस धारा के अंतर्गत पुन: विवाह करने तक भरण-पोषण पाने की अधिकारिणी होगी।

जोहरा खातून बनाम **मोहम्मद इब्राहिम, 1984 एस० सी० 1243** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत न केवल तलाकशुदा पत्नी शामिल है बल्कि ऐसी पत्नी भी शामिल है जिसने मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 के अंतर्गत विघटन की डिक्री प्राप्त कर ली है, बशर्ते कि उसने दूसरा विवाह न किया हो।

मुहम्मद अहमद खाँ बनाम **शाह बानू** AIR (1985) S. C.945 इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय देते हुए निर्धारित किया है कि ऐसी तलाक शुदा मुस्लिम-पत्नी, जो अपना निर्वाह स्वयं कर पाने में असमर्थ हो, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत अपने पूर्व-पति से भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी है। कुरान की आयतों (सुर II आयत 241, 242) का उल्लेख करते हुए न्यायलय ने कहा कि चूँकि तलाक-शुदा पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व उसके पूर्व-पति पर कुरान में ही निर्देशित है अत: इस प्रकार की व्यवस्था इस्लाम के विरूद्ध नहीं मानी जा सकती है।

3. मुस्लिम महिला (विवाह विच्छेद पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 – शाहबानो बेगम के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय के बाद मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 संसद द्वारा पारित किया गया जिसक माध्यम से पति को तलाकशुदा पत्नी को इद्दत की अवधि के बाद भरण-पोषण के दायित्व से मुक्त कर दिया।

उच्चतम न्यायालय ने **नूरसबा खातून बनाम मोहम्मद कासिम, (1997) 6 एस० सी० सी० 523** के मामले में अभिनिर्धारित किया कि मुस्लिम महिला (विवाह विच्छेद पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 के द्वारा दण्ड संहिता की धारा 125 को समाप्त नहीं किया जा सकता है। पति इस धारा के तहत पत्नी के भरण-पोषण के लिये उत्तरदायी होगा ही क्योंकि धारा 125 अपने आप में पूर्ण है। इस धारा के अधीन पत्नी को प्राप्त अधिकार तभी समाप्त होगा जबकि पति को संहिता की धारा 125 में वर्णित आधार प्राप्त हो जायें अन्यथा नहीं।

डेनियल लतीफी बनाम भारत संघ (2001) S.C. 218

(i) उक्त वाद में यह कहा गया था कि 1986 का अधिनियम पूर्णतया संवैधानिक है।

(ii) पति का दायित्व सिर्फ इद्दत काल तक ही नहीं बल्कि पत्नी के पूरे जीवन काल तक है। यदि उसने पुनर्विवाह न किया हो। तथा भरण-पोषण में असमर्थ हो।

(iii) अधिनियम, अनुच्छेद 14, 15 तथा 21 भारतीय संविधान का उल्लंघन नहीं करता।

(iv) अधिनियम अभिव्यक्त, अलग रहने वाली, विशेष विवाह अधिनियम 1954 के तहत तलाक प्राप्त पत्नियों पर लागू नहीं होता।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुस्लिम विवाह अधिनियम, 1986 केवल तलाकशुदा महिलाओं पर ही लागू होता है, विवाहिता स्त्रियों पर नहीं। इकबाल बानो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2007) 6 सु० को० केसेज 785 के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि पुनरीक्षण न्यायालय के इस तर्क को कि कोई भी मुस्लिम महिला दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कोई याजिका दायर नहीं कर सकती, नहीं माना जा सकता। विवाहित महिला के भरण-पोषण से संबंधित सभी वाद आज भी धारा 125 के तहत ही निपटाए जायेंगे। परंतु तलाकशुदार महिला पर मुस्लिम महिला अधिनियम, 1986 ही लागू होगा। चूँकि धारा 125 के अंतर्गत प्रक्रिया सिविल प्रकृति की होती है इसलिए यदि न्यायालय को यह जानकारी मिलती है कि एक तलाकशुदा स्त्री ने धारा 125 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत याचिका दायर की है तो न्यायालयय को यह अधिकार होता है कि वह 1986 के अधिनियम के अंतर्गत मानकर उपचार दे दे क्योंकि दोनों ही अधिनियमों का उद्देश्य सामाजिक कल्याण है।

प्रश्न 10. सुन्नी तथा शिया विचारधारा में वारिसों के विभिन्न प्रकार बताइए। अ मरने के बाद अपने पीछे पत्नी, माँ तथा सगा भाई छोड़ता है, उसकी सम्पत्ति को हनाफी विधि के अंतर्गत विभाजित कीजिए।

(Bihar P.C.S (J) 2006)

उत्तर :- मुस्लिम विधि के उत्तराधिकार के नियम न्यायोचित एवं अपने आप में परिपूर्ण है। उत्तराधिकार वसीयती तथा निर्वसीयती दो प्रकार का होता है। मृतक की सम्पत्तियाँ उसकी इच्छानुसार इच्छित व्यक्तियों में विभाजित होने पर उत्तराधिकार को वसीयती उत्तराधिकार कहते हैं। निर्वसीयसती उत्तराधिकार में मृतक की संपदा उसके विधिक उत्तराधिकारियों के पूर्व-निर्धारित हिस्सों में विभाजित होकर उनमें निहित हो जाती है। निर्वसीयती उत्तराधिकार को उत्तराधिकार अथवा विरासत तथा वसीयती-उत्तराधिकार को वसीयत-की संज्ञा दी जाती है।

सुन्नी उत्तराधिकार विधि –

(अ) प्रथम श्रेणी :- सुन्नी उत्तराधिकार के संबंध में निम्न 3 वर्ग वर्णित है :-

(1) हिस्सेदार (कुरानिक उत्तराधिकारी)

(2) अवशिष्टग्राही (पितृबंधु उत्तराधिकारी)

(3) दूरस्थ रक्त संबंधी (सहोदर उत्तराधिकारी)

(1) प्रथम वर्ग :- हिस्सेदार (Shares) :- इस वर्ग के उत्तराधिकारी कुरानिक उत्तराधिकारी (Quranic heirs) भी कहे जाते हैं, क्योंकि उनको तथा इनके निर्दिष्ट हिस्सों को स्वयं कुरान में स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिया गया है। इसके उपबंध अपरिवर्तनशील है। परिणामत: न तो इन्हें उत्तराधिकारी की कोटि से हटाया जा सकता है और न ही इनके निर्धारित हिस्सों में कोई परिवर्तन संभव है। किसी मृतक का उत्तराधिकार प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथम इसी वर्ग के उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति का विभाजन किया जाता है। इन्हें देने के पश्चात् ही सम्पत्ति (यदि बची रही तो) द्वितीय वर्ग के उत्तराधिकारी प्राप्त कर सकते हैं।

कुल 12 हिस्सेदार होते हैं। जिसमें पुरूष वर्ग के 4, महिला वर्ग के 8 हिस्सेदार होते हैं। ये हिस्सेदार निम्नलिखित हैं :-

(1) पति; (2) पिता; (3) दादा; (4) सहोदर भाई; (5) पत्नी (विधवा); (6) माता;
(7) दादी; (8) सहोदर बहन; (9) पुत्री; (10) पौत्री; (11) सगी बहन; (12) सौतेली बहन

(2) द्वितीय वर्ग :- अवशिष्टग्राही (Residuaries) :-

इस वर्ग के उत्तराधिकारियों को पितृ-बंधु उत्तराधिकारी की संज्ञा भी दी गयी है। अवशिष्टग्राही वे उत्तराधिकारी हैं जिन्हें प्रथम वर्ग के उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति का विभाजन कर देने के बाद की बची हुई अर्थात् अवशिष्ट सम्पत्ति प्राप्त होती है। स्वाभाविक है कि इनके हिस्से निर्धारित नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक विभाजन में बची हुई सम्पत्ति की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है।

(क) वंशज
(ख) पूर्वज एवं
(ग) पिता के वंशज और
(घ) वास्तविक पितामह के वंशज

शिया उत्तराधिकार विधि :- शिया विधि में उत्तराधिकार या तो वैवाहिक संबंधों के आधार पर होता है या फिर रक्त संबंधों के आधार पर। इस संबंध में उत्तराधिकारियों को निम्न 3 वर्गों में बाँटा गया है।

(1) वर्ग -1 :- माता-पिता, संतानें तथा वंशज
(2) वर्ग -2 :- वास्तविक एवं मिथ्या पितामह एवं पितामही, भाई और बहन, भाई और बहनों के वंश।
(3) वर्ग -3 :- (क) स्वयं के पैतृक अथवा मातृक चाचा, चाची या बुआ के वंशज, (ख) माता एवं पिता के मातृक एवं पैत्रिक चाचा (ग) पितामही एवं पिमही के चाचा चाची।

प्रस्तुत समस्या में अ मरने के बाद अपने पीछे पत्नी, माँ तथा सगा भाई छोड़ता है।

सुन्नी विधि के अनुसार

पत्नी - 1/4 यदि संतान अथवा निचली पीढ़ी के पुत्र की संताने न हो।

माता - 1/4 सन्तान अथवा निचली पीढ़ी के साथ होने पर हिस्सा प्राप्त करेंगे। सगा भाई उत्तराधिकार से वंचित होगा। वह अवशिष्ट ग्राही उत्तराधिकारी है अत: 7/12 हिस्सा प्राप्त करेगा।

प्रश्न 11. वक्फ क्या होता है? वक्फ को मुत्तवल्ली किसको नियुक्त किया जा सकता है? मुतवल्ली के कार्य एवं कर्त्तव्यों की व्याख्या कीजिए। (Bihar P.C.S (J) 2006)

उत्तर :- वक्फ शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'बाँधना' अथवा 'रोक रखना'। सामान्य अर्थ में वक्फ का तात्पर्य सम्पति की ऐसी व्यवस्था करना है। जिससे सम्पत्ति अहस्तान्तरणीय हो जाये ताकि इससे प्राप्त होने वाला लाभ धार्मिक अथवा पुण्य कार्यों के लिए किया जा सके।

वक्फ की परिभाषा :-

(1) अबु हनीफा के अनुसार - वक्फ से तात्पर्य है वक्फ कर्ता (वाकिफ) के स्वामित्व में सम्पत्ति का इस प्रकार निरोधन कि उसकी आय पारिवारिक सदस्यों, गरीबों, जरूरतमंदों या नेक प्रयोजनों के लिए समर्पित हो।

(2) अबु युसूफ एवं इमाम मोहम्मद के अनुसार - वक्फ किसी वस्तु का सर्वशक्तिमान खुदा के उपलक्षित स्वामित्व में इस प्रकार निरोधन है कि वक्फकर्ता का सम्पत्ति संबंधी अधिकार समाप्त हो जाये और उसे खुदा के किसी ऐसे प्रयोजनों के लिए अंतरित किया जाये जिसके द्वारा उससे होने वाली आय को मानव जाति के फायदे के लिए उपयोग किया जा सके।

(3) मुसलमान वक्फ विधिमान्यकरण अधिनियम 1913 की धारा 2(1) के अनुसार - वक्फ का अर्थ है इस्लाम में आस्थावान किसी व्यक्ति द्वारा किया गया किसी सम्पत्ति का ऐसा सीायी समर्पण जो ऐसे उद्देश्य के लिए ियिका गया हो जो कि मुस्लिम विधि के अनुसार धार्मिक, परोपकारी तथा खैराती स्वरूप का हो।

(4) वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 3(द) के अनुसार - वक्फ, पवित्र, धार्मिक, खैरात करने योग्य मुस्लिम विधि द्वारा मान्यता प्राप्त किसी प्रयोजन के लिए किसी चल या अचल सम्पत्ति का किसी इस्लाम को मानने वाले व्यक्ति द्वारा स्थायी समर्पण है और इसमें सम्मिलित है। -

(i) मुस्लिम विधि द्वारा मान्य कोई अन्य अनुदान जो कि परोपकारी, धार्मिक या खैराती हो। जिसमें मशरूल-अल-खिदमत सम्मिलित है।

(ii) उस सीमा तक वक्फ-अल-औलाद जो कि मुस्लिम विधि द्वारा मान्यता प्राप्त किसी धार्मिक, खैराती या परोपकार के प्रयोजन के लिए किया जाता है।

वक्फ के विशिष्ट लक्षण :-

(1) शाश्वतता :- सीमित अवधि का वक्फ सृजित नहीं किया जा सकता। सम्पत्ति सदैव के लिए स्थानान्तरित कर दी जाती है।

(2) अहस्तान्तरणीयता :- वक्फ कर देने के बाद वक्फ की ऐन (काय) अहस्तान्तरणीय हो जाती है।

(3) अप्रतिसंहरणीयता :- एक बार वक्फ सृजित करने के बाद इसे निरस्त नहीं किया जा सकता (वसीयती वक्फों को छोड़कर)

(4) पूर्णता :- वक्फ का सृजन बिना किसी शर्त के या किसी आकस्मिकता के ऊपर आधारित नहीं होना चाहिए।

(5) वक्फ का उद्देश्य :- वक्फ मुस्लिम विधि के तहत मान्य धार्मिक या खैराती उद्देश्यों के लिए हुआ होना चाहिए।

विधिमान्य वक्फ की अनिवार्य शर्तें :-

किसी वक्फ के विधिमान्य होने के लिए निम्नलिखित अनिवार्य शर्तो का पालन होना आवश्यक है -

(1) सम्पत्ति का स्थायी समर्पण
(2) वाक्फि सक्षम हो।
(3) वक्फ की विषय-वस्तु
(4) वक्फ का उद्देश्य
(5) वक्फ की औपचारिकताएँ

मुतवल्ली

वह व्यक्ति जो वक्फ के उद्देश्यों के संदर्भ में एवं उसकी परिपूर्ति के लिए वक्फ की सम्पति का प्रबंधन, देखरेख एवं उसके लाभांश को उद्देश्यों के लिए विनियोजित करता है, मुतवल्ली कहा जाता है।

विद्या वरूथी बनाम बालू स्वामी अय्यर AIR (1922) P.C. 123

मुतवल्ली ही ईश्वर को प्रदान की गई सम्पत्ति का प्रबंध ईश्वर के सेवक के रूप में सम्पत्ति के कल्याण के लिए करता है।

मुतवल्ली की नियुक्ति - वक्फ एक्ट 1995 के पूर्व

अधिनियम के पूर्व मुतवल्ली की नियुक्ति वरीयताक्रम में वर्णित निम्न व्यक्तियों द्वारा की जाती थी -

(1) वाकिफ

(2) वाकिफ का निष्पादक

(3) मृत्यु शैय्या से स्वयं मुतवल्ली

(4) न्यायालय

(5) धर्म सभा

(1) वाकिफ द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति :-

मुतवल्ली की नियुक्त करने का पूर्ण अधिकार मुचयतः वाकिफ को ही प्राप्त है। अपनी इच्छानुकूल वह किसी भी सक्षम व्यक्ति को वक्फ-सम्पत्ति का मुतवल्ली बना सकता है। यदि चाहे तो वह स्वयं अपनी नियुक्ति भी वक्फ के प्रथम मुतवल्ली के रूप में कर सकता है। वह उन व्यक्तियों की एक क्रमबद्ध सूची भी तैयार कर सकता है जिन्हें एक के बाद दूसरे मुतवल्ली के रूप में नियुक्त किया जा सके। भविष्य में मुतवल्लियों के रूप में कार्य करने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति अथवा उनके चयन के लिये किसी भी विस्तृत योजना का उल्लेख भी वाकिफ कर सकता है।

(2) वाकिफ के निष्पादक द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति :-

वाकिफ यदि मुतवल्ली की नियुक्ति करने से पूर्व ही दिवंगत हो जाय और वक्फनामा भी इसकी नियुक्ति के बारें में मौन हो तो वाकिफ के निष्पादक को वाकिफ की भाँति ही मुतवल्ली की नियुक्ति का प्राधिकार प्राप्त है।

(3) मुतवल्ली द्वारा नियुक्ति :-

(क) यदि वर्तमान मुतवल्ली मरणासन्न हो, और

(ख) अपने जीवन की आशा छोड़ चुका हो तथा उपर्युक्त विधियों से दूसरे मुतवल्ली की नियुक्ति तुरंत सम्भव न हो सके, तो वह मृत्यु-शैया से ही अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति कर सकता है।

(4) न्यायालय द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति :-

उपरोक्त वर्णित किसी उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति संभव न होने पर, अंततः मुतवल्ली की नियुक्ति न्यायालय द्वारा की जाती है। मुतवल्ली की नियुक्ति में हितग्राहियों का हित सर्वोपरि होना चाहिए।

(5) धर्म सभा द्वारा मुतवल्ली की नियुक्ति :-

कभी-कभी मुतवल्ली का चुनाव धर्म-सभा द्वारा भी होता है। धर्म-सभा से तात्पर्य किसी समुदाय-विशेष के गणमान्य व्यक्तियों के ऐसे जनसमूह से है जिसमें उस समुदाय के धार्मिक एवं लोकहितकारी विषयों पर चर्चा की जाती हो।

वक्फ एक्ट 1995 के पश्चात :- अधिनियम की धारा 63 के अनुसार जब वक्फ के मुतवल्ली का पद खाली हो, एवम् वक्फ की शर्तों के अनुसार नियुक्ति न की जा सकती हो अथवा जहाँ किसी व्यक्ति का मुतवल्ली के रूप में कार्य करने का अधिकार विवादित हो तो वक्फ बोर्ड किसी ऐसे व्यक्ति को जो इस संबंध में उचित हो, तथा ऐसी शर्तों पर जो उचित हो नियुक्ति कर सकता है।

मुतवल्ली कौन हो सकता है -

कोई भी व्यक्ति जो स्वस्थचित्त व वयस्क हो मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है। परंतु यदि मुतवल्ली का पद पैतृक-हो और अंतिम मुतवल्ली की मृत्यु हो गई हो, और अगला मुतवल्ली कोई वयस्क न नियुक्त किया जा सकता हो तो अवयस्क को मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है। मुतवल्ली का पद पैतृक निम्न स्थितियों में होता है - (क) जब वक्फ विलेख में वाकिफ द्वारा ऐसा वर्णित हो, (ख) कोई स्थानीय प्रथा हो, परंतु इस संबंध में यह महत्वपूर्ण है कि चूँकि शरियत एक्ट द्वारा प्रथाओं का महत्व समाप्त कर दिया गया है इसलिए जब तक न्यायालय प्रथा को मान्यता न दे किसी प्रथा के द्वारा मुतवल्ली का पद पैतृक नहीं माना जा सकता। किसी भी महिला को मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है, परंतु यदि मुतवल्ली के पद के साथ कुछ धार्मिक कार्यों का भी सम्पादन करना हो। जैसे - (1) सज्जादनशीन (धार्मिक प्रमुख) (2) इमाम (धापर्मिक

प्रार्थनाओं का नेतृत्व करने वाला) (3) कातिब (धर्मोपदेशक) (4) दरगाह के मुजावर इत्यादि (दरगाह का सामान्य कार्य करने वाले) तो महिला व गैर मुस्लिम की नियुक्ति मुतवल्ली के रूप में नहीं हो सकती अर्थात् प्रबंधकीय या गैर धार्मिक कार्यों के लिए या धार्मिक कार्य पद से संलग्न हो और महिला उस कार्यों के लिए किसी पुरूष की नियुक्ति कर सकती हो तो महिला मुतवल्ली नियुक्त हो सकती है। गैर मुस्लिम व्यक्ति भी मुतवल्ली का पद ग्रहण कर सकता है। मुतवल्ली सह मुतवल्ली की नियुक्ति भी वक्फ के उद्देश्यों के संदर्भ में कर सकता है।

कार्यों एवं शक्तियाँ :-

(1) मुतवल्ली का पद प्रबंधक की तरह होता है। यद्यपि इसके कार्य न्यासी की तरह होते है। परंतु अधिकार एवं दायित्वों में असमानता होती है।

(2) मुतवल्ली का मुख्य कार्य वक्फ के लाभांशों से वक्फ के उद्देश्यों की पूर्ति करना तथा वक्फ के निर्देशों के अनुसार वक्फ की सम्पत्ति का प्रबंध एवं प्रशासन करना।

(3) मुतवल्ली को वक्फ के अधिकारी के तौर पर किसी भी सम्पत्ति पर कब्जे का अधिकार होता है। (वक्फ की)

(4) धारा 53 वक्फ अधिनियम के अनुसार - वक्फ विलेख मे कोई भी बात होते हुए मुतवल्ली वक्फ की सम्पत्ति का विक्रय बिना बोर्ड की अनुमति के नहीं कर सकता।

(5) धारा 51 के अनुसार - मुतवल्ली बिना बोर्ड की अनुमति के वक्फ की सम्पत्ति का विक्रय, विनिमय, हिबा चाहे वक्फ विलेख में कोई भी बात हो नहीं कर सकता। बोर्ड यह अनुमति निम्न आधार पर देगा :-

(क) यदि ऐसा करना वक्फ के हित में है।

(ख) यदि वह वक्फ के उद्देश्यों से संगत है या पर्याप्त प्रतिफल मिल रहा है।

(6) वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 56 के अनुसार - बोर्ड की अनुमति के बाद मुतवल्ली एक से तीन साल का पट्टा वक्फ की सम्पत्ति का कर सकता है।

(7) मुतवल्ली बिना न्यायालय या वक्फ के निर्देशों के ऋण नहीं ले सकता। यदि वह ऐसा करता है तो यह उसका व्यक्तिगत ऋण माना जायेगा।

(8) चूँकि मुतवल्ली का पद व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित रहता है अतः उसका पद अन्तरण योग्य नहीं है।

मुतवल्ली का हटाया जाना

मुतवल्ली को पद-मुक्त कर देने का अधिकार वाकिफ ने यदि अपने पास पहले से ही सुरक्षित न कर लिया हो तो एक बार विधिवत नियुक्ति हो जाने पर स्वयं वाकिफ भी मुतवल्ली को नहीं हटा सकता है। न्यायालय को चूँकि अपने अधिकार-क्षेत्र में स्थित प्रत्येक वक्फ का संरक्षक माना जाता है इसलिए वक्फ-सम्पत्ति अथवा हितग्राहियों के हितों को ध्यान में रखते हुए यदि आवश्यक हो तो न्यायालय मुतवल्ली को पद से हटा सकता है।

वक्फ अधिनियम 1995 धारा 64 के अनुसार वक्फ बोर्ड मुतवल्ली को निम्न में से किन्हीं आधारों पर हटा सकती है :-

(1) धारा 61 के तहत यदि मुतवल्ली किसी दण्डनीय अपराध से एक बार दण्डित हुआ हो। धारा 61 के अनुसार पंजीकरण का आवेदन न देने पर, आयकर रिटर्न (विवरणी) दाखिल न करने पर, बोर्ड के निदेशों का अपालन करने पर इत्यादि आधारों पर दोषसिद्धि होने पर 8000/- रू० तक दण्ड दिया जा सकता है।

(2) यदि मुतवल्ली आपराधिक न्यास-भंग करता है।

(3) यदि मुतवल्ली अनुमोचित दिवालिया घोषित किया जा चुका है।

(4) यदि मुतवल्ली अस्वस्थ मस्तिष्क के कारण वक्फ के कार्यों को करने में असमर्थ है।

(5) शराब या स्वापक औषधि लेता हो।

(6) यदि मुतवल्ली वक्फ के खिलाफ विधिक सलाहकार नियुक्त कर दिया गया हो।

(7) यदि मुतवल्ली दो वर्ष तक वक्फ के खातों का हिसाब नहीं रखता।

(8) यदि मुतवल्ली वक्फ से संबंधित पट्टे में या संविदा में हितबद्ध हो जाता है।

(9) यदि मुतवल्ली कर्त्तव्य में उपेक्षा करता है।

(10) यदि मुतवल्ली वक्फ बोर्ड, केंद्र तथा राज्य सरकार के निर्देशों की उपेक्षा करता है इत्यादि।

प्रश्न 12. एक मुस्लिम महिला के अपनी पुत्री पर अधिकार की विवेचना कीजिए। क्या वह इस अधिकार को शादी विच्छेद के बाद भी प्रयोग कर सकती है। वसीयती संरक्षक कौन है?
(Bihar P.C.S (J) 2006)

उत्तर :- कोई भी अवयस्क अपने व्यक्तित्व तथा अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा कर पाने में समर्थ नहीं होता, इसलिए उसे तथा उसकी सम्पत्ति को किसी वयस्क व्यक्ति के संरक्षण में रखने की व्यवस्था की गई है। वह व्यक्ति जिसे कानून के अंतर्गत किसी अवयस्क के शरीर अथवा सम्पत्ति अथवा दोनों की सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है, उस अवयस्क का संरक्षक कहलाता है।

मुस्लिम विधि में संरक्षकता से तात्पर्य अवयस्क या विकृतचित्त के शरीर या सम्पत्ति या दोनों या विवाह का प्रबंधन, संरक्षण एवं उचित देखभाल करना है।

अब्दुर्रहीम के अनुसार :- संरक्षकता ऐसा अधिकार है जो किसी अन्य जो कि अपनी मानसिक या शारीरिक किसी त्रुटि के कारण अपने कार्यों का प्रबंधन करने में अक्षम है से संबंधित है जैसे :- अवयस्क, जड़ एवं पागल और यह उस व्यक्ति के शरीर की अभिरक्षा और उसकी सम्पत्ति के प्रशासन तक विस्तृत है।

वयस्कता की आयु -

(1) मुस्लिम विधि की विवाह, मेहर, एवं विवाह-विच्छेद के लिए वयस्कता की आयु 15 वर्ष होगी। अन्य मामलों में वयस्कता की आयु 18 वर्ष होगी (भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 के अनुसार)

(2) यदि अवयस्क की सम्पत्ति कोर्ट ऑफ वार्डस एक्ट के तहत प्रबंधित है तो वयस्कता की आयु 21 वर्ष होगी।

वाद दायर करने के लिए आयु 18 वर्ष होगी (आदेश 32 दीवानी प्रक्रिया संहिता)

संरक्षकता के प्रकार -

(1) विलायत-ए-जबर/निकाह (विवाह)

(2) विलायत-ए-नफ्स/हिजानत (शरीर)

(3) विलायत-ए-माल (सम्पत्ति)

अवयस्क के शरीर की संरक्षकता से तात्पर्य सामान्यतः अवयस्क के सम्पूर्ण शरीर पर निगरानी है। जिससे अवयस्क के भरण-पोषण तथा यथोचित देखरेख सहित इससे संबंधित अन्य सभी कल्याणकारी कार्य सम्मिलित हैं। इसको विलायत-ए-नफ्स कहते हैं। अवयस्क के शरीर की संरक्षकता तथा अवयस्क की अभिरक्षा (custody) को प्रायः सामानार्थी मान लिया जाता है परंतु मुस्लिम-विधि में ये दोनों अलग-अलग नियमों द्वारा विनियमित होते हैं। शरीर की संरक्षकता के अंतर्गत संरक्षक को अवयस्कता की पूरी अवधि तक अवयस्क पर नियंत्रण रखने का अधिकार रहता है जब कि अभिरक्षा (हिजानत) का अर्थ है किसी अवयस्क को उसके शैशव-काल तक अपने पास रखना। हिजायत का अधिकार सभी मुस्लिम सम्प्रदायों में माता को दिया गया है।

मुस्लिम विधि के तहत शरीर की संरक्षकता संबंधित आयु

सुन्नी विधि के तहत पुत्र -7 वर्ष, पुत्री-यौवनावस्था तक (15 वर्ष)।

शफी विधि में पुत्री का हिजानत उसके विवाह होने तक उसकी माँ में रहता है।

शिया विधि में पुत्र - 2 वर्ष और पुत्री - 7 वर्ष

हिजानत का अधिकार माता के पास तब भी रहता है जबकि उसे तलाक दे दिया गया हो। बशर्ते उसने पुनर्विवाह न किया हो। माता के धर्म-परिवर्तन करने या पति से बिना युक्ति-युक्त कारणों से अलग रहने

पर भी हिजानत का अधिकार माता में निहित रहता है। निर्धनता से भी हिजानत का अधिकार खत्म नहीं होता।

माँ के हिजानत के अधिकार की समाप्ति – निम्न स्थितियों में हिजानत के अधिकार की समाप्ति मानी जाती है :-

(i) यदि वह जारता की स्थिति में रह रही हो।

(ii) यदि उसने ऐसे व्यक्ति से पुनर्विवाह कर लिया हो जो उसकी प्रतिषिद्ध नातेदारी में आता है। तथा इस संबंध में पुनर्विवाहित पति को बच्चे के साथ प्रतिषिद्ध नातेदारी में न होना चाहिए।

(iii) यदि माता अनैतिक जीवन व्यतीत करती है।

(iv) यदि माता समयाभाव के कारण या किसी अन्य कारण से बच्चे की उचित देखभाल नहीं करती।

(v) यदि माता, पिता से इतनी दूर रहती हैं कि बच्चे तक पिता की पहुँच सामान्य अनुक्रम मे नहीं हो सकती।

(vi) माँ के न होने पर हिजानत का अधिकार –

सुन्नी विधि के अनुसार – निम्न व्यक्तियों में हिजायत का अधिकार निहित होता है –

(1) माँ की माँ
(2) पिता की माँ
(3) सगी बहन
(4) सहोदर बहन
(5) सगी बहन की लड़की
(6) सहोदर बहन की लड़की
(7) मौसी
(8) बुआ

शिया विधि के अनुसार – माँ के न होने पर हिजानत का अधिकार निम्न व्यक्तियों में निहित होता है –

(1) सर्वप्रथम यह पिता में निहित होती है।

(2) पिता के न रहने पर या उसके अयोग्य हो जाने पर यह निम्न व्यक्तियों में निहित होगी :-
पितामह के न रहने पर उत्तराधिकार के क्रम में दाय प्राप्त करने वाले पितृकुल के अन्य रिश्तेदार।

(3) यदि उपरवर्णित व्यक्तियों में से कोई भी जीवित न हो या हिजानत के अयोग्य हो तो न्यायालय गार्जियन एण्ड वार्डस एक्ट 1890 की धारा 19 (ब) के तहत किसी भी योग्य व्यक्ति को अभिरक्षा का अधिकार सौंप सकती है।

गौहर बेगम बनाम नजमा बेगम AIR (1960) SC - 93 उक्त वाद में यह कह गया था कि अवैध संतान की अभिरक्षा का अधिकार सिर्फ माँ का होता है। तथा उसके बाद मातृपक्ष के रिश्तेदारों का। यौवनावस्था से पूर्व पत्नी की अभिरक्षा माँ में तथा यौवनावस्था के बाद पति में निहित होती हैं।

वसीयती-संरक्षक :-

किसी वसीयत के अंतर्गत नियुक्त किया गया संरक्षक वसीयती संरक्षक कहलाता है। पिता या उसके न रहने पर पितामह वसीयत द्वारा अपनी अवयस्क संतान के लिए संरक्षक नियुक्त कर सकता है। वसीयत द्वारा अवयस्क का संरक्षक नियुक्त किये जाने के लिए किसी विशिष्ट प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती परंतु संरक्ष नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति का स्वयं सक्षम होना आवश्यक है अर्थात् संरक्षक नियुक्त किया जाने वाला व्यक्ति वयस्क तथा स्वस्थचित्त वाला होना चाहिये। किसी गैर-मुस्लिम या महिला को भी वसीयती-संरक्षक नियुक्त किया जा सकता है।

शिया विधि – गैर-मुस्लिम, यथा हिन्दू किसी मुस्लिम अवयस्क का वसीयत संरक्षक नहीं बन सकता।

प्रश्न 13. एक तलाक शुदा मुस्लिम महिला के अपने पति से भरणपोषण के अधिकार को समझाइए। शाह बानू के वाद के फलस्वरूप इस में क्या परिवर्तन हुए हैं।

(Bihar P.C.S (J) 2006)

उत्तर :- मुस्लिम विधि की शब्दावली में भरण-पोषण को नफका कहा जाता है। भरण-पोषण का अधिकार सिर्फ उस सूरत में होता है जबकि व्यक्ति जीविकाहीन अर्थात् अपना जीविकोपार्जन करने में असमर्थ होता है। भरण-पोषण का दायित्व एक ऐसा दायित्व है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के भोजन, वस्त्रादि की व्यवस्था करने के लिए बाध्य रहता है।

परिभाषा - नफका का शाब्दिक अर्थ है जो कि एक व्यक्ति अपने बच्चों के ऊपर खर्च करता है। विधि में इसका अर्थ भोजन, वस्त्र निवास स्थान हैं।

भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी व्यक्ति

मुस्लिम विधि में निम्नलिखित व्यक्ति भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी माने गये हैं :-

(1) पत्नी,

(2) अवयस्क संतान,

(3) अभावग्रस्त माता-पिता,

(4) निषिद्ध-संबंधों के अंतर्गत आने वाले अन्य अभावग्रस्त संबंधी।

(1) पत्नी का भरण-पोषण

पत्नी के भरण-पोषण की व्यवस्था करना पति का एक विधिक दायित्व माना गया है। चाहे पति साधनहीन हो, उसके पास सम्पत्ति न हो अथवा पत्नी स्वयं भरण-पोषण करने में समर्थ हो तब भी पति भरण-पोषण के लिए दायी है पत्नी अस्ल (मूल) संतानों को फरअ (शाखा) माना जाता है। अतः संतानों के भरण-पोषण की तुलना में पत्नी को वरीयता प्राप्त है, मात्र निकाह होने से ही पत्नी भरण-पोषण की अधिकारिणी होती है। इस संबंध में अलग से अनुबंध की आवश्यकता नहीं होती है। पति का पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व आत्यतिक होता है पत्नी के गैर-मुस्लिम होने पर भी यह अधिकार उसे प्राप्त रहता है। पति का यह दायित्व विधि मान्य या सहीह निकाह होने पर होता है तथा पत्नी के यौवनावस्था के प्रारम्भ के बाद ही उत्पन्न होता है।

भरण-पोषण निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है :-

(1) वैवाहिक जीवन के मध्य

(2) तलाकशुदा महिला के संदर्भ में

(3) विधवा के संदर्भ में

तलाकशुदा महिला के संदर्भ में भरण-पोषण :-

(i) शरियत के अनुसार - इस संबंध में तलाकशुदा पत्नी अपने पति से भरण-पोषण के लिए इद्दत की अवधि तक ही अधिकारिणी होगी।

(ii) आपराधिक प्रक्रियां संहिता, 1973 के तहत :- धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के अनुसार **नानकचंद बनाम चंद्र किशोर AIR 1970 S.C. 446** उक्त वाद में यह कहा गया था कि धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधान सभी धर्मो से संबद्ध व्यक्तियों पर लागू होते हैं और इनका पक्षकारों के वैयक्तिक विधियों या राष्ट्रीयता या अधिवास (Domicile) से कोई संबंध नहीं है।

यमुनाबाई बनाम अनन्त राव AIR (1988) S.C. 641

इस वाद में यह कहा गया था यद्यपि धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता पर वैयक्तिक विधियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर पक्षकारों के विवाह-इत्यादि की वैधता जाँचने के लिए वैयक्तिक विधि सुसंगत हैं और इस संबंध में वैयक्तिक विधियों के महत्व को पूरी तरीके से नकारा नहीं जा सकता।

बाई ताहिरा बनाम अली हुसैन AIR (1979) S.C. 362

धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता का अधिकार एक स्वतंत्र अधिकार हैं जो कि वैयक्तिक विधि के तहत मेहर के रूप में किये गये भुगतान से समाप्त नहीं होता। मेहर के अधिकार का समर्थन कर दिये जाने पर भी भरण-पोषण का अधिकार समाप्त नहीं होता क्योंकि परिनियमित अधिकार परस्पर अनुबंध से समाप्त नहीं होते।

मुहम्मद अहमद खाँ बनाम शाह बानू AIR (1985) S. C.945 उक्त वाद के तथ्य संक्षेप में निम्न है:-

मोहम्मद अहमद खान और शाहबानो का विवाह 1932 में हुआ था और इसके फलस्वरूप इनके तीन पुत्र दो

पुत्रियाँ थी। 143 वर्षो के वैवाहिक जीवन के बाद 1975 में मोहम्मद अहमद ने शाहबानों को घर से निकाल दिया और शाहबानों ने तब अपनी पुत्री के यहाँ शरण ली जब साल भर तक पति ने शाहबानो की कोई खोज खबर नहीं ली तो उसने इंदौर के प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अप्रैल 1978 में धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत 500/- रूपये प्रतिमाह भरण-पोषण के लिए आवेदन किया 1 नवम्बर 1978 में मु० अहमद ने शाहबानों को अखण्डनीय तलाक दे दिया और 3000/- बतौर मेहर एवं इद्दत के दौरान की भरण-पोषण राशि के लिए न्यायालय में जमा करवा दिया। इसके उपरांत मु० अहमद ने धारा 127 आपराधिक प्रक्रिया संहिता का अभिवाक् लेते हुए यह कहा कि तलाक के बाद शाहबानो उसकी पत्नी नहीं है तथा स्वीय विधि के अंतर्गत विवाह-विच्छेद पर देय राशि उसने अपनी पत्नी को दे दी है। अतः वह किसी भी प्रकार के भरण-पोषण के लिए अधिकारी नहीं है। उसके इस अभिवाक् को सत्य मानते हुए न्यायालय ने शाहबानों के पक्ष में नाममात्र की भरण-पोषण की राशि 25/- प्रतिमाह का आदेश पारित किया। इस आदेश के विरोध में शाहबानो ने उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर किया और सुनवाई के उपरांत उच्च न्यायालय ने यह राशि बढ़ाकर 179 रूपये 20 पैसे/- कर दिया। इस आदेश के खिलाफ मु० अहमद सु० को० चले गये।

इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय देते हुए निर्धारित किया है कि ऐसी तलाक शुदा मुस्लिम-पत्नी, जो अपना निर्वाह स्वयं कर पाने में असमर्थ हो, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत अपने पूर्व-पति से भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी है। कुरान की आयतों (सुर II आयत 241, 242) का उल्लेख करते हुए न्यायलय ने कहा कि चूँकि तलाक-शुदा पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व उसके पूर्व-पति पर कुरान में ही निर्देशित है अतः इस प्रकार की व्यवस्था इस्लाम के विरूद्ध नहीं मानी जा सकती है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 27 (3) के अनुसार तलाकशुदा पत्नी निम्नलिखित परिस्थितियों में अपने पूर्व पति से भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी नहीं रहती है -

(अ) जब उसने पुनर्विवाह कर लिया हो,

(ब) जब उसे प्रथागत अथवा वैयक्तिक विधि के अंतर्गत विवाह-विच्छेद पर देय सम्पूर्ण धनराशि प्राप्त हो गई हो;

(स) जब विवाह-विच्छेद के पश्चात् तलाकशुदा पत्नी ने अपनी स्वेच्छा से भरण-पोषण के अधिकार का परित्याग कर दिया हो।

मुस्लिम महिला अधिनियम 1986 के अंतर्गत

उक्त अधिनियम की मुख्य बातें निम्न लिखित हैं :-

(1) तलाकशुदा महिला से तात्पर्य है मुस्लिम विधि के तहत विवाहित तथा मुस्लिम विधि के तहत ही तलाक प्राप्त।

(2) तलाक में पति द्वारा दिया गया तलाक तथा महिला द्वारा प्राप्त तलाक भी है।

(3) इद्दत की अवधि में तलाकशुदा मुस्लिम महिला अपने पूर्व पति से स्वयं के लिए युक्तियुक्त तथा उचित भरण-पोषण प्राप्त करेगी

(4) तलाक शुदा महिला की ऐसी संतान जो तलाक से पूर्व या उसके पश्चात उत्पन्न हुई हो और वह उसके साथ रह रही हो, के लिए भी दो वर्ष तक (जन्म से) भरण-पोषण के लिए धनराशि प्राप्त करेगी।

(5) वह मेहर जो कि मुस्लिम विधि के तहत विवाह के पूर्व या पश्चात् तय की गई हो, पाने की अधिकारिणी होगी।

(6) वे सभी सम्पत्तियाँ जो कि विवाह के समय या उसके पश्चात् रिश्तेदारों द्वारा मित्रों पति के द्वारा या पति के रिश्तेदारों के द्वारा विवाह के समय उसे दी गई हो, प्राप्त करने की अधिकारिणी होगी।

(7) यदि पति पर्याप्त साधन होते हुए भी वह असफल रहता है या उपेक्षा करता है। इद्दत काल में युक्तियुक्त एवं ऊपरवर्णित मेहर की धनराशि या अन्य सम्पत्तियाँ और इस संबंध में मजिस्ट्रेट को आवेदन किये जाने पर वह आधारों से संतुष्ट हैं तो आवेदन के 1 माह के अंदर इस संबंध में वैसा आदेश दे सकता है।

आदेश पालन न करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध आपराधिक प्रक्रिया संहिता में वर्णित जुर्माना वसूल करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया के तहत वारंट जारी कर सकता है। तथा वसूली न हो पाने पर एक वर्ष का कारावास या जब तक पहले ही भुगतान न हो जाये तक का कारावास का आदेश दे सकता है।

(8) धारा 4 के अनुसार :- किसी भी विधि में कोई भी बात होते हुए यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट है कि तलाकशुदा महिला ने पुनर्विवाह नहीं किया है तथा वह अपना भरण-पोषण करने में इद्दत काल के बाद असमर्थ हैं तो वह निम्न व्यक्तियों को भरण-पोषण का आदेश दे सकता है :-

(i) वे रिश्तेदार जो उसकी मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं, **(ii)** उसके बच्चे, **(iii)** उसके माता-पिता, **(iv)** अन्य नातेदार

(9) उक्त सूची अधिमानी क्रम मे है अर्थात् पूर्व वर्णित (सूची में) व्यक्ति के असमर्थ होने पर ही ऐसा आदेश दिया जा सकेगा।

(10) भरण-पोषण उचित एवं युक्तियुक्त होगा और इसका निर्धारण व्यक्तियों के साधन, उत्तराधिकार में प्राप्त अंश तथा पत्नी की वह जीवन-स्तर जो कि वह निकाह के समय व्यतीत कर रही थी इत्यादि तत्व ध्यान में रखे जायेंगे।

(11) यदि सूची में वर्णित कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं है या यदि मौजूद हैं तो उसके पास भरण-पोषण के लिए पयाप्त साधन नहीं है तो मजिस्ट्रेट संबंधित राज्य के वक्फ बोर्ड को जहाँ कि महिला निवास कर रही हैं। भरण-पोषण का आदेश दे सकता हैं।

(12) सेक्रेटरी **वक्फ बोर्ड तमिलनाडू** बनाम **सैयद फातिमा नाची AIR (1996) S.C. 2423** उक्त वाद में यह कहा गया था कि धारा (4) के अनुसार तलाकशुदा महिला सीधे वक्फ बोर्ड को आवेदन कर सकती है और उसी आवेदन में सूची मे वर्णित पक्षकारों की असमर्थता को साबित कर सकती है।

(13) सैयद फजल बनाम **भारत संघ AIR (1993) केरल 308** उक्त वाद में धारा 4 (2) की संवैधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि अनुच्छेद 26 के तहत वक्फ, बोर्ड धार्मिक अभिदाय नहीं है। अत: उसको भरण-पोषण का आदेश नहीं दिया जा सकता। पर न्यायालय ने उक्त अभिवाक् को अस्वीकार करते हुए धारा 4 (2) को संवैधानिक माना।

(14) धारा 5 के अनुसार - प्रथम सुनवाई के दिन दोनों पक्षकार हलफनामें द्वारा यदि यह घोषणा करते हैं कि उनके वाद की सुनवाई धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अनुसार की जाये तो मजिस्ट्रेट वैसा आदेश पारित कर सकता है।

(15) धारा 7 के अनुसार अधिनियम के लागू होने के बाद धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता एवं धारा 127 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत लम्बित प्रार्थना-पत्रों का निपटारा अधिनियम के तहत ही किया जायेगा जब तक कि पक्षकारों ने धारा 5 के तहत घोषणा न प्राप्त कर ली हो।

(16) ए. ए. अब्दुल्ला बनाम ए. बी. मैमूना सैयद भाई AIR (1988) गु० 143 चूँकि अधिनियम का प्रभाव भूतलक्षी नहीं है इसलिए धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत वाद के पूर्व पारित आदेशों को अधिनियम प्रभावित नहीं करता।

(17) परंतु जहाँ तक उक्त आदेशों के पुनरीक्षण या संशोधन का प्रश्न है न्यायालयों में मतभेद हैं। केरल उच्च न्यायालय यह मानता है कि ऐसा पुनरीक्षण या संशोधन नहीं हो सकता। तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय यह मानता है कि चूँकि धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता उक्त अधिनियम के द्वारा निरस्त नहीं की गई है अत: ऐसा संशोधन या पुनरीक्षण हो सकता है।

(18) डेनियल लतीफी बनाम भारत संघ **(2001) S.C. 218**

(i) उक्त वाद में यह कहा गया था कि 1986 का अधिनियम पूर्णतया संवैधानिक है।

(ii) पति का दायित्व सिर्फ इद्दत काल तक ही नहीं बल्कि पत्नी के पूरे जीवन काल तक हैं। यदि उसने पुनर्विवाह न किया हो। तथा भरण-पोषण में असमर्थ हो।

(iii) अधिनियम, अनुच्छेद 14, 15 तथा 21 भारतीय संविधान का उल्लंघन नहीं करता।

(iv) अधिनियम अभिव्यक्त, अलग रहने वाली, विशेष विवाह अधिनियम 1954 के तहत तलाक प्राप्त पत्नियों पर लागू नहीं होता।

प्रश्न 14. मुस्लिम विधि के विभिन्न स्रोतों का उल्लेख कीजिए। (Bihar P.C.S (J) 2011)

उत्तर :- किसी विधि के स्रोत का अर्थ है ऐसी मौलिक सामग्री जिससे उस विधि के विषय-वस्तु को प्राप्त किया गया हो। किसी विधि-विशेष के बारे में ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व उनके स्रोतों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि बिना उस विधि के उद्गम की जानकारी प्राप्त किये, उसकी उचित व्याख्या तथा उसका निर्वचन सम्भव नहीं होता है।

मुस्लिम विधि में स्रोतों को मुख्यतया दो भागों में बाँटा जा सकता है :-

(1) प्राथमिक/मूल स्रोत

(2) द्वितीयक/गौण स्रोत

(1) प्राथमिक स्रोत/मूल स्रोत :- निम्नलिखित है -

(क) कुरान

(ख) सुन्ना

(ग) अहादिस

(घ) इज्मा

(ङ) कयास

(2) द्वितीयक स्रोत/गौण स्रोत निम्न हैं -

(क) प्रथा

(ख) न्याय-निर्णय

(ग) विधायन

(1) प्राथमिक स्रोत -

(क) कुरान :- कुरान शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द 'कुर्रा' से हुई है। जिसका अर्थ है 'पढ़ना' या जिसे पढ़ा जाना चाहिए। कुरान मोहम्मद साहब के ऊपर अॅल्लाह द्वारा नाज़िल की गई आयतों का संग्रह है। मुस्लिम विधि के विकास के द्वितीय चरण मे जैद साहब ने कुरान का पहला आधिकारिक संकलन किया था।

इस संबंध में कुरान की परिभाषा से संबंधित निम्न विचार भी महत्वपूर्ण हैं -

(1) मोहम्मद साहब को प्राप्त दैवीय संदेशों का लिपिबद्ध रूप कुरान है।

(2) वास्तव में कुरान मोहम्मद साहब के मस्तिष्क की उपज है जिसमें समय-समय पर आयी विभिन्न समस्याओं का सुलझाया हुआ हल हैं।

कुरान में लगभग छः हजार दो सौ सैंतीस आयतों का संकलन हैं। इसमें लगभग 114 सुरा (अध्याय) हैं। कुरान में लगभग 200 आयतें विधि से संबंधित है तथा उनमें से लगभग 80 आयतें वैयक्तिक विधि से संबंधित हैं। कुरान को कुरान मजीद, गौरवान्वित्त कुरान, कुरान शरीफ, नेक कुरान, अलकिताब, दैवीय ग्रन्थ, अलकतरा (सत्य एवं असत्य में अन्तर बताने वाला) जैसे नामों से भी जाना जाता है।

(ख) सुन्ना :-

पैगम्बर मुहम्मद की परम्पराओं की संन्ना अथवा अहादिस कहा जाता है। मुहम्मद साहब ने बिना दैवी-प्रेरणा के, एक सामान्य मनुष्य की भाँति जो कुछ भी कहा या किया वे सब पैगम्बर की परम्पराओं के अंतर्गत आते हैं। सुन्ना-सुन्नत का बहुवचन है जिसका अर्थ है आचरण करना। सुन्ना के निम्न प्रकार है -

(क) सुन्नत-अल-कौल - यह पैगम्बर साहब के कथन थे।

(ख) सुन्नत-उल-फैल - यह पैगम्बर मोहम्मद साहब का आचरण था।

(ग) सुन्नत-उल-तकरीर - इस आचरण को पैगम्बर मोहम्मद साहब की मूक सहमति थी।

(ग) अहादिस :- इसके तीन प्रकार है :-

(क) अहादिस-ए-मुतवातिर - यह वह प्रवचन थे जो सर्व-व्यापी थे।

(ख) अहादिस-ए-मशहूर - यह वह प्रवचन थे जो ज्यादातर लोगों में प्रचलित थे।

(ग) अहादिस-ए-अहद - ये वे प्रवचन थे जो बहुत कम लोगों में प्रचलित थे।

अहदिस हदीस का बहुवचन हैं जिसका अर्थ होता है - प्रवचन।

(घ) इज़्मा - इज़्मा का मतलब लोगों को एकमत होना है। मुस्लिम विधि के विकास में इस स्रोत का प्रमुख हाथ रहा है क्योंकि इज़्मा के द्वारा ही सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप नये कानून बनाना सम्भव था। हजरत अबुबकर ने समस्याओं के तार्किक समाधान के लिए इज़्मा का प्रयोग करना शुरू किया था। इज़्मा एक बार स्थापित होने के बाद निरस्त नहीं की जा सकती। इज़्मा के निम्न प्रकार है :-

(क) पैगम्बर के साथियों का इज़्मा

(ख) विधिशास्त्रियों का इज़्मा

(ग) लोगो का इज़्मा -

हनाफी सुन्नी इज़्मा को प्रमुख स्रोत के रूप में मान्यता देते हैं जबकि मलिकी सुन्नी सिर्फ मदीने के ही विधि शास्त्रियों के इज़्मा को स्रोत के रूप में स्वीकार करते हैं। शिया और शफी सम्प्रदाय के लोग इज़्मा को कम महत्व देते हैं।

(ङ) **कयास** - कयास का तात्पर्य है माप अर्थात् किन्हीं दो चीजों में तार्किक तुलना करके एक सर्वमान्य हल निकालना जो कि समाज के हित में हो। कयास को अबुहनीफा ने स्थापित किया था। इसी को तार्किक रूप से और समीचीन बनाकर इस्त-हसन जो कि ब्रिटिश साम्या का ही एक रूप था ने स्थापित कर दिया। शफी और मालिकी विचारधारा के विधिशास्त्री इसे स्रोत नहीं मानते।

(2) **द्वितीय स्रोत** - मुख्यत: तीन प्रकार के हैं -

(क) **प्रथा** :- स्वतंत्र रूप से प्रथा मुस्लिम विधि का कोई स्रोत नहीं है। कोई प्रथागत नियम मुस्लिम विधि का स्रोत तभी माना जायगा जब वह पैगम्बर मुहम्मद का सुन्ना रहा हो अथवा इज्मा में सम्मिलित कर लिया गया हो। मुस्लिमों के कृषि-भूमि, खैरात तथा धार्मिक एवं धर्मार्थ पूर्त विन्यास के मामलों में अभी भी प्रथाओं को लागू किया जा सकता है। शरिअत ऐक्ट की धारा 3 के अनुसार यदि किसी मुस्लिम ने दत्तक-ग्रहण, वसीयत तथा रिक्थ के मामलों में भी मुस्लिम विधि लागू कराने की स्पष्ट घोषणा नहीं की है तो उसके इन मामलों पर प्रथाओं को लागू किया जा सकता है। खोजा तथा बोहरा मुस्लिमों के वसीयती-उत्तराधिकार प्रथागत नियमों द्वारा ही प्रशासित होते हैं।

(ख) **न्यायिक निर्णय** :- ये स्रोत भारतीय न्यायलयों द्वारा मुस्लिम विधि के परिपेक्ष्य में उनके वैयक्तिक विधि से संबंधित निर्णय होते हैं। भारत में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय सभी न्यायालयों पर आबद्धकारी होगी।

कुछ प्रमुख निर्णय निम्नलिखित है :-

(ग) **विधायन**

मुस्लिम विधि में निम्नलिखित अधिनियम उल्लेखनीय है -

(i) मुसलमान वक्फ विधिमान्यकरण अधिनियम, 1913

(ii) बाल विवाह निरोधक अधिनियम, 1929

(iii) मुस्लिम परसनल लॉ शरिअत अप्लीकेशन एक्ट, 1937

(iv) मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम 1939

(v) मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षय) अधिनियम, 1986 इत्यादि।

प्रश्न 15. मुस्लिम विधि में वक्फ से संबंधित विधि पर प्रकाश डालिए। (Bihar P.C.S (J) 2011)

उत्तर :- वक्फ शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'बाँधना' अथवा 'रोक रखना'। सामान्य अर्थ में वक्फ का तात्पर्य सम्पत्ति की ऐसी व्यवस्था करना है। जिससे सम्पत्ति अहस्तान्तरणीय हो जाये ताकि इससे प्राप्त होने वाला लाभ धार्मिक

अथवा पुण्य कार्यों के लिए किया जा सके।

वक्फ की परिभाषा :-

(1) अबु हनीफा के अनुसार - वक्फ से तात्पर्य है वक्फ कर्ता (वाकिफ) के स्वामित्व में सम्पत्ति का इस प्रकार निरोधन कि उसकी आय पारिवारिक सदस्यों, गरीबों, जरूरतमंदों या नेक प्रयोजनों के लिए समर्पित हो।

(2) अबु युसूफ एवं इमाम मोहम्मद के अनुसार - वक्फ किसी वस्तु का सर्वशक्तिमान खुदा के उपलक्षित स्वामित्व में इस प्रकार निरोधन है कि वक्फकर्ता का सम्पत्ति संबंधी अधिकार समाप्त हो जाये और उसे खुदा के किसी ऐसे प्रयोजनों के लिए अंतरित किया जाये जिसके द्वारा उससे होने वाली आय को मानव जाति के फायदे के लिए उपयोग किया जा सके।

(3) मुसलमान वक्फ विधिमान्यकरण अधिनियम 1913 की धारा 2(1) के अनुसार - वक्फ का अर्थ है इस्लाम में आस्थावान किसी व्यक्ति द्वारा किया गया किसी सम्पत्ति का ऐसा सीायी समर्पण जो ऐसे उद्देश्य के लिए यिका गया हो जो कि मुस्लिम विधि के अनुसार धार्मिक, परोपकारी तथा खैराती स्वरूप का हो।

(4) वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 3(द) के अनुसार - वक्फ, पवित्र, धार्मिक, खैरात करने योग्य मुस्लिम विधि द्वारा मान्यता प्राप्त किसी प्रयोजन के लिए किसी चल या अचल सम्पत्ति का किसी इस्लाम को मानने वाले व्यक्ति द्वारा स्थायी समर्पण है और इसमें सम्मिलित है। -

(i) मुस्लिम विधि द्वारा मान्य कोई अन्य अनुदान जो कि परोपकारी, धार्मिक या खैराती हो। जिसमें मशरूल-अल-खिदमत सम्मिलित है।

(ii) उस सीमा तक वक्फ-अल-औलाद जो कि मुस्लिम विधि द्वारा मान्यता प्राप्त किसी धार्मिक, खैराती या परोपकार के प्रयोजन के लिए किया जाता है।

वक्फ के विशिष्ट लक्षण :-

(1) शाश्वतता :- सीमित अवधि का वक्फ सृजित नहीं किया जा सकता। सम्पत्ति सदैव के लिए स्थानान्तरित कर दी जाती है।

(2) अहस्तान्तरणीयता :- वक्फ कर देने के बाद वक्फ की ऐन (काय) अहस्तान्तरणीय हो जाती है।

(3) अप्रतिसंहरणीयता :- एक बार वक्फ सृजित करने के बाद इसे निरस्त नहीं किया जा सकता (वसीयती वक्फों को छोड़कर)

(4) पूर्णता :- वक्फ का सृजन बिना किसी शर्त के या किसी आकस्मिकता के ऊपर आधारित नहीं होना चाहिए।

(5) वक्फ का उद्देश्य :- वक्फ मुस्लिम विधि के तहत मान्य धार्मिक या खैराती उद्देश्यों के लिए हुआ होना चाहिए।

विधिमान्य वक्फ की अनिवार्य शर्तें :-

किसी वक्फ के विधिमान्य होने के लिए निम्नलिखित अनिवार्य शर्तों का पालन होना आवश्यक है -

(1) सम्पत्ति का स्थायी समर्पण
(2) वाक्फि सक्षम हो।
(3) वक्फ की विषय-वस्तु
(4) वक्फ का उद्देश्य
(5) वक्फ की औपचारिकताएँ

(1) सम्पत्ति का स्थायी समर्पण - चूँकि वक्फ प्रतिफलरहित ऐसा स्वामित्व का अन्तरण है जो कि धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है अतः आवश्यक है कि सम्पत्ति का भौतिक मूल (ऐन) बरकरार रहे और यहीं कारण है कि इसका समर्पण अल्लाह में किया जाता है। वक्फ की सम्पत्ति का समर्पण स्थायी एवम् खुदा के प्रति होना चाहिए। भले ही शुरूआत में यह स्वयं के लिए हो परंतु अंततः इसका उद्देश्य परोपकारी होना चाहिए। छेदी लाल मिश्र बनाम सिविल जज (2007) 4 सु० को० के. 632 - यदि एक बार वक्फ का

सृजन हो गया है तो वह हमेशा वक्फ ही रहता है। स्थायी समर्पण के बाद सम्पत्ति अहस्तान्तरणीय एवं समर्पण अप्रतिसंहरणीय हो जाता है। वाकिफ को यदि यह अधिकार हो कि वह वक्फ के उद्देश्यों में परिवर्तन कर सकते। इस वक्फ को शून्य माना जाता है। वक्फ के अच्छे प्रशासन के लिए एवं उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किये गये सभी कार्य मान्य होंगे। वाकिफ मुतवल्ली की नियुक्ति कर सकता है एवं उसे हटा सकता है। मर्ज-अल-मौत पर किया गया वक्फ वसीयती वक्फ माना जाता है। **मुहम्मद आरिफ बनाम स्टेट आफ गुजरात ए० आई० आर० (1997) सु० को० 104** वक्फ का शर्तरहित एवं घटना पर आधारित नहीं होना चाहिए। अगर वक्फ वसीयती है तो प्रतिसंहरणीय होता है तथा कर्ता अपनी मृत्यु के पहले इसे कभी भी विखण्डित कर सकता है।

(2) वाकिफ सक्षम हो :- वाकिफ को वयस्क (18 या 21 वर्ष जैसी भी स्थिति हो) तथा मुस्लिम या इस्लाम में आस्थावान होना चाहिए। अर्थात् गैर मुस्लिम भी वक्फ सृजित कर सकता हैं परंतु दो शर्ते पूर्ण होनी चाहिए - **(क)** उसे इस्लाम में पूर्ण आस्थावान होनी चाहिए **(ख)** वक्फ के उद्देश्य मुस्लिम विधि के विरूद्ध नहीं होने चाहिए। **(ग) अवयस्क, विकृतचित्त** द्वारा किया गया वक्फ शून्य होता है और इसे संरक्षक द्वारा भी नहीं किया जा सकता। **(घ)** वाकिफ को सम्पत्ति का स्वामी होना चाहिए तथा उसे वक्फ करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। पर्दानशीन स्त्री भी सक्षम वाकिफ मानी जाती है। परंतु उसकी सहमति स्वतंत्र होनी चाहिए अन्यथा वक्फ शून्य माना जायेगा।

(3) वक्फ की विषय-वस्तु :- चल, अचल, मूर्त, अमूर्त सम्पत्ति का वक्फ हो सकता है। पशु, कृषि संबंधी उपकरण, कुरान, राजकीय बचत पत्र, शेयर, नगदी सरकारी प्रतिभूतियाँ एवं दरगाहों का चढ़ावा इत्यादि वक्फ के लिए वैध विषय-वस्तु निर्णीत किये गये है। बंधकित सम्पत्ति का भी वक्फ किया जा सकता है। परंतु भोगबंधकी अपने अधिकारों का समर्पण वक्फ के लिए नहीं कर सकता है। मुशा सम्पत्ति का वक्फ किया जा सकता है परंतु निम्न सम्पत्तियों पर यह नियम लागू नहीं होगा :- **(क)** सार्वजनिक कब्रिस्तान **(ख)** मस्जिद, और **(ग)** पट्टे पर दी गई सम्पत्ति।

निम्न सम्पत्ति का वक्फ नहीं किया जा सकता :- (क) अदत्त मेहर का अधिकार (ख) सामान्य धन की डिक्री के तहत ऋण वसूलने का अधिकार (ग) भोगबंधकी का अधिकार।

(4) वक्फ का उद्देश्य :- वक्फ के उद्देश्य को धार्मिक परोपकारी एवं पुण्यार्थ होना चाहिए तथा उसे मुस्लिम विधि के विपरीत नहीं होना चाहिए।

दरगाह कमेटी बनाम अजमेर बनाम **सैय्यद हुसैन अली (1962) 1 SCR 383**

उक्त वाद में कहा गया था कि इस्लाम धर्म के तहत प्रचलित सभी रीतिरिवाज तथा लोकाचार जो कि उसके अभिन्न अंग है इनसे संबद्ध सभी कार्यो के लिए सृजित वक्फ का उद्देश्य धार्मिक माना जायेगा, पुण्यार्थ उद्देश्य वे हैं जिनको खुदा का अनुमोदन प्राप्त है एवं जो ईश्वर प्राप्ति के लिए किया जाता है तथा परोपकारी उद्देश्य वे उद्देश्य है जो गरीबों, जरूरतमंदों एवं शोषित वर्गो के कल्याण के लिए हो।

वैध उद्देश्य :-

निम्नलिखित 'उद्देश्य' किसी विधिमान्य वक्फ के लिए वैध-उद्देश्य माने गये है। :-

(1) मस्जिद अथवा इमामबाड़ा का निर्माण, उसकी देख-रेख या इसमें धार्मिक प्रार्थनाओं का आयोजन।

(2) मुहर्रम के दौरान ताजिया रखने तथा धार्मिक जुलूस में ऊँट अथवा 'दुलदुल' का प्रबंध करना।

(3) किसी मस्जिद में दीप प्रज्वलित करना अथवा किसी 'खानकाह' की देख-रेख।

(4) मक्का में तीर्थयात्रियों के निःशुल्क आवास एवं भोजन के लिए सराय का निर्माण।

(5) वाकिफ अथवा उसके परिवार के किसी अन्य व्यक्ति की बरसी अर्थात् मृत्यु-दिवस का आयोजन।

सामान्यतः मृत्यु दिवस अर्थात् बरसी के उत्सव में फातिहा (कुरान-पाठ) तथा गरीबों को भिक्षा आदि देने की प्रथा अनिवार्य रूप से प्रचलित है।

अवैध उद्देश्य :-

निम्नलिखित उद्देश्य अवैध उद्देश्य माने जाते हैं, तथा वक्फ शून्य होता है -

(1) किसी मन्दिर अथवा चर्च का निर्माण या देख-रेख तथा किसी प्रकार की मूर्ति पूजा की व्यवस्था।

(2) शराब की दूकान, जुआघर अथवा सूकर-माँस की दूकान का निर्माण या इनकी देख-रेख।

(3) वकीलों को लाभान्वित करने की व्यवस्था।

(4) केवल धनवान व्यक्तियों को लाभान्वित करने की व्यवस्था। परंतु प्रसंगवश ही किसी धनवान व्यक्ति के भी लाभान्वित हो जाने पर वक्फ का उद्देश्य अवैध नहीं माना जाएगा।

अंशतः वैध तथा अंशतः अवैध उद्देश्य :-

यदि वक्फ का उद्देश्य वैध एवम अवैध दोनों हो तो अवैध उद्देश्य के संबंध में वक्फ शून्य माना जायेगा और वैध उद्देश्य के संबंध में यह विधिमान्य होगा। अवैध उद्देश्य के संबंध में यह माना जायेगा कि वक्फ सृजित ही नहीं हुआ था।

यदि वैध और अवैध उद्देश्यों के संदर्भ में उनके अंश निर्धारित न हो तो पूरा उद्देश्य वैध माना जायेगा।

उद्देशय का निश्चित होना

सामान्य तौर पर उद्देश्य **का निश्चित होना** अनिवार्य है परंतु यदि उद्देश्य मुस्लिम विधि के अनुसार वैध तो है पर अनिश्चित है तो वक्फ की वैधानिकता को लेकर इस संबंध में न्यायालयों और विधिशास्त्रियों में मतभेद हैं। जैसे - पैगम्बर के वंशजों के भरण-पोषण के लिए किया गया वक्फ।

परंतु अब मान्य मत है कि उद्देश्य वैध है परंतु अनिश्चित है तो वक्फ सिर्फ इसी आधार पर शून्य नहीं होगा और सम्पत्ति का उपयोग गरीबों एवं जरूरतमंदो के लिए किया जा सकेगा क्योंकि मुस्लिम विधि के अनुसार प्रत्येक वक्फ में गरीबों का लाभ अंर्तनिहित रहता है।

तत्सदृश का सिद्धांत (Docrine of Cypress)

(1) इस सिद्धांत का सामान्य अर्थ यथासम्भव समीप है। यह अंग्रेजी विधि के न्यास की संकल्पना से लिया गया है।

(2) इसका अर्थ है कि यदि वक्फनामा में वर्णित उद्देशयों की पूर्ति हो गई हो तो उससे मिलते-जुलते उद्देश्यों के लिए वक्फ की सम्पत्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

(3) परंतु वह उद्देश्य मुस्लिम विधि के विरूद्ध नहीं होना चाहिए।

(4) इस सिद्धांत को लागू करके किसी अवैध वक्फ को वैधता नहीं प्रदान की जा सकती जैसे :-

पंजाब एण्ड सिंध बैंक बनाम **अन्जुमन हिमायतें इस्लाम ए० आई० आर० (1935) लाहौर 596**

इस वाद में वक्फ उद्देश्य की अनिश्चितता के कारण शून्य था अतः सादृश्य सिद्धांत का प्रयोग अवैध माना गया।

(5) वक्फ की औपचारिकताएँ :-

(क) वक्फ सृजन के लिए किसी विशिष्ट औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती बस वाकिफ द्वारा वक्फ सृजन करने के मंतव्य की घोषणा कर देना ही पर्याप्त है। वक्फ लिखित भी हो सकता है और मौखिक भी हो सकता है।

(ख) पंजीकरण (वक्फ अधिनियम, 1995 के पूर्व की स्थिति)- सौ रूपये से अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति का वक्फ यदि लिखित रूप में किया गया हो तो इसका पंजीकरण आवश्यक है। वस्तुतः इण्डियन रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1908 की धारा 17(1) (ठ) के अनुसार सौ रूपये से अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति का हित हस्तान्तरित करने वाला कोई गैर-वसीयती दस्तावेज पंजीकृत न होने पर अदालतों द्वारा मान्य नहीं होता है। अतः मुस्लिम विधि के अंतर्गत पंजीकरण अनिवार्य नहीं है परंतु सौ रूपये से अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति का लिखित वक्फ पंजीकरण के बिना अदालतों द्वारा स्वीकार्य नहीं होता।

(ग) पंजीकरण (वक्फ अधिनियम, 1995 के पश्चात की स्थिति) - वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 36 के तहत वक्फ का पंजीकरण आवश्यक है और इस संबंध में आवेदन मुतवल्ली, वाकिफ, उसके वंशज एवं हितग्राही दे सकते हैं।

कब्जे का हस्तान्तरण :- वक्फ गठित करने के लिए कब्जे का परिदान अनिवार्य नहीं है।

परंतु शिया विधि के अनुसार - वक्फ की घोषणा के साथ मुतवल्ली की नियुक्ति एवं उसके पक्ष में सम्पत्ति के कब्जे का परिदान आवश्यक है।

यदि वाकिफ ने स्वयं को ही मुतवल्ली नियुक्त कर लिया हो तो कब्जे का परिदान आवश्यक नहीं होगा।

वक्फ सृजन के प्रकार या तरीके

(1) गैर वसीयती या घोषणा द्वारा - वाकिफ यदि अपनी सम्पत्ति का वक्फ सृजित करके इसे अपने जीवन काल में ही प्रभावी चाहता हो तो वह गैर-वसीयती अर्थात् तत्काल प्रभावी होने वाला वक्फ कहलाता है।

(2) वसीयती वक्फ - जब वक्फ का सृजन वसीयत के द्वारा होता है। तो वह वसीयती वक्फ होती है और इस संबंध में वसीयत के सारे नियम लागू होते है।

(3) प्रयोग द्वारा वक्फ - चिरकाल से यदि किसी अचल सम्पत्ति का उपयोग धार्मिक या परोपकारी कार्यों के लिए होता रहा है तो विधिक परिकल्पना होगी कि इस संबंध में वक्फ सृजित हुआ होगा। यदि विपरीत सिद्ध न किया जाए। इस संबंध में यह भी आवश्यक है कि प्रयोग की निरंतरता टूटनी नहीं चाहिए।

वक्फ के हितग्राही :-

(1) वक्फ के हितग्राही में किसी धर्म, मूलवंश, जाति तथा स्वास्थय के आधार पर कोई भी भेद नहीं माना गया है। शिया विधि में वाकिफ स्वयं के लिए वक्फ सृजित नहीं कर सकता और यदि वह ऐसा करता है तो वक्फ शून्य होगा।

सुन्नी विधि के तहत वाकिफ ऐसा कर सकता है परंतु उसकी मृत्यु के बाद सम्पत्ति अल्लाह में निहित मानी जायेगी। परंतु वाकिफ अपनी मृत्यु के बाद क्रमागत हितों के लिए वक्फ नहीं कर सकता।

प्रश्न 16. मुस्लिम विधि में तलाक से संबंधित प्रावधानों का उल्लेख कीजिए। क्या एक मुस्लिम महिला अपने पति से तलाक प्राप्त कर सकती है? (Bihar P.C.S (J) 2011)

उत्तर :- 'तलाक' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ हैं 'निर्मुक्त करना' अर्थात् किसी भी बंधन को खोल देना। इस्लाम के अंतर्गत वैवाहिक जीवन की स्थापित्व को सामान्य नियम मानकर विवाह-विच्छेद केवल अपवाद के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

तलाक के विधिमान्य होने के लिए निम्नलिखित शर्तो का पालन होना अनिवार्य हैं -

(1) क्षमता

(2) स्वतंत्र सहमति

(3) औपचारिकताएँ

तलाक के प्रकार

तलाक दो प्रकार के होते हैं :-

(1) तलाक-उल-सुन्नत (प्रतिसंहरणीय तलाक)

(2) तलाक-उल-बिद्दत (अप्रतिसंहरणीय तलाक)

(1) तलाक-उल-सुन्नत या राजे :- यह तलाक मोहम्मद साहब के सुन्नत के द्वारा अनुमोदित एवं मान्यता प्राप्त तलाक है

इसीलिए इसे तलाक-उल-सुन्नत कहते हैं। इस तलाक को तलाक-उल-राजे भी कहते हैं। इसके दो प्रकार है:-

(1) अहसन (2) हसन

(1) अहसन :-

(i) यह शरीयत के द्वारा सर्वाधिक मान्यता प्राप्त तलाक है।

(ii) इसमें तलाक का उच्चारण सिर्फ एक बार ही किया जाता है। यह उच्चारण पत्नी के तुहर काल में किया जाना चाहिए। तुहर काल किसी भी स्त्री के दो मासिक कालों के बीच का वह समय हैं जबकि वह स्त्री शरीरिक

रूप से गर्भधारण करने के लिए सक्षम होती है।

(iii) उस तुहर काल में घोषणा के पूर्व वैवाहिक सम्भोग नहीं हुआ होना चाहिए।

(iv) तलाक की घोषणा के बाद पत्नी को इद्दत पालन आवश्यक होता है।

(v) मासिक काल यदि किसी कारणों से खत्म हो चुका हो तो उस स्त्री के संबंध में तुहर काल की सीमा लागू नहीं होगी।

चाँदबी बनाम बलवंत (1960), 62, ब० ल० ज० 811

(vi) इद्दत पूर्ण होते ही तलाक अप्रतिसंहरणीय (irrevocable) हो जाता है।

(vii) तलाक के अप्रतिसंहरणीय होने के पूर्व पति स्पष्ट घोषणा या वैवाहिक संभोग के द्वारा तलाक को निरस्त कर सकता है।

(viii) एक बार तलाक जैसे निंदनीय शब्द का उच्चारण अप्रतिसंहरणीयता के कारण तथा मोहम्मद साहब द्वारा अनुमोदन होने के कारण यह तलाक सर्वाधिक मान्य तलाक माना जाता है। इस तलाक को सर्वाधिक मान्य तलाक बनाते हैं।

(xi) इद्दत काल में किसी पक्षकार की मौत हो जाने पर दूसरा पक्षकार उत्तराधिकार पाता है।

(2) हसन :-

(i) इस तलाक में लगातार तीन तुहर कालों तक तलाक की उद्घोषणा की जाती है।

(ii) उद्घोषणा के पहले वैवाहिक संभोग नहीं हुआ होना चाहिए।

(iii) तीसरा उद्घोषणा के बाद तलाक अप्रतिसंहरणीय हो जाता है।

(iv) यदि प्रथम दो तुहर कालों में उद्घोषणा के बाद तलाक को वापस ले लिया गया हो तो तीसरा उद्घोषणा के बाद तलाक पूर्ण माना जायेगा तथा अप्रतिसंहरणीय हो जायेगा।

(v) गुलाम मोहिनुद्दीन बनाम खिजेर AIR (1929) लाहौर- 6

उक्त वाद में पति ने पत्नी को लिखित रूप में सूचित किया कि मैने आपको 15 सितम्बर को तलाक दे दिया है अत: यह तलाक 15 दिसम्बर को स्वत: पूर्ण हो जायेगा और इस आधार पर पति ने विवाह विघटन की माँग न्यायालय से की। पर न्यायालय ने उसके अभिभावाक् (plea) को अस्वीकार करते हुए यह तय किया कि चूँकि तीन क्रमगत तुहर कालों में तलाक की घोषणा नहीं की गई थी इसलिए तलाक पूर्ण नहीं माना जायेगा।

(2) तलाक-उल-बिद्दत या बैन :-

(1) तलाक-उल-बिद्दत का तात्पर्य हैं वह तलाक जो यद्यपि वैध हैं पर पापमय तथा अनियमित हैं।

(2) यह तलाक उम्मैयद शासकों द्वारा शुरू किया गया था।

(3) इस तलाक को शिया सम्प्रदाय मान्यता नहीं देती जबकि सुन्नी सम्प्रदाय मान्यता देता है।

(4) इस तलाक में उच्चारण के क्षण ही तलाक तुरंत अप्रतिसंहरणीय हो जाता है।

(5) मोहम्मद साहब के सुन्नत के विपरीत होने के तथा तुरंत अप्रतिसंहरणीयता के कारण ही इस तलाक को निंदनीय समझा जाता है।

(6) इस तलाक को तलाक-उल-बैन (अप्रतिसंहरणीयता) भी कहते हैं।

(7) इसके दो प्रकार हैं :- (क) तीन घोषणाएँ (तीहरा तलाक) (ख) एक घोषणा ।

(क) तीन घोषणाएँ या तीहरा तलाक :- इस तलाक में पति तुहर काल में तलाक की तीन उद्घोषणाएँ या एक ही वाक्य में तीन उद्घोषणाएँ करता है - मैं तुम्हें तलाक देता हूँ, मैं तुम्हें तलाक देता हूँ, मैं-तुम्हे तलाक देता हूँ। मैं तुम्हें तीहरा तलाक देता हूँ।

(ख) एक घोषणा :- इस तलाक में पति तुहर काल में एक वाक्य में (घोषणा में) तलाक-उल-बिद्दत/बैन कहते हुए तलाक दे सकता है। जैसे - मैं तुम्हें तलाक-उल-बिद्दत देता हूँ।

(2) रहमतुल्ला बनाम उ० प्र० राज्य, उ० प्र० सिविल एण्ड रेवेन्यु केसज रिपोर्टर (1994)(1)- 530

इस वाद में कहा गया कि तलाक-उल-बिद्दत अवैध है क्योंकि यह पवित्र कुरान के निर्देशों के विपरीत हैं।

(3) राशीद अहमद बनाम अनीसा खातून AIR 1932, P.C. 25

उक्त वाद में कहा गया कि तलाक-उल-बिद्दत में तलाक की प्रभावकारिता एवं अप्रतिसंहरणीयता पति की मानसिक स्थिति पर निर्भर नहीं करती। इसीलिए यह उचित तलाक नहीं होना चाहिए। अतः यह महत्वहीन हैं कि तलाक गुस्से में दिया गया था या किसी दबाव में। केवल यह आवश्यक हैं कि पति ने उन शब्दों का उच्चारण किया था कैसे किया था, क्यों किया था या कब किया था यह महत्वपूर्ण नहीं है।

(4) मन्सूर अहमद बनाम राज्य (एन. सी. टी. ऑफ दिल्ली)

उक्त वाद में यह तय किया गया था कि तलाक किसी युक्तियुक्त कारण पर होना चाहिए। तलाक के पूर्व मध्यस्थता का प्रयास होना चाहिए जिसमें पत्नी की तरफ से एक एवं पति की तरफ से एक मध्यस्थ हो।

(5) तलाक अपने आप में ही प्रभावी नहीं होगा जब तक की उक्त औपचारिकता पूर्ण नहीं कर दी जाती।

(6) पारस्परिक उत्तराधिकार घोषणा के साथ ही समाप्त हो जाता है।

अपवाद - लेकिन यदि तलाक मर्जुल-उल-मौत के दौरान दिया गया हो और पति की मृत्यु इद्दत काल के पूर्व ही हो जाये तो पत्नी विधवा की हैसियत से उत्तराधिकार प्राप्त करेगी।

हसन तलाक तथा तलाक-उल-बिद्दत में ही हलाला का नियम लागू होगा।

इलाः-

इला तथा जिहार पति द्वारा विवाह भंग करने के आन्वयिक तरीके (constructive methods) हैं क्योंकि इनके अंतर्गत सीधे तलाक न देकर पति अपने व्यवहार द्वारा विवाह निराकृत करता है।

1. इस शब्द का अर्थ शपथ होता है, पति शपथ लेता है कि वह अपनी पत्नी से संभोग नहीं करेगा। इस शपथ के पश्चात् पति तथा पत्नी में चार माह तक संभोग नहीं होता। चार माह पूर्ण होने पर बिना किसी अन्य कार्यवाही के विवाह-विच्छेद हो जाता है। परंतु चार माह पूर्ण होने से पहले कभी भी संभोग हो जाने पर 'इला' का शपथ निरर्थक हो जाता है और विवाह-विच्छेद नहीं हो पाता है।

2. सुन्नी हनफी विधि के अनुसार - चार माह के पूर्ण होते ही यह तलाक अविखण्डनीय तलाक की तरह स्वतः प्रभावी होता है।

3. जबकि शिया एवं शफी विधियों के अनुसार यह तलाक स्वतः प्रभावी नहीं होता बल्कि पत्नी को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर ले।

जिहार :-

जिहार भी विवाह-विच्छेद का आन्वयिक तरीका (constructive method) है। जिहार का अर्थ है - 'आपत्तिजनक तुलना' (injurious assimilation)। इस तलाक में पति अपनी पत्नी की तुलना अपने निषिद्ध संबंधों में से किसी के साथ करता हैं और चार माह तक वैवाहिक संभोग से विरक्त रहता है। इस तलाक के लिए तुलना करने में पति का आशय महत्वपूर्ण माना जाता है। चार माह तक उनमें संभोग न होने पर जिहार पूर्ण मान लिया जायगा लेकिन, जिहार पूर्ण हो जाने पर भी विवाह का विच्छेद (divorce) अपने आप नहीं होता। यदि चार माह पूर्ण होने से पहले ही पति ने संभोगरत होकर जिहार के कथन का प्रतिसंहरण (revocation) कर दिया हो तो विवाह-विच्छेद तो नहीं होता परंतु पति को कुछ प्रायश्यित (penance) करना पड़ता है।

शिया-विधि - शिया-विधि के अंतर्गत जिहार की घोषणा दो सक्षम गवाहों की उपस्थिति में की जानी चाहिये।

पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद (Divorce by Wife)

मुस्लिम-विधि के अंतर्गत पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद केवल निम्न स्थितियों में ही संभव है -

(अ) पति द्वारा तलाक के अधिकार को पत्नी में प्रत्यायोजित (delegate) करने पर, अर्थात् तलाक-ए-तफवीज के अंतर्गत,

(ब) पति-पत्नी के आपसी अनुबंध (mutual agreement) द्वारा अर्थात्, खुला एवं मुबारत के अंतर्गत तथा,

(स) न्यायिक विवाह-विच्छेद द्वारा मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 के अंतर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करके।

पत्नी मात्र अपनी स्वेच्छा से विवाह-विच्छेद करने में कभी भी सक्षम नहीं है। पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद (अ) तथा (ब) के अंतर्गत पति की सहमति तथा (स) के अंतर्गत न्यायालय के आदेश पर आश्रित रहता है।

तलाक-ए-तफवीज़ (प्रत्यायोजित तलाक)

तलाक-ए-तफवीज़ का तात्पर्य – प्रत्यायोजित तलाक से हैं। प्राचीन काल में यह प्रत्यायोजन काल भी व्यक्ति में किया जा सकता था पर वर्तमान में यह प्रत्यायोजन स्वयं पत्नी में ही निहित किया जाता है। प्रत्यायोजन के बाद भी पति का तलाक देने का अधिकार समाप्त नहीं होता। जिस व्यक्ति में तलाक देने के अधिकार का प्रत्यायोजन किया जाता है वह व्यक्ति पति के अभिकर्ता की तरह तलाक देने मं उसी प्रकार सक्षम माना जाता है जैसे कि पति। इसके निम्न प्रकार हैं :- **1. अख्तियार** – मैं तुम्हें अख्तियार देता हूँ कि तुम स्वयं को तलाक दे दो। **2. अमीर-ब-येद** – यह तुम्हारा काम है कि जैसा चाहों वैसा करने के लिए स्वतंत्र हो। **3. मशीयत** – मैं तुम्हें इस बात का विकल्प देता हूँ कि तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो। स्थायी प्रत्यायोजन का प्रतिसंहरण किया जा सकता है पर अस्थायी प्रत्यायोजन का प्रतिसंहरण नहीं किया जा सकता। प्रत्यायोजन सशर्त हो सकता है और अशर्त भी। सशर्त होने पर अधिकार का प्रयोग तभी किया जायेगा जब कि वह शर्त घटित हो। **सईनुद्दीन बनाम लतीफन्निसा (1918), 46 कल 141** इस वाद में यह तय किया गया था कि घटना घटने पर ही स्वत: विवाह का विघटन नहीं होता पत्नी को अपने प्राधिकार का प्रयोग करना पड़ता है। प्रत्यायोजन पति के अधिकार को खत्म नहीं करता। "प्रत्यायोजित तलाक का यह रूप पत्नी के हाथ में शायद सबसे शक्तिशाली अस्त्र हैं जिसके द्वारा वह बिना न्यायालय की शरण जाये विवाह-बंधन से मुक्ति पा सकती है।" **मांगिला बीबी बनाम नूर हुसैन AIR (1992)** क्ल० 92 उक्त वाद में यह कहा गया था कि लिखित रूप में तलाकनामा होने पर यदि दोनों पक्षकारों के हस्ताक्षर उस तलाकनामों पर हो तो यह द्विपक्षीय प्रत्यायोजन नहीं माना जायेगा और पत्नी को अधिकार होगा कि वह प्रत्यायोजित तलाक की शक्ति का प्रयोग कर सके।

खुला

खुला का शब्दिक अर्थ है 'वस्त्र खोलना' विधि की शब्दावली में खुला का मतलब है पति की सहमति से, उसे (पति को) कुछ मुआवजा (compensation) देकर, पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद।

बेली के अनुसार :- खुला का विधि में अर्थ है पति द्वारा पत्नी पर अपने अधिकार एवं प्रभुत्व को छोड़ देना। यह तलाक पत्नी की पहल पर आपसी सहमति के द्वारा होता है। प्रतिफल के रूप में मेहर या अन्य कोई मूल्यवान वस्तु या कोई अन्य अधिकार जिस पर पक्षकार सहमत हो सकता है। इस तलाक में प्रस्ताव पत्नी की तरफ से एवं स्वीकृति पति की तरफ से होती है और स्वीकृत होते ही यह तलाक एक घोषणा वाले अप्रतिसंहरणीय तलाक में परिवर्तित हो जाता हैं। सामान्य तौर पर प्रतिफल का भुगतान स्वीकृति के समय ही करना होता है। लेकिन यदि पक्षकार सहमत हो तो प्रतिफल बाद में भी दिया जा सकता है। ऊपर वर्णित स्थिति में यदि पत्नी स्वीकृति के बाद प्रतिफल न दे तो पति न्यायालय द्वारा इसकी माँग कर सकता है। स्वीकृति के पूर्व पत्नी द्वारा कभी भी प्रस्ताव वापस लिया जा सकता है। पति स्वीकृति के बाद प्रतिसंहरण नही कर सकता पर यदि पत्नी इद्दत के दौरान प्रतिफल की माँग करती है और पति यदि इस बात पर सहमत होता है तो वह प्रतिसंहरण कर सकता है। यह नियम सिर्फ शिया विधि में ही मान्य है। **खुर्शीद बीबी बनाम मोहम्मद अमीन पी०एल० डी० (1967) सु० कु० (पाक) 97** इस वाद में कहा गया था कि पत्नी खुला की माँग अधिकार स्वरूप कर सकती है यदि वह न्यायालय को अन्यथा इस बात के लिए संतुष्ट कर देती है कि उसका पति के साथ रहना एक घृणित संयोग माना जायेगा।

पति और पत्नी दोनों को ही स्वस्थचित्त एवं यौवनावस्था की वय प्राप्त किये होना चाहिए। प्रस्ताव एवं स्वीकृति दोनों ही स्वतंत्र सहमति से होने चाहिए। शिया विधि में इस संबंध में दो गवाहों की आवश्यकता होती है। **रसीद अहमद बनाम अनीसा खातून (1931) 59, आई० ए० 21** उक्त वाद में यह कहा गया था कि सुन्नी विधि मे खुला दबाव में या फिर नशे की स्थिति में किया जा सकता है पर शिया विधि में नहीं। हनफी सुन्नी विधि में अभिभावक अवयस्क या विकृतचित्त की तरफ से खुला की सहमति दे सकता है। **कासिम हुसैन बेग बनाम**

कनीज सकीना (1932) 52 इला० 806 उक्त वाद में यह कहा गया था कि यदि राशि एक बार पक्षकारों द्वारा सहमति से तय की जा चुकी हो तो बाद में एकतरफा तौर से बढ़ायी नहीं जा सकती। **मुंशी बुजलुल रहीम बनाम लतीफुन्निसा बेगम (1861) 8, एम० आई० ए०379** इस वाद में – खुला और सामान्य तलाक में अंतर की विवेचना की गई थी। तलाक पति का मनमाना कार्य होता हैं जिसमें वह अकारण ही पत्नी का त्याग कर देता हैं जबकि खुला पत्नी की पहल पर दोनों पक्षकारों की सहमति से होता है। जिसमें कि पत्नी विवाह बंधन से मुक्ति के लिए कुछ प्रतिफल पति को देती है। खुला पति की स्वीकृति के बाद ही पूर्ण हो जाता है और प्रतिफल देने या न देने से इसकी वैधता पर कोई असर नहीं पड़ता।

मुबारत (पारस्परिक सहमति)

मुबारत का तात्पर्य पारस्परिक सहमति से एक दूसरे को स्वतंत्र करना है। इसमें तलाक की पहल पति और पत्नी दोनों ही कर सकते हैं तथा स्वीकृति के बाद तलाक एकघोषणा (अप्रतिसंहरणीय तलाक) की तरह अविखण्डनीय हो जाता है। पक्षकारों को स्वस्थचित्त एवं यौवन होना चाहिए। सामान्य तौर पर इसमें प्रतिफल की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि दोनों पक्ष अलगाव में हित रखते है। पत्नी को इद्दत का पालन करना होता है तथा पति इद्दत के दौरान भरणपोषण के लिए उत्तरदायी होता है।

न्यायिक विवाह-विच्छेद (फस्क)

किसी न्यायालय के आदेश द्वारा विवाह-विच्छेद न्यायिक विवाह -विच्छेद कहलाता है।मुस्लिम-विधि में न्यायिक विवाह-विच्छेद को फस्क कहते है। न्यायिक तलाक का आधार मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 है। इस अधिनियम के तहत तलाक का अधिकार सिर्फ पत्नी को ही प्राप्त है। इस अधिनियम के पारित होने के पहले पत्नी के पास सिर्फ निम्न तीन अधिकार ही तलाक के लिए प्राप्त थे :- 1. यौवनावस्था का विकल्प, 2. पति की नपुंसकता, 3. लियान (Lian)। यह अधिनियम सभी मुस्लिम विचारधाराओं पर लागू होता है।इस अधिनियम की क्षेत्रीय अधिकारिता जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर पूरे भारतवर्ष में है। इस अधिनियम की धारा 2 में नौ ऐसे आधार (grounds) दिये गये हैं जिनमें से किसी एक के अंतर्गत विवाहिता स्त्री अपने विवाह को भंग कराने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकती है। इन 'आधारों' की उपस्थिति मात्र से ही विवाह-विच्छेद नहीं होता, पत्नी को केवल विवाह-विच्छेद का वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिल जाता है। विवाह-विच्छेद न्यायालय की डिक्री पर ही निर्भर करता है। विवाह, मेहर एवं विवाह-विच्छेद इत्यादि के लिए पक्षकार की आयु यौवनावस्था की होनी चाहिए परंतु दीवानी प्रक्रिया संहिता (संशोधन अधिनियम 1976) के अनुसार अब वाद दायर करते समय पक्षकारों की आयु 18 वर्ष की होनी चाहिए। तो यदि पत्नी 18 वर्ष से कम है तो वह उक्त अधिनियम के अंतर्गत कोई वाद वादमित्र के द्वारा ही (दीवानी प्रक्रिया संहिता के नियमों के अनुसार) दायर कर सकती है। उक्त अधिनियम का लाभ मुस्लिम विधि के तहत विवाहित पत्नी को मिलता है। उक्त अधिनियम का लाभ स्त्री को धर्म-परिवर्तन के बाद भी प्राप्त होता है। (धारा 4) पर पुनः प्रर्वतन पर यह लाभ नहीं मिलेगा। धारा 5 के तहत मेहर का अधिकार भी प्रभावित नहीं होगा।

पत्नी द्वारा न्यायिक विवाह-विच्छेद का अधिकार

1. **पति चार साल तक लापता है** – उक्त आधार के तहत यदि पति 4 वर्षों तक लापता रह चुका है तो पत्नी इस आधार पर विवाह विच्छेद का वाद दायर कर सकती है। डिक्री देने के पूर्व धारा 3 के तहत न्यायालय पति के उत्तराधिकारियों को सुनकर आधार की पुष्टि करेगा। परंतुक (B) के अनुसार उक्त डिक्री 6 माह तक प्रवर्तित नहीं होगी और यदि इस समय में पति न्यायालय के समक्ष आकर यह संतुष्ट करता है कि वह वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए तैयार है तो न्यायालय डिक्री को निरस्त कर देगा।

2. **भरणपोषण दो साल तक** :- यदि पति 2 साल तक अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने में उपेक्षा करता है या असफल रहता है तो पत्नी के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिए यह उचित आधार होगा। **सत्गुंज बनाम रहमत** AIR (1945) सिंध -48 उक्त वाद में यह कहा गया था कि निर्धनता, बेरोजगारी, बीमारी की अवस्था या अन्य किसी दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था के द्वारा यदि पति असफल रहा है तो भी

पत्नी उक्त आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए दावा कर सकती है।

यूसुफ रोथन बनाम सोरम्मा ए० आई० आर० 1971 केरल 261 के वाद में केरल उच्च न्यायालय ने निधारित किया है कि पत्नी यदि बिना किसी न्यायोचित कारण के भी पति से अलग रहती हो और पति उसके भरण-पोषण की व्यवस्था न कर सका हो तो पत्नी को विवाह-विच्छेद की डिक्री धारा 2(2) के अंतर्गत प्राप्त हो सकती है। न्यायालय को उचित सम्मान देते हुये कहा जा सकता है कि यह निर्णय युक्तिसंगत नहीं है और इस पर पुनर्विचार होना चाहिए।

भरण-पोषण का दायित्व पति का आत्यन्तिक दायित्व है।

3. सात साल तक पति का कारावास - पति को यदि किसी अपराध के लिए सात या अधिक वर्षो तक का कारावास हुआ हो तो पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री का वाद प्रस्तुत कर सकती है। इस आधार पर विवाह भंग कराने का अधिकार उस समय से प्रारम्भ माना जायगा जब पति के कारावास का निर्णय अंतिम रूप से निश्चित हो चुका हो।

4. तीन वर्षो तक वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन ना करना - यदि पति बिना किसी युक्तियुक्त कारण के वैवाहिक कर्त्तव्यों के पालन में 3 वर्षो तक यदि उपेक्षा करता है तो पत्नी के पास यह उचित आधार होगा कि वह विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिए दावा करे। जैसे - पति द्वारा बिना किसी कारण के पत्नी का अधित्यजन करना।

5. पति की नपुंसकता :- नपुंसकता विवाह के समय तथा विवाह विच्छेद का प्रार्थना पत्र देते समय की ही होनी चाहिए। विवाहोपरांत नपुंसकता अमान्य होगी। नपुंसकता संबद्ध पक्षकार के संबंध में ही जाँची जायेगी। नपुंसकता शारीरिक या मानसिक हो सकती है। इस संबंध में पति को यह अधिकार होगा कि वह अपनी पुंसकता सिद्ध करने के लिए न्यायालय से एक वर्ष का समय माँगे और यदि इस काल में यदि वह अपनी पुंसकता को सिद्ध का देता है तो वाद खारिज कर दिया जायेगा। ऐसे समय का माँगा जाना पति का अधिकार है न्यायालय इसे देने से मना नहीं कर सकता।

गुलाम मुहम्मद खाँ बनाम हसीना **AIR (1988) J & K 12** उक्त वाद में यह कहा गया था कि यदि पति की नपुंसकता का परीक्षण किसी सक्षम मेडीकल बोर्ड द्वारा होता हैं और सम्बद्ध प्रमाणपत्र पति न्यायालय में जमा कर देता है तो नपुंसकता को आसिद्ध करने का पुनः आदेश अविधिक होगा।

6. पागलपन, कुष्ठरोग तथा रतिरोग :- इस आधार में वर्णित पागलपन, कुष्ठरोग तथा रतिरोग आधारों का स्थायी होना या असाध्य होना वर्णित नहीं है। अतः यदि विहित काल (2 वर्ष) तक ऐसी कमी पति के अंदर चाहे नियमित या अनियमित रूप से हो तब भी यह विवाह-विच्छेद का उचित आधार होगा। रतिरोग चाहे वैवाहिक संभोग के पहले या फिर बाद में उत्पन्न हुआ हो यह उचित आधार होगा।

7. यौवनावस्था का विकल्प :- धारा 2 (7) के अनुसार यदि किसी पत्नी का विवाह उसकी अवयस्कता (15 वर्ष कम उम्र) में उसके पिता अथवा किसी अन्य अभिभावक ने कराया हो और वयस्कता (15 वर्ष)का वय प्राप्त करने पर उसने विवाह निराकृत (repudiate) कर दिया हो तो इस स्थिति से न्यायालय को अवगत कराते हुए वह विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकती है।

8. पति की क्रूरता - क्रूरता में मानसिक और शारीरिक क्रूरता दोनों ही आती है। मानसिक क्रूरता से तात्पर्य है कि पत्नी का मन पति के किसी व्यवहार से आहत महसूस करे और शारीरिक क्रूरता का मतलब हैं कि पत्नी को यह विश्वास हो जाये कि उसका जीवन सुरक्षित नहीं है कुल मिलाकर क्रूरता से तात्पर्य पति के संदर्भ में पत्नी के मन में असुरक्षा का पैदा होना है। निम्न उदाहरणों को क्रूरता माना जा सकता है -

(i) अनैतिक जीवन व्यतीत करना।

(ii) बिना आज्ञा पत्नी की सम्पत्ति का अंतरण करना।

(iii) पत्नी को अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करना।

(iv) धार्मिक रीति-रिवाजों पर प्रतिबंध लगाना।

(v) झूठे मुकदमें में फंसाना क्रूरता माना जायेगा।

(vi) पत्नियों के साथ समान व्यवहार न करना क्रूरता माना जायेगा।

(vii) इतवारी बनाम असगरी यह तय किया गया था कि द्वितीय पत्नी के साथ प्रथम पत्नी को रहने के लिए बाध्य करना क्रूरता माना जायेगा।

9. अन्य आधार :- यह आधार अवशिष्ट उपधारा के रूप में जाना जाता है। अर्थात् यदि कोई आधार अन्य आधारों में न पाया जाये तो इस आधार में गिना जा सकता है। अतः खुला, मुबारत, इला, जिहार तथा लियान आदि के आधार पर पत्नी इस उपधारा के अंतर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए दावा कर सकती है।

लिआन :- लिआन का तात्पर्य है पति द्वारा पत्नी पर परपुरूषगमन का मिथ्या आरोप लगाना है। यह आरोप वयस्क एवं स्वस्थ चित्त द्वारा लगाया जाना चाहिए तथा इसके लिए विवाह वैध होना चाहिए। फासिद विवाह होने पर लिआन के आधार पर दावा नहीं किया जा सकता। यह दावा निगमित दावा के रूप में होगा। सुनवाई के पूर्व पति कभी भी आरोप वापस ले सकता है। यदि लिआन का आरोप सिद्ध हो जाता है तो विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान कर दी जायेगी। सिर्फ अचारित्रिक शब्दों का प्रयोग अपने आप में लियान के समतुल्य नहीं माना जा सकता। लिआन दोषारोपण वापसी के पीछे सिद्धांत वैवाहिक संबंधों को बचाना होना चाहिए और यह वापसी मान्य रूप से होनी चाहिए न कि पत्नी के वाद को विफल कराने के लिए।

धर्मत्याग का विवाह पर प्रभाव

मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 के पारित होने के पूर्व पति या पत्नी द्वारा इस्लाम धर्म का परित्याग करने पर विवाह-विच्छेद तुरंत हो जाया करता था। परंतु उक्त अधिनियम के पारित होने के बाद इस अधिनियम की धारा 4 में पति या पत्नी के धर्म-त्याग से उनके विवाह पर होने वाले प्रभाव की वर्तमान स्थिति निम्नवत् है :-

(अ) पति का धर्मत्याग - मुस्लिम पति द्वारा इस्लाम धर्म का परित्याग करते ही विवाह तुरंत भंग हो जाएगा और पत्नी इद्त पालन करने के बाद अपना दूसरा विवाह करने के लिए स्वतंत्र है।

(ब) पत्नी का धर्मत्याग - किसी मुस्लिम पत्नी के इस्लाम धर्म त्याग कर दूसरा धर्म स्वीकार कर लेने पर विवाह-विच्छेद नहीं होता है।

अपवाद -

पत्नी यदि संपरिवर्तित मुस्लिम (converted Muslim) रही हो और उसने इस्लाम त्याग कर पुनः अपने मूल धर्म को स्वीकार कर लिया हो तो विवाह-विच्छेद तुरंत हो जायेगा।

मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम 1939 भूतलक्षी रूप से लागू नहीं होता है।

तलाक के प्रभाव

1. वैवाहिक संभोग अवैध हो जाता है।

2. उत्पन्न संतानें अवैध मानी जाती है। पर हनफी विधि में दो वर्ष के अंदर शफी एवं मालिकी विधि में चार वर्ष के अंदर तथा शिया विधि में 10 महीने के अंदर उत्पन्न संताने वैध मानी जाती है। पर इस संबंध में अब विधि धारा 112 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अनुसार निर्धारित की जाती है।

3. पक्षकार शरीयत के नियमों के अनुसार पुर्नविवाह कर सकते हैं।

4. पत्नी वैध मेहर की अधिकारिणी हो जाती है।

5. पत्नी को इद्त पालन आवश्यक हो जाता है।

6. पति इद्त की अवधि तक भरण-पोषण के लिए दायी माना जाता है।

7. पारस्परिक उत्तराधिकार समाप्त माना जाता है पर यदि पति ने तलाक मर्जुल-मौत के दौरान दिया हो और इद्त अवधि में ही पति की मृत्यु हो जाती है तो पत्नी उत्तराधिकार की अधिकारिणी होती है।